श्री राम

विचार सागर ३॥ नम्बर

श्री

विचारसागर

(सटीक)

साधु-श्रीनिश्चलदासजी
कृत.

मुद्रक व प्रकाशक—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष :—"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई ४.

संवत् २००४]   [मूल्य ४) प्रति

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

व
~~६४४~~
२६

प्रस्तावना।

तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जंबुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदांतकेसरी॥

दोहा-"ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद॥"

हे मुमुक्षुहितेच्छु आत्मज्ञानी महाशयो! आपही लोगोंके प्रसन्नताके लिये इस परमोपयोगी अलभ्य अमूल्य रत्नरूप पुस्तकका प्रादुर्भाव कियागया है, इस ग्रंथमें विविध प्रकारकी प्रक्रियाएँ आत्मज्ञानके लाभार्थ लिखी हैं और न तो द्वेषभावसे किसी भी मार्गकी निंदा लिखी है तद्वत् न पक्षपात करके किसी भी पंथका मण्डन है, केवल साररूप वस्तु जो आत्मज्ञान है उसीको अनेकानेक उक्ति प्रत्युक्तिद्वारा सिद्ध किया है प्रस्तुत पुरुषमात्रके धर्मकर्मसंबंधी जो अनेक प्रकारकी शंकाएं हृदयमें उत्पन्न होती हैं वह सब इसके पठन श्रवणसे नाशको प्राप्त होंगी। यह एकही ग्रंथ ऐसा उत्तमोत्तम है कि, जो कोई मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुष इसको भले प्रकार विचारेंगे वे अल्पसमयमेंही अपने स्वरूपको अच्छी तरहसे जानेंगे फिर उनको मोक्षमार्गके अवलोकनार्थ किसीभी दूसरे पुस्तकके देखनेकी अपेक्षा न होगी-क्लिष्टविषय सुबोध होनेके कारण यह विचारसागर ग्रंथ पाठकोंके समझमें यथावत् आजाय इसलिये इसकी टीका अत्यन्तही सुगम सरलरीतिके अनुसार ग्रंथकर्ताने स्वयं की है। इस ग्रंथके अनुकरणसे बहुत विद्वान् वेदांतकी प्रक्रियाओंको जानकर ब्रह्मनिष्ठताको प्राप्त हुए हैं, अत एव यह सर्वमान्य ग्रंथ सर्व जिज्ञासुजनोंके लाभार्थ प्रकाशित किया है.

आपका कृपाकांक्षी-

खेमराज-श्रीकृष्णदास.

अध्यक्ष "श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम) प्रेस, बम्बई.

॥ श्रीः ॥

श्रीविचारसागरकी अनुक्रमणिका ।

पृष्ठ [illegible] से नहीं [illegible] से लागतो है

 अनुक्रमणिका।

इति विचारसागरकी अनुक्रमणिका समाप्त।

विचारसागरप्रारंभः।

प्रथमस्तरंगः १.

अथ वस्तुनिर्देशरूप मंगल-दोहा।

जो सुख नित्य प्रकाश विभु, नाम रूप आधार।
मति न लखै जिहिं मति लखै, सो मैं शुद्ध अपार॥१॥
अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश।
विधि रवि चंदा वरुण यम, शक्ति धनेश गनेश॥२॥
जा कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान।
ताको होत उपाधितें, मोमैं मिथ्या भान॥३॥
है जिहिं जाने बिन जगत, मनहु जेवरी साँप।
नशैं भुजग जग जिहिं लहे, सोऽहं आपै आप॥४॥
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम।
सो मेरो है आतमा, काकूं करूं प्रणाम॥५॥
भर्यो वेद सिद्धांत जल, जामैं अतिगंभीर।
अस विचारसागर कहूं, पेखि मुदित है धीर॥६॥
सूत्र भाष्य वार्तिक प्रभृति, ग्रन्थ बहुत सुरबानि।
मैं तथापि भाषा करूं, लखि मतिमंद अजानि॥७॥

टीका-यद्यपि सूत्र, भाष्य, वार्तिकसे प्रभृति कहिये आदि लेके सुरवानि कहिये संस्कृतग्रन्थ बहुत हैं, तथापि संस्कृतग्रन्थोंसे मंदबुद्धि पुरुषोंको भी बोध होवै नहीं, और भाषाग्रंथोंसे मंदबुद्धि पुरुषोंको भी बोध होवै है, यातैं भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल नहीं किंतु संस्कृतग्रन्थनके विचारनेमें जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, उनके निमित्त ग्रंथका आरंभ सफल है.

दोहा।

कविजनकृत भाषा बहुत, ग्रंथ जगतविख्यात।
बिन विचारसागर लखे, नहिं सन्देह नशात ॥ ८ ॥

यद्यपि भाषाग्रन्थ बहुत हैं, तथापि विचारसागर विना और भाषाग्रन्थोंसे आत्मवस्तुमें संदेह दूर नहीं होता. इसमें यह हेतु है कि, कितने तौ श्रवण करिके भाषाग्रंथ रचे हैं, जैसे पञ्चभाषा हैं, तिनकी प्रक्रिया किसी अंशमें तौ शास्त्रके अनुसार है, और जो श्रवण किया अर्थ यथार्थ ग्रहण नहीं हुआ, उस अंशमें शास्त्रसे विरुद्ध है यासे श्रोता कृत ग्रंथसे संदेहरहित बोध नहीं होता. और कोई भाषाग्रन्थ किंचित् शास्त्र पढकर रचे हैं जैसे-"आत्मबोध" है उनसे भी संदेश रहित बोध होवै नहीं क्योंकि तिनमें वेदांतकी प्रक्रिया संपूर्ण नहीं है. और विचारसागर ग्रथमें संपूर्ण प्रक्रिया है, और वदांतशास्त्रके अनुसार है काहू स्थानमें भी विरुद्ध नहीं है. और आत्मज्ञानमें

उपयोगी जो पदार्थ हैं तिनका निरूपण विस्तारसे किया है, और भाषाग्रंथोंके समान यह ग्रंथ नहीं है किंतु सर्व भाषाग्रंथोंमें यह ग्रन्थ उत्तम है।

अनुबन्ध सामान्य,निरूपण-चौपाई।

नहि अनुबंध बिछाने जौलौं। है न प्रवृत्त सुघरनर तौलौं॥
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा। कहूँब यातैं ते अनुबंधा॥९

अधिकारी, सम्बन्ध, विषय, प्रयोजनका नाम अनुबंध है. अधिकारी आदि ग्रंथके अनुबंध जाने बिना सुघर कहिये विवेकी पुरुषोंकी ग्रंथमें प्रवृत्ति होती नहीं यासे जिन अनुबन्धोंको जानिके प्रबन्ध कहिये ग्रंथोंको सुनै, तिन अनुबंधोंको कहूँब कहिये अब कहूँ हूँ॥ ९॥

सोरठा।

अधिकारी सम्बन्ध, विषय प्रयोजन मेलि चव।
कहत सुकवि अनुबंध, तिनमें अधिकारी सुनहु॥१०॥

दोहा।

मल विछेप जाके नहीं, किंतु एक अज्ञान।
है चवसाधन सहित नर, सो अधिकृतमतिमान॥११॥

अंतःकरणमें तीन दोष होते हैं-एक तो मल होता है, दूसरा विक्षेप होता है और तीसरा आवरण होता है निष्कामकर्मसे अन्तःकरणका मलदोष दूरि होता है. उपासनासे विक्षेप दोष दूरि होता है,ज्ञानसे आवरणदोष दूरि होता है, जिस पुरुषने निष्कामकर्म और उपा-

सनाकरिके मल और विक्षेप दोष दूरि किये हैं और एक अज्ञान कहिये स्वरूपका आवरण जाके चित्तमें होवे और चारसाधन संयुक्त होवे सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है ॥ १० ॥ ११ ॥

साधनचतुष्टयनामवर्णन–दोहा ।

प्रथम विवेक विराग पुनि, शमादि षट्[1] संपति ।
कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन सत्ति ॥ १२ ॥

अथ विवेकलक्षण–दोहा ।

अविनाशी आतम अचल, जग तातैं प्रतिकूल ।
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधनको मूल ॥ १३ ॥

आत्मा, अविनाशी कहिये नाशरहित है और अचल कहिये क्रियारहित है और जगत् आत्मातें प्रतिकूल कहिये विपरीतस्वभाववाला है, विनाशी है और चल है, इस ज्ञानका नाम विवेक है, यह विवेकही सर्वसाधनका मूल है. काहेते ? प्रथम विवेक होवै तो वैराग्यसे आदिलेके उत्तरसाधन होवै हैं. और विवेक नहीं होवै तो उत्तरसाधन होवै नहीं, यातैं वैराग्य शमादि षट् संपत्ति, मुमुक्षुता; इनका विवेक हेतु है ॥ १२ ॥ १३ ॥

वैराग्य लक्षण–दोहा ।

ब्रह्मलोकलौं भोग जो, चहै सबनको त्याग ।
वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग ॥ १४ ॥

[1] इस जगे षट्शमादि संपत्ति यह पाठ उत्तम है ।

शमादि षट्नाम–दोहा। षट सम्पत्ति

शम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम।
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम॥ १५॥

शम दम लक्षण–दोहा। शम = साधन
समाधान = फल

मन विषयनते रोकनो, शम तिहिं कहत सुधीर।
इंद्रियगणको रोकनो, दम भाषत बुधवीर॥ १६॥

श्रद्धा समाधान लक्षण–दोहा।

सत्य वेद गुरु वाक्य है, श्रद्धा अस विश्वास।
समाधान ताकूं कहत, मन विक्षेपको नाश॥ १७॥

उपरामलक्षण–चौपाई।

साधनसहित कर्म सब त्यागे।
लखि विष सम विषयनते भागे॥
हग नारी लखि है जिय ग्लाना॥
यह लक्षण उपराम बखाना॥ १८॥

शर्म

तितिक्षा लक्षण–दोहा। स्थूल सूक्ष्म साधन

आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहनस्वभाव।
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवरराव॥१९॥
षट्शमादि संपत्तिको, भाषत साधन एक।
इम नव नहिं साधन भनै, किंतु चारि सविवेक॥२०॥

शमादि षट्क जो संपत्ति कहिये प्राप्ति सो एक साधन करिके गिनिये है, यातैं नवसाधन नहीं, किन्तु सविवेक कहिये विवेकी जन चार साधन कहे हैं॥ २०॥

मुमुक्षुतालक्षण–दोहा।

ब्रह्मप्राप्ति अरु बंधकी, हानि मोक्षको रूप।
ताकी चाह मुमुक्षुता, भाषत मुनिवर भूप ॥ २१ ॥

ब्रह्मकी प्राप्ति और अनर्थकी निवृत्ति मोक्षका स्वरूप है, ताकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है मुमुक्षुताका मुमुक्षुत्व पर्याय शब्द है ॥ २१ ॥

दोहा।

ये चव साधन ज्ञानके, श्रवणादिक त्रय मेलि।
तत्पद त्वंपद अर्थको, शोधन अष्टम मेलि ॥ २२ ॥

विवेकादिक चार, श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये तीन तत्पदके अर्थका और त्वंपदके अर्थका शोधन, ये आठ ज्ञानके साधन हैं ॥ २२ ॥

दोहा।

अंतरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरंग।
अंतरंग धारै तजै, बहिरंगनको संग ॥ २३ ॥

पूर्वदोहेमें कहे, विवेकादिक आठ अंतरंगसाधन कहाते हैं और यज्ञादि कर्म बहिरंगसाधन कहाते हैं उनमें बहिरंगोंको जिज्ञासु त्यागै, और अन्तरंगोंको धारै, जिनका श्रवणमें अथवा ज्ञानमें प्रत्यक्ष फल होवे सो अंतरंगसाधन कहिये है. विवेकादिक चारिका श्रवणमें उपयोग है, काहेतैं ? विवेकादिक विना बहिर्मुखको श्रवण बनै नहीं, तैसे श्रवण, मनन, निदिध्यासनका ज्ञानमें उपयोग

है. श्रवणादिक विना ज्ञान होता नहीं तैसे तत्पदका अर्थ और त्वंपदका अर्थ जाने विना भी अभेदज्ञान होता नहीं,इस रीतिसे विवेकादिक चारसाधनोंका श्रवणमें उपयोग है. और श्रवणादिक चारिसाधनोंका ज्ञानमें उपयोग है. यातैं आठ अंतरंग साधन हैं.

जिसका ज्ञानमें अथवा श्रवणमें प्रत्यक्षफल नहीं होता किंतु अंतःकरणकी शुद्धि जिसका फल होवे सो ज्ञानका बहिरंगसाधन कहाता है. ऐसे यज्ञादिक कर्म हैं, यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसारके साधन हैं, तिनते अंतःकरणकी शुद्धिभी कहना संभव नहीं. तथापि सकामपुरुषको संसारके हेतु हैं और निष्कामको अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु हैं इसरीतिसे निष्कामपुरुषके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानके हेतु हैं, यातैं बहिरंग साधन कहिये हैं, और विवेकादिक अंतरंगसाधन कहिये हैं. बहिरंग नाम दूरिका है और अंतरंग नाम समीपका है. यज्ञादिक कर्म और उनके साधन स्त्री धन पुत्रादिकोंको त्यागै सो ज्ञानका अधिकारी है, ज्ञानके अधिकारमें यज्ञादिक संभवै नहीं, यातैं दूरि हैं.

विवकादि ज्ञानके अधिकारीमें संभवैं हैं, यातैं समीप हैं. उनमें भी इतना भेद है. विवेकादिकनका श्रवणमें उपयोग है और श्रवणादिकोंका ज्ञानमें उपयोग है, तातैं विवेकादिकोंकी अपेक्षासे श्रवणादिक अंतरंग हैं, तिनकी

अपेक्षाते विवेकादिक बहिरंग हैं, यद्यपि विवेकादिकभी ज्ञानके अंतरंगसाधनही सर्वग्रन्थोंमें कहे हैं बहिरंग नहीं कहे. तथापि विवेकादिकोंका ज्ञानके साधन श्रवणमें प्रत्यक्षफल है. और श्रवणादिकोंके सदृश विवेकादिक जिज्ञासुको उपादेय हैं यज्ञादिकोंके समान जिज्ञासुको हेय नहीं, याते अंतरंग कहेहैं. और यज्ञादिकनकी अपेक्षाते भी अंतरंग हैं, यातैं भी अंतरंग साधनोंमें कहे हैं.

और विचारसे देखिये तौ ज्ञानके मुख्य अंतरंगसाधन(तत्त्वमसि) आदि महावाक्य हैं श्रवणादिक भी नहीं काहेते युक्तिसे वेदांत वाक्योंका तात्पर्यसे निश्चय श्रवण कहिये हैं. जीवब्रह्मके अभेदकी साधक और भेदकी बाधक युक्तियोंसे अद्वितीय ब्रह्मका चिंतवन मनन कहिये है, अनात्माकारवृत्तिका व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति, निदिध्यासन कहिये है । निदिध्यासनकी परिपाक अवस्थाकोही समाधि कहे हैं याते समाधिका भी निदिध्यासनमें अंतर्भाव है पृथक् साधन नहीं हैं ये श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साक्षात् साधन नहीं किंतु बुद्धिके दोष जो असंभावना और विपरीत भावना ताके नाशक हैं. संशयको असंभावना कहते हैं विपर्यको विपरीतभावना कहै हैं.

श्रवणसे प्रमाणका संदेह दूरि होता है, और मननसे प्रमेयका संदेह दूरि होताहै. वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मके

प्रतिपादक हैं,अथवा अन्य अर्थके प्रतिपादक हैं ऐसा प्रमाणमें संदेह होवै सो श्रवणसे दूरि होता है और जीव-ब्रह्मका अभेद सत्य है, अथवा भेद सत्य है? ऐसे प्रमेयमें सन्देह होवै सो मननसे दूर होवै है. देहादिक सत्य हैं और जीवब्रह्मका भेद सत्य है; ऐसे ज्ञानको विपरीत भावना कहे हैं उसीको विपर्यय कहे हैं, उसको निदिध्यासन दूरि करै है. इस रीतिसे श्रवणादिक तीनों असंभावना और विपरीतभावनाके नाशक हैं. असंभावना और विपरीतभावना ज्ञानके प्रतिबंधक हैं, यातें ज्ञानका जो प्रतिबंधक ताके नाश द्वारा श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं, साक्षात् हेतु नहीं।

ज्ञानके साक्षातसाधन श्रोत्रसंबंधि वेदांतवाक्य हैं सो वेदांत वाक्य दो प्रकारके हैं एक अवांतर वाक्य है, एक महावाक्य है। परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपका बोधक जो वाक्य सो अवांतरवाक्य कहिये जीव-परमात्माकी एकताबोधक वाक्य महावाक्य कहिये है, अवांतर वाक्यसे परोक्ष ज्ञान होता है, महावाक्यसे अपरोक्षज्ञान होता है. "ब्रह्म है" इस ज्ञानकूं परोक्षज्ञान कहे हैं "ब्रह्म मैं हूं" इस ज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहैं हैं "त्वं ब्रह्म" ऐसा आचार्यने उच्चारण किया जो वाक्य तिसका श्रोताके कर्णसे संबंध होतही "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा अपरोक्षज्ञान श्रोताकूं होवै और श्रोताके कर्णसे वाक्य-

का सबंध हुएविना ज्ञान होवै नहीं यातैं श्रोत्रसंबंधी वाक्य ही ज्ञानका हेतु है. श्रोत्रसंबंधी अवांतरवाक्य परोक्षज्ञानका हेतु है·और श्रोत्रसम्बन्धी महावाक्य अपरोक्षज्ञानका हेतु हैं. महावाक्यसे सर्वकूं अपरोक्षही ज्ञान होवै है, परोक्ष नहीं होता ।

और एकदेशीका यह मत है—श्रवण, मनन, निदिध्यासनसहित वाक्यसे अपरोक्षज्ञान होवै है. केवल वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है, अपरोक्ष नहीं. जो केवल वाक्यतेही अपरोक्षज्ञान होवै तौ श्रवण मनन निदिध्यासन व्यर्थ होवैंगे । यद्यपि सिद्धांतमतमें केवल वाक्यतै अपरोक्षज्ञान होवैहै और श्रवणादिकोंसे असंभावना, विपरीतभावनाका नाश होवै है यातैं श्रवणादिक व्यर्थ नहीं तथापि जिस वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषे असंभावना, विपरीतभावना किसीको भी होवै नहीं. यातै केवल वाक्यतैं अपरोक्षज्ञानवादीके सिद्धांतमें—तत्त्वमसि, आदिक वाक्योंसे ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होनेसें, पीछे असंभावना, विपरीतभावना संभवै नहीं. यातैं श्रवणादिक साधन व्यर्थ होवैंगे । और केवल वाक्यते परोक्षज्ञान होवैहै, श्रवण मनन निदिध्यासन कियेते अपरोक्षज्ञान होवैहै. या मतमें श्रवणादिक व्यर्थ नहीं यह बहुत ग्रंथकारोंका मत है, तथापि यह मत समीचीन नहीं. काहेतैं ?

शब्दका यह स्वभावहै—जो वस्तुव्यवहित होवै ताका शब्दसे परोक्षही ज्ञान होवैहै किसी प्रकारते व्यवहित वस्तुका शब्दसे अपरोक्षज्ञान होवै नहीं. जैसे-व्यवहित स्वर्गका और इन्द्रादिक देवोंका शास्त्ररूपी शब्दते परोक्ष ही ज्ञान होवैहै और जो वस्तु अव्यवहित होवै ताका शब्दसे अपरोक्षज्ञान और परोक्षज्ञान दोनों होते हैं जहां अव्यवहितवस्तुकूं शब्द अस्तिरूपते बोधन करै तहां अव्यवहितका भी परोक्षज्ञान होवैहै, जैसे-"दशमपुरुष है" इस रीतिसे अस्तिरूपते बोधन किया जो अव्यवहित दशम ताका शब्दसे परोक्षज्ञानही हुआ है और जहां अव्यवहितवस्तुकूं"यह है" इसरीतिसे शब्द बोधन करै तहां अव्यवहितका शब्दसे अपरोक्षज्ञानही होवै है परोक्ष नहीं, जैसे-"दशवाँ, तू है" इसरीतिसे शब्दने बोधन किया जो दशवां, ताका अपरोक्षज्ञानही हुआ है तैसे ब्रह्म सर्वका आत्मा होनेते अत्यंत अव्यवहित है, ताकूं अवान्तरवाक्य अस्तिरूपतैं बोधन करै हैं यातैं अव्यवहितब्रह्मकाभी अवांतरवाक्यते परोक्षज्ञान होवै है. और"दशवाँ तू है"इस वाक्यकी सदृश श्रोताका आत्मरूप करिके ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करै है, यातैं महावाक्यते अव्यवहितब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै नहीं किंतु अपरोक्षज्ञानही होवै है।

और जो कह्या–"जो वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषे असंभावना विपरीतभावना होवै नहीं यातैं श्रवणादिक विफल होवेंगे" सो शंका बनै नहीं; काहेतैं? जैसे राजाकूं भर्तृका नेत्रसे अपरोक्षज्ञान हुवेते भी विपरीतभावना दूरि हुई नहीं,तैसे महावाक्यते ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवैहै, परंतु जाकी बुद्धिमें असंभावना विपरीतभावना दोष होवैं ताका दोषरूपकलंकसहित ज्ञानफलका हेतु नहीं, दोषकी निवृत्तिवास्ते श्रवणादिक करै जाकी बुद्धिमें दोष नहीं सो न करै, इसरीतिसे ज्ञानके साधन महावाक्यहैं श्रवणादिक नहीं परंतु ज्ञानका प्रतिबन्धक जो दोषहै ताके नाशक हैं यातैं श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहियेहै, श्रवणादिकोंके हेतु विवेकादिक हैं. यातैं विवेकादिकज्ञानके साधन कहिये हैं विवेकादिक चारिसाधनसंयुक्त जो पुरुष है सो अधिकारी है ॥ २३ ॥

२–संबंधवर्णन–दोहा।

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रंथ ब्रह्म संबन्ध।
प्राप्य प्रापकता कहत, फल अधिकृतको फंद ॥२४॥

१ ग्रन्थका और विषयका प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसंबंध है, ग्रन्थ प्रतिपादक है, और विषय प्रतिपाद्य है, जो प्रतिपादन करनेवाला होवै सो प्रतिपादक कहिये है जो प्रतिपादन करनेकूं योग्य होवै सो प्रतिपाद्य कहिये हैं. अधिकारीका और फलका प्राप्यप्रापकभाव संबन्ध

है, फल प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है, जो वस्तु प्राप्त होवे सो प्राप्य कहियेहै,जाके प्राप्त होवे सो प्रापक कहिये है, अधिकारीका और विचारका कर्तृकर्त्तव्य भाव संबन्ध है अधिकारी कर्त्ता है और विचार कर्त्तव्य है. जो करनेवाला होवे सो कर्त्ता कहिये है और करनेयोग्य होवे सो कर्त्तव्य कहिये है, ग्रन्थका और ज्ञानका जन्यजनकभावसंबन्ध है, विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है, और ज्ञान जन्य है,जो उत्पत्ति करनेवाला होवे सो जनक कहिये है,जाकी उत्पत्ति होवे सो जन्य कहिये है इससे आदलेके और भी संबन्ध जानिलेने ॥ २४ ॥

विषयवर्णन-दोहा।

जीव ब्रह्मकी एकता, कहत विषय जन बुद्धि।
तिनको जे अंतर लहैं, ते मतिमन्द अबुद्धि ॥२५॥

जीवब्रह्मकी एकता इस ग्रंथका विषय है. जो प्रतिपादन करिये, सो विषय कहिये है,या ग्रंथ विषे जीवब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करिये है,यातें सो एकता ग्रंथका विषय है,सो एकता सर्व वेदके वचन प्रतिपादन करैहैं, याते जीवब्रह्मका भेद कहे हैं, ते पुरुष शठ हैं और वेदके विरोधी हैं ॥ २५ ॥

प्रयोजनवर्णन-दोहा।

परमानंद स्वरूपकी, प्राप्ति प्रयोजन जानि।
जगत समूल अनर्थ पुनि,है ताकी अतिहानि॥२६॥

प्रपंचका कारण जो अज्ञान और प्रपंच, जन्म मरणरूपी दुःखका हेतु है, यातैं अनर्थ कहिये है, ता अनर्थकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति मोक्ष कहियेहै सो ग्रंथका परमप्रयोजन है और अवांतर प्रयोजन ज्ञान है, जाविषे पुरुषकी अभिलाषा होवै सो परम प्रयोजन कहिये है, और ताकूं पुरुषार्थ भी कहिये है सो अभिलाषा दुःखकी निवृत्तिविषे और सुखकी प्राप्तिविषे सर्व पुरुषनकी होवै है, कोई मोक्षका स्वरूप है यातैं परमप्रयोजन मोक्ष है और ज्ञान नहीं है, काहेतैं सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिका साधन तौ ज्ञान है और सुखकी प्राप्ति वा दुःखकी निवृत्तिरूप ज्ञान नहीं, यातैं अवांतरप्रयोजन ज्ञान है, जो वस्तुद्वारा परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै सो अवांतर प्रयोजन कहिये है, ऐसा ज्ञान है। काहेतैं ? ग्रंथ करिके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै है, यातैं ज्ञान अवांतरप्रयोजन है ॥ २६ ॥

शंकापूर्वक उत्तरका कवित्त।

जीवको स्वरूप अतिआनंद कहत वेद,
ताकूं सुखप्राप्तिको असंभव बखानिये।
आगे जो अप्राप्तवस्तु ताकी प्राप्ति संभवत,
नित्य प्राप्तवस्तुकी तौ प्राप्ति किमि मानिये ॥
ऐसी शंका लेश आनि कीजै न विश्वास हानि,
गुरुके प्रसादतैं कुतर्क भले भानिये।

करको कंकन खोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं,
ज्ञानतैं मिलत इमि प्राप्तप्राप्ति जानिये ॥ २७ ॥

पूर्व कह्या था—"अनर्थकी निवृत्ति, और परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है" सो बनै नहीं. काहेतैं ? सर्व वेद जीवकूं परमानंदस्वरूप वर्णन करैं हैं; और तुम अंगीकार भी करो हो और जो वस्तु अप्राप्त होवे ताकी प्राप्ति संभवै है, सदा प्राप्तवस्तुकी प्राप्ति सर्वथा बनै नहीं यातैं सदा परमानंदस्वरूप आत्माकूं परमानंदकी प्राप्ति कहना सर्वप्रकार करिकै असंभव है, ऐसी कोऊ शंका करै है.

ता शंकाकूं सुनिके ग्रंथके प्रयोजनमें विश्वास दूरि नहीं करना किंतु आत्मविद्याके उपदेश करनेवाले जो गुरु हैं, तिनकी कृपातैं शंकारूपी जो कुतर्क है सो दृष्टांतसे, दूरि करिदेना. सो दृष्टांत कहिये है जैसे—काहूके हाथमें कंगन होवे, ताकूं ऐसा भ्रम होजावै कि—"मेरे हातका कंगन खोय गया." तब वाकूं किसीके कहेसे कंगनका ऐसा ज्ञान होजावे जो—"मेरा कंगन हातमें है," तब वह ऐसे कह है—मेरा "कंगन मिल गया है." इस रीतिसे प्राप्त जो कंगन है, ताकीभी प्राप्ति कहिये है. तैसे परमानंदस्वरूप आत्माविषे अविद्याके बलसे ऐसी भ्रांति होवै है—" आत्मा परमानंदस्वरूप नहीं है, किंतु परमानंदस्वरूप ब्रह्म है. ता ब्रह्मका और मेरा वियोग"

होय गया है, उपासना करिके ता ब्रह्मकूं मैं प्राप्त होऊंगा इसरीतिकी भ्रांति बहुत मूर्ख प्राणियोंको होइ रही है. यद्यपि बहुत पंडित भी ऐसे कहैं हैं, तथापि वे मूर्खही हैं काहेतैं? जो जीवब्रह्मका वियोग अंगीकार करे हैं वे मूर्ख कहिये हैं तिन पुरुषनकूं उत्तमसंस्कारसे जो कदाचित् ब्रह्मज्ञानी आचार्यसे वेदांत ग्रन्थके श्रवणकी प्राप्ति होय जावै, तब सुने अर्थकूं निश्चयकरिके कहैं हैं—"परमानंद हमारेकूं ग्रन्थ और आचार्यकी कृपासे प्राप्त भया है." यह उनका कहनेका अभिप्राय है, आत्मा तो परम आनंदस्वरूप आगे भी था, परंतु "मेरा आत्मा परमआनंदस्वरूप है" इसरीतिसे भान नहीं होवै था यातैं अप्राप्तिकी न्याईं था आचार्यद्वारा ग्रन्थश्रवणसे परमानंदका बुद्धिविषे भान होवै है यातैं परमानंदकी प्राप्ति कहैं हैं। इसरीतिसे प्राप्तिकी भी प्राप्ति बननेते परमानंदकी प्राप्तिरूप ग्रन्थका प्रयोजन संभवै है जैसे प्राप्तकी प्राप्तिग्रन्थका प्रयोजन है तैसे नित्य निवृत्तकी निवृत्ति भी प्रयोजन संभवै है. दृष्टांत जेवरीविषे सर्प नित्यनिवृत्त है और जेवरीके ज्ञानसे निवृत्त होवै है, तैसे आत्मा विषे संसार नित्यनिवृत्त है ताकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसे होवै है यातैं नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति और नित्यप्राप्तकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन है ॥ २७ ॥

"कारणसहित जगत्की निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है" यह पूर्व कह्या सो संभवे नहीं, काहेतैं ? निवृत्ति नाम ध्वंसका है, ध्वंस और नाश दोनों पर्याय शब्द हैं, सो नाश अभावरूप है यातैं मोक्ष विषै भावरूपता और अभावरूपता दोनों प्रतीत होवै है अनर्थकी निवृत्ति कहनेसे अभावरूपता प्रतीत होवे है और परमानंदकी प्राप्ति कहनेसे भावरूपता प्रतीत होवै है। सो दोनों एकपदार्थ विषे बनै नहीं. काहेतैं? भावरूपता और अभावरूपता दोनों आपसमें विरोधी हैं जो विरोधीधर्म होवै, सो एककालमें एक वस्तुविषे रहे नहीं यातैं ग्रन्थका प्रयोजन संभवे नहीं ऐसी कोई शंका करैहै।

ता शंकाके उत्तरका-दोहा।

अधिष्ठानते भिन्न नहिं, जगत निवृत्ति बखान।
सर्पनिवृत्ती रज्जु जिमि, भये रज्जुको ज्ञान ॥२८॥

कारणसहित जगत्की निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है, यातैं पृथक् नहीं जैसे सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुरूप है "सारे कल्पित वस्तुकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, यातैं पृथक् नहीं," यह भाष्यकारका सिद्धान्त है यातैं इस स्थानविषे अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्मरूप है काहेतैं ? जो सर्व अनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है सो ब्रह्म भावरूप है, यातैं अनर्थकी निवृत्ति भावरूप होनेतैं ग्रन्थका प्रयोजन बनै है, यह वार्त्ता सिद्ध भई ॥ २८ ॥

दोहा।

जो जन प्रथमतरंग यह, पढै ताहि तत्काल।
करहु मुक्त गुरुमूर्ति है, दादू दीनदयाल ॥ २९ ॥

इति अनुबंधसामान्यनिरूपणं नाम प्रथमस्तरंगः ॥

द्वितीयस्तरङ्गः २.

अनुबंधविशेषनिरूपण-दोहा।

याके प्रथमतरंगमें, किया अनुबंध विचार।
कहूँ ब द्वितियतरंगमें, तिनको ही विस्तार ॥ १ ॥

चार साधनयुक्त अधिकारी कह्या. तिन चार साधनमें मुमुक्षुता गिनी है मोक्षकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है. कारणसहित जगत्की निवृत्ति और ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है ताके विषे कारणसहित जगतकी निवृत्तिरूप मोक्षका अंश, ताकूं कोऊ चाहै नहीं यह वार्त्ता १-

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै हैं-

अधिकारीखंडन-दोहा।

मूलसहित जगध्वंसकी, कोउ करत नहिं आश।
किंतु विवेकी चहतहै, त्रिविध दुःखको नाश ॥ २ ॥

मूल अविद्यासहित जो जगत्का ध्वंस कहिये निवृत्ति ताकी आश कहिये इच्छा, कोऊ पुरुष करै नहीं है किंतु कहिये कहा करै है? तीनि प्रकारके जो दुःख हैं तिनका नाश विवेकी पुरुष चाहै है. याका यह अभिप्राय है-

दुःख तीनप्रकारके हैं. एक तौ अध्यात्म दुःख है, दूसरा अधिभूत दुःख है और तीसरा अधिदेव दुःख है, रोग क्षुधादिकोंसे जो दुःख होवै सो अध्यात्मदुःख कहिये है. चोर व्याघ्र सर्पादिकोंसे जो दुःख होवै सो अधिभूत दुःख कहिये है. यह राक्षस प्रेत ग्रहादिक और शीत वात आतपतैं जो दुःख हो सो अधिदेव दुःख कहियेहै. इस रीतिसे तीन भांतिके जो दुःख हैं तिनके नाशकी सर्व पुरुषोंकूं इच्छा है. दुःखसे भिन्न जो पदार्थ हैं तिनके नाशकी विवेकी पुरुष इच्छा करे नहीं यातैं अज्ञानसहित सकल जगत्की निवृत्तिकी काहूकूं इच्छा बने नहीं और जो सिद्धांती ऐसे कहै–"यद्यपि सकलपुरुष दुःख निवृत्तिकी इच्छा करे हैं, तथापि अज्ञानसहित सर्व जगत्की निवृत्ति बिना दुःखोंकी निवृत्ति होवै नहीं यातैं दुःखनिवृत्तिके निमित्त अज्ञान सहित जगत्की निवृत्तिकूं भी चाहै है" सो बनै नहीं काहेतैं–

जो अयुर्वेदमें औषध कहै हैं, तिनतैं रोगजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है, और भोजनसे क्षुधाजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है इस रीतिसे अपने अपने उपायनतै सर्व दुःखोंकी निवृत्ति होवै है यातैं अज्ञानसहित जगत्की निवृत्ति बिना भी दुःखोंकी निवृत्ति बनै है, दुःखोंकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिकी

चाहत। बनै नहीं. "कारणसहित जगतकी निवृत्ति और ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है" ताके विषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके अंशकी भी इच्छा काहूकूं बनै नहीं यह वार्त्ता प्रथम दोहा विषे कही ॥ २ ॥

ब्रह्मप्राप्ति मोक्षके द्वितीय अंशकी भी इच्छा काहूकूं बनै नहीं यह वार्ता—/

यह पूर्वपक्षी कहै है-दोहा।

किय अनुभव जा वस्तुको, ताकी इच्छा होइ।
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम, चहै न ताकूं कोइ ॥ ३ ॥

जा वस्तुका अनुभव कहिये ज्ञान होय ता वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है. जा वस्तुका ज्ञान होवै नहीं ताकी प्राप्तिकी इच्छाभी होवै नहीं. जैसे अन्यदेशके अनंतर पदार्थ अज्ञात है तिनकी प्राप्तिकी इच्छा काहूं पुरुषकूं होवै नहीं और अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मका ज्ञान है नहीं और जाकूं ब्रह्मका ज्ञान है सो अधिकारी नहीं किन्तु मुक्त है ताकूं ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं, यातैं वेदांत श्रवणतैं पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं इस रीतिसे अज्ञानसहित—जगतकी निवृत्ति और ब्रह्मकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष ताकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं यातैं मुमुक्षु कोऊ है नहीं ॥ ३ ॥

अन्यरीतिसे अधिकारीका अभाव—
पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है—दोहा।

चहत विषयसुख सकल जन, नहीं मोक्षको पंथ।
अधिकारी यातैं नहीं, पढै सुनै जो ग्रंथ ॥ ४ ॥

सर्वपुरुष विषयसुखकूं चाहे हैं और जो कोई सकल विषयनका त्यागकरिके तपविषे आरूढ है सो भी परलोकके उत्तम भोगनकी इच्छाकरिके नानाक्लेश संहारे है यातैं इस लोकका अथवा परलोकका विषयसुख सर्व चाहे हैं सो विषय मोक्षविषे है नहीं यातैं मोक्षका पंथ कहिये साधन,ताकूं कोई पुरुष चाहै नहीं इस रीतिसे मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता बनै नहीं और सकलपुरुषनकूं विषयसुखकी इच्छा होवे है यातैं वैराग्य, शम, दम, उपरति भी काहू विषे बनै नहीं यातैं चतुष्टयसाधनसहित अधिकारीका अभाव होनेतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है ॥ ४ ॥

विषयखण्डन पूर्वपक्ष-दोहा।

जीवब्रह्मकी एकता, कह्यो विषय सो कूर।
क्लेशरहित विनु ब्रह्म इक, जीव क्लेशको मूर ॥ ५ ॥

पूर्व कह्या जो" जीव ब्रह्मकी एकता, या ग्रंथका विषय है" सो संभव नहीं काहेतैं? ब्रह्म तौ अविद्या,अस्मिता, राग, द्वेष,अभिनिवेश, इन पंचक्लेशोंते रहित है और विभु कहिये व्यापक है, एक है, सजातीयभेदरहित है, काहेतैं ? ब्रह्मके सजातीय और ब्रह्म है नहीं और जीव विषे सर्वक्लेश हैं और परिच्छिन्न हैं और जीव नाना हैं काहेतैं जितने शरीर हैं, उतने जीव हैं जो सर्व शरीर

विषे जीव एक होवै तो एक शरीरमें सुख अथवा दुःख होनेतैं सर्व शरीरविषे सुख और दुःख होना चाहिये।

और जो वेदांती कहैहैं—"सुखसे आदिलेके अंतःकरणके धर्म हैं सो अंतःकरण नाना हैं, यातैं एकके सुखी दुःखी होनेतैं सर्व सुखी दुःखी नहीं होवे हैं, और साक्षी सुख दुःखते रहित है एक है और सर्व क्लेशते रहित है और ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनै है"—

सो वार्त्ता बनै नहीं, काहेतैं जो कर्त्ताभोक्ता जीव है तिसतैं भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समान है, और जो साक्षी अंगीकार भी करो, सो भी एक बनै नहीं; नाना साक्षी मानने होवैंगे काहेतैं? यह वेदांतका सिद्धांत है—अंतःकरण और सुख दुःखसे आदिलेके अंतःकरणके धर्म इंद्रिय और अंतःकरणके विषय नहीं, किंतु साक्षीके विषय हैं काहेतैं, इंद्रिय तौ पंचीकृतभूतनकूं विषय करै है यह इतना भेद है—नेत्र इंद्रिय तौ रूपवान जो वस्तु है, ताके रूपकूं और रूपके आश्रयकूं दोनवांकूं विषय करै है; जैसे नील पीतादिक घटका रूप और तिस रूपकूं आश्रय घटहै, नेत्रइंद्रिय विषय करै है और त्वचा इंद्रिय भी स्पर्शकूं और ताके आश्रयकूं, दोनुवांकूं विषय करै है और रसना, श्रवण, घ्राण, ये तीनि तौ रस, गंध शब्दमात्रकूं विषय करै हैं तिनके आश्रयकूं विषय करैं नहीं, यातैं इन तीनोंहीसे तौ अंतःकरणका ज्ञान बनैनहीं

और नेत्रमें तथा त्वचासे अन्तःकरणका ज्ञान बनै नहीं, काहेतैं, पंचीकृत भूत अथवा पंचीकृत भूतनका कार्य जो रूपवान् अथवा स्पर्शवान् होवै सो नेत्र और त्वचाका विषय होवै है अन्तःकरण अपंचीकृतभूतनका कार्य है यातैं नेत्र और त्वचाका भी विषय नहीं इसी कारणतैं अपंचीकृतभूतनका कार्य नेत्र इंद्रिय भी नेत्रका विषय नहीं है और बाह्यवस्तु इंद्रियका विषय होवै है और अन्तःकरण इंद्रियकी अपेक्षाते अन्तर है, यातैं इंद्रियनका विषय नहीं.

और अंतःकरणकी वृत्तिका भी अन्तःकरण विषय नहीं काहेतैं? अन्तःकरण वृत्तिका आश्रय है यातैं अन्तःकरण अपनी वृत्तिका विषय बनै नहीं, जैसे अग्नि दाहका आश्रय है, सो दाहका विषय नहीं होवै है, किंतु अग्निसे भिन्न जो काष्ठसे आदि लेकर वस्तु हैं सो दाहका विषय होवै है तैसे अंतःकरणसे भिन्न जो वस्तु हैं सो अन्तःकरणजन्य वृत्तिके विषय हैं और अंतःकरण नहीं, तैसे अन्तःकरणके धर्मभी अन्तःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं काहेतैं, अंतःकरणकूं विषय करनेवास्ते जो अन्तःकरणकी वृत्ति होवै तो अन्तःकरणकूं धर्म जो सुखादिक हैं तिनकूं भी विषय करै, सो अन्तःकरणके विषय करनेवाली वृत्ति तो अन्तःकरणके संमुख होवै नहीं

यातैं अंतःकरणके धर्म भी अन्तःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं और यह नियम है—जो वृत्तिके आश्रयसे किंचित दूरि वस्तु होवै, सो वृत्तिका विषय होवै है, जो वस्तु वृत्तिके आश्रयसे अत्यंतसमीप होवै,सो वृत्तिका विषय होवै नहीं. जैसे नेत्रकी वृत्तिका आश्रय जो नेत्र, ताके अत्यन्त समीप अंजन नेत्रकी वृत्तिका विषय नहीं तैसे अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय जो अन्तःकरण ताके अत्यंतसमीप जो सुखसे आदिलेके धर्म सो अंतःकरणकी वृत्तिके विषय बनै नहीं,इस रीतिसे धर्मसहित अन्तःकरणका इंद्रियतैं अथवा अपनेतैं भान बनै नहीं किंतु साक्षीके विषय हैं.

सो साक्षी एक अंगीकार करैं तो जैसे एक अंतःकरणके सुख दुःखका साक्षीसे भान होवै है,तैसे सर्वके सुखदुःखका भान होना चाहिये यातैं साक्षी नाना हैं जब नाना साक्षी अंगीकार करिये, तब दोष नहीं,काहेतैं जो साक्षीकी उपाधि अन्तःकरण है ता साक्षीसेअपनी उपाधिके धर्मका भान होवै है,यातैं सर्वके सुखदुःखका भान होवै नहीं इस रीतिसे नाना जो साक्षी, तिन्हकी एक ब्रह्मके साथ एकता बनै नहीं ॥ ५ ॥

प्रयोजनखंडन पूर्वपक्ष–दोहा।

बंधनिवृत्ति ज्ञानतैं, बनै न विन अध्यास।
सामग्री ताकी नहीं, तजो ज्ञानकी आस ॥ ६ ॥

"अहंकारसे आदिलेके जो अनात्मवस्तु हैं सो बंध कहिये हैं" सो बंध जो अध्यासरूप होवै तो ज्ञानतें निवृत्त होवै, और अध्यासरूप नहीं होवै तौ ज्ञानतें निवृत्त होवै नहीं. काहेतें? ज्ञानका यह स्वभाव है-जा वस्तुका ज्ञान होवै, ताके विषे अध्यास और अज्ञान तिनकूं दूर करै है, जैसे जेवरीका ज्ञान, जेवरीविषे सर्प अध्यासकूं और जेवरीके अज्ञानकूं दूरकरै है, भ्रांति ज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु और भ्रांतिज्ञान, ताका नाम अध्यास है, जाके विषे जो वस्तु मिथ्या नहीं है, किंतु सत्य है ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै नहीं तैसे आत्मा विषे अहंकारसे आदिलेके बंध जो अध्यासकहिये मिथ्या होवे तौ ज्ञानसे निवृत्ति होवे सो अत्माविषे मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं और बंधप्रतीतिहोवे है, यातैं बंध सत्यहै ता सत्यबंधकी ज्ञानसे निवृत्तिकी आशा निष्फल है ॥३॥

अध्याससामग्रीनिरूपण--दोहा।

सत्यवस्तुके ज्ञानने, संस्कार इकजान।
त्रिविधदोष अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान ॥ ७ ॥

१-सत्यवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार और तीनप्रकारके दोष २-प्रमेयका दोष ३-प्रमाताका दोष, ४-प्रमाणका दोष और ५-अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान, इतनी अध्यासकी सामग्री है.या बिना अध्यास होवै नहीं जैसे सीपीमें रूपेका और जेवरीमें सर्पका अध्यास होवै है,

सो जिस पुरुषने सत्यरूपा और सर्प देखा है ताकूं होवै है, और जाकूं सत्य रूपेका और सर्पका ज्ञान नहीं ताकूं होवे नहीं यातैं सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कार अध्यासके हेतु हैं और सीपीमें सर्पका, जेवरीमें रूपेका अध्यास होवे नही, यातैं प्रमेयविषे सादृश्य दोष अध्यासका हेतु है. इस रीतिसे प्रमाताविषे लोभ भयसे आदिलेके और नेत्रादिक प्रमाणविषे पित्ताकामलासे आदिलेके जो दोष सो अध्यासके हेतु हैं. और सीपीका "इदं" रूपकरके सामान्य ज्ञान होवे और "यह सीपी है" ऐसा विशेष ज्ञान नहीं होवे जब अध्यास होवे है "सीपी है" ऐसा विशेषरूपकरिकै ज्ञान होवै, जब अध्यास होवे नहीं और सामान्यरूपकरिके ज्ञान नहीं होवे, तौभी अध्यास होवे नहीं, यातैं अधिष्ठानका विशेषरूप करिके अज्ञान और सामान्यरूपकरिके ज्ञान, अध्यासका हेतु है इतनी अध्यासकी सामग्री है इनमें कोई एक नहीं होवे तौ भी अध्यास होवे नहीं जैसे-कुलाल चक्र, दंड, मृत्तिका, घटकी सामग्री है कोई एक न होवे तौ घट होवे नहीं तैसे अध्यास भी सारी सामग्रीसे होवे है.

तैसे बंधके अध्यासमें एक भी कारण है नहीं, बन्ध कहूँ सत्य होवे तो ताके ज्ञानजन्य संस्कारते आत्मा विषे मिथ्याबंध प्रतीत होवे सो सिद्धान्तमें आत्मासे भिन्न कोई सत्यवस्तु है नहीं; यातें सत्य बंधके ज्ञानजन्य

संस्कारका अभाव होनेतें आत्माविषे बन्धका अध्यास बनै नहीं.

तैसे आत्माका और बन्धका सादृश्यभी है नहीं उलटा तमः प्रकाशकी न्याई विपरीत स्वभाव है,आत्मा प्रत्यक् है और बंध पराक् है प्रत्यक् नाम अंतरका है और पराक् नाम बाह्यका है, आत्म विषयी है और बंध विषय है, जो प्रकाश करनेवाला होवै सो विषयी कहिये है, जाका प्रकाश करिये सो विषय कहियेहै,प्रत्यक्विषे पराक्का,तथा पराक्विषे प्रत्यक्का अध्यास होवै नहीं जैसे पुत्रादिकनकी अपेक्षातैं देह प्रत्यक् है। ताके विषे पुत्रादिकनका और पुत्रादिकविषे देहका अध्यास होवै नहीं और विषयमें विषयीका, तथा विषयीमें विषयका अध्यास होवै नहीं, जैसे विषय जो घटादिक तिनविषे विषयी दीपकका,और दीपक विषे घटादिकनका अध्यास होवै नहीं तैसे सादृश्यके अभाव होनेतें प्रत्यक्विषयी जो आत्मा ताविषे पराक् विषयरूप बन्धका अध्यास बनै नहीं, प्रत्यक्का और पराक्का विरोध है विषयका और विषयीका विरोध है, सादृश्य नहीं, यातें बंधका अध्यास आत्मविषे बनैं नहीं.

तैसे प्रमाताके दोषका और प्रमाणके दोषका भी अभाव है, काहेतें, प्रमातासे आदिलेके सर्व प्रपंच अध्यासरूप है सोई बन्ध है. यह वेदांतका सिद्धान्त है,इस

रीतिसे बन्धनके अध्यास पूर्व प्रमाता प्रमाणका स्वरूप असिद्ध है और ताका दोष भी असिद्ध है यातैं बन्धका अध्यास बनै नहीं.

और अधिष्ठानका विशेषरूप करिके अज्ञान भी बनै नहीं काहेतैं? जो बन्धका अधिष्ठान ब्रह्म है,सो स्वयम्प्रकाश ज्ञानरूप है, ता स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप ब्रह्मविषे सूर्यविषे तमकी न्याई अज्ञान बनै नहीं जैसे प्रकाशमान सूर्यसे तमका विरोध है, तैसे चेतन प्रकाश और तमरूप अज्ञानका परस्पर विरोध है और अधिष्ठानका अज्ञान अंगीकार करै तौ भी बन्धका अध्यास बनै नहीं काहेतैं ? अत्यन्त अज्ञातविषे तथा अत्यन्त ज्ञानविषे अध्यास होवै नहीं; किंतु विशेष रूपसे अज्ञात और सामान्यरूपसे ज्ञातविषे होवै है और ब्रह्म सामान्यविशेषभावसे रहित है, निर्विशेष है यह सिद्धान्तहै यातैं विशेषरूपसे अज्ञात और सामान्यरूपसे ज्ञात ब्रह्म बनै नहीं और अध्यासके लोभसे ब्रह्मविषे सामान्य विशेष भाव अंगीकार करोगे तो सिद्धान्तका त्याग होवेगा इसरीतिसे निर्विशेष जो प्रकाशरूप ब्रह्म ताका विशेषरूपसे अज्ञान और सामान्यरूपसे ज्ञानका अभाव होनेतैं ताके विषे अध्यास बनै नहीं, यातैं ब्रह्मविषे बंध अध्यासरूप है यह कहना बनै नहीं किंतु बन्ध सत्यहै. ता सत्यबंधकी ज्ञानसे निवृत्तिकाअसंभव है; यातैं ज्ञानद्वारा मोक्षरूप

ग्रन्थका प्रयोजन बनै नहीं. और ज्ञानसे मोक्षका प्रतिपादक जो सिद्धांत सो समीचीन नहीं, किंतु कर्मसे मोक्ष होवे है. यह वार्त्ता एकभविक वादककी रीतिसे प्रतिपादन करैं हैं ॥ ७ ॥

दोहा।

सत्यबन्धकी ज्ञानते, नहीं निवृत्ति सयुक्त।
नित्य कर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त ॥ ८ ॥

सत्यबन्धकी ज्ञानसे निवृत्ति माननी, सयुक्त कहिये युक्ति सहित नहीं किंतु अयुक्त है यातैं जो पुरुष मुक्त हुआ चाहै सो संतत कहिये निरंतर नित्य कर्म करै, याका यह अभिप्राय है-

कर्म दो प्रकारका है-एक विहित है और एक निषिद्ध है पुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्त जाका स्वरूप वेदने बोधन किया है,सो विहितकर्म कहिये है. और पुरुषकी निवृत्ति जासों बोधन करी है सो निषिद्ध कर्म कहिये है. और स्वभावसिद्ध जो क्रिया है सो कर्म नहीं,काहेतैं जो वेदने प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके निमित्त बोधन किया है सो कर्म कहिये है उदासीनक्रिया कर्म नहीं यातैं दोप्रकारका कर्म है, तीन प्रकारका नहीं.

विहितकर्म चार प्रकारका है:-१प्रायश्चित्त है और२-काम्य है और३नैमित्तिक है और४ नित्य है. पापनाशके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो प्रायश्चित्त कहिये है १

जैसे प्रमादसे द्रव्यके ग्रहणजन्य जो यतीकूं पाप ताके नाशके निमित्त द्रव्यका त्याग और तीन उपवास हैं. २- फलके निमित्त विधान किया जो कर्म सो काम्य कहिये है; जैसे वृष्टिकामकूं कारीरी याग है, और स्वर्गकामकूं अग्निहोत्र सोमयागसे आदिलेके हैं। ३-जा कर्मके नहीं कियेसे पापहोवे और कियेसे पुण्यपापरूप फल होवे नहीं और सदा जाका विधान नहीं, किंतु किसी निमित्तकूं लेके विधान किया होवै सो कर्म नैमित्तिक कहिये है. जैसे-ग्रहणश्राद्ध है और अवस्थावृद्ध, जाति-वृद्ध, आश्रमवृद्ध, विद्यावृद्ध, धर्मवृद्ध ज्ञानवृद्ध पुरुषके आगमनते उत्थानरूप कर्म है विद्या शब्दसे शास्त्रज्ञानका ग्रहण है और ज्ञान शब्दसे अपरोक्ष विद्याका ग्रहण है. पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर उत्तम हैं. ४-जाके नहीं कियेसे पापहोवै. कियेसे फल होवै नहीं और सदा जाका विधान होवै. सो नित्यकर्म कहिये है. जैसे-स्नान संध्यादिक हैं इसीरीतिसे चारप्रकार विहित और निषिद्ध मिलिके पांच प्रकारका कर्म है.

मोक्षकी इच्छावान् काम्य और निषिद्धकर्म करै नहीं काहेतैं? काम्यकर्मसे उत्तमलोककूं जावै है. और निषिद्धकर्मसे नीचलोककूं जावै है यातैं दोनोंको त्याग करै और नित्य कर्म सदा करै. और नैमित्तिकका जब निमित होवै तब नैमित्तिक भी करै काहेतैं? नित्यनैमि-

त्तिक कर्म नहीं करै तो पाप होवैगा. ता पापसे नीच योनिकूं प्राप्त होवैगा यातैं पापके रोकनेवास्ते नित्यनैमित्तिक कर्म करै नित्य नैमित्तिक कर्मका और फल नहीं यही फल है, जो तिनके नहीं करनेसे पाप होवै है सो तिनके करनेसे होवै नहीं यातैं मुमुक्षु नित्यनैमित्तिक कर्म अवश्य करे.

और जो कदाचित् प्रमादसे निषिद्धकर्म होजावे तो ताका दोष दूर करनेकूं प्रायश्चित्त करे, जो निषिद्धकर्म नहीं किया होवे तौ भी जन्मांतरके जो पाप हैं, तिनके दूरि करनेवास्ते प्रायश्चित्त कर्म करे, परन्तु इतना भेद है–प्रायश्चित्त दो प्रकारका है–एकतो असाधारण है और एक साधारण है. १--जो किसी पाप विशेषके दूर करनेवास्ते शास्त्रने विधान किया होवे सो असाधारणप्रायश्चित्त कहिये है--जैसे२--पूर्व कह्या उपवास हैं और सर्वपापके दूरि करनेवास्ते शास्त्रने जो विधान किया कर्म सो साधारण प्रायश्चित्त कहिये है, जैसे--गंगास्नान और ईश्वरके नामका उच्चारण है, इतने आदिलेके और भी जानि लेने. इस रीतिसे दो प्रकारके प्रायश्चित्त हैं १--जो ज्ञात पाप होवै तौ तिस पापका नाशक जो असाधारण प्रायश्चित्त शास्त्रने विधान किया है, ताकूं करै. और २--जो जन्मांतरके अज्ञातपापहैं

तिनके दूर करनेवास्ते साधारण प्रायश्चित्त करै. काहेतैं! १--असाधारण प्रायश्चित्तका यह स्वभाव है--जा पापका नाश करनेवास्ते शास्त्रने जो प्रायश्चित्त विधान किया है सो पाप प्रायश्चित्तसे दूर होवै है और नहीं, और२-जन्मान्तरके पापका ऐसा ज्ञान है नहीं जा कौनसा पाप है किस प्रायश्चित्तसे दूर होवैगा. याते साधारण प्रायश्चित्त करे साधारण प्रायश्चित्तसे सर्व पाप दूरि होवे हैं, यद्यपि गङ्गा स्नानसे आदि लेके जो साधारण प्रायश्चित्त कहे सो केवल प्रायश्चित्तरूप नहीं किंतु-काम्यरूप और २-प्रायश्चित्तरूप है, काहेतैं? "गंगास्नानसे उत्तमलोकको प्राप्ति" शास्त्रमें कही है तैसे "ईश्वरके नाम उच्चारणसे भी उत्तमलोककी प्राप्ति" कही है. यातैं काम्यरूप और पापके नाशक हैं, यातैं प्रायश्चित्तरूप है, जैसे अश्वमेध ब्रह्महत्यादिक पापका नाशक है, औरस्वर्गकी प्राप्तिरूप फलका हेतु है, तैसे गंगास्नानादिक हैं, केवल प्रायश्चित्त नहीं यातैं गंगास्नानादिकोतैं उत्तम लोककी प्राप्ति होवै है, सो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं तथापि जाको उत्तम लोककी वांछा है, ताको तो गंगा स्नानादिक पाप नाश करिके उत्तम लोककूं प्राप्त करे हैं. जाको लोककी कामना नहीं है, ताके केवल पापहीके नाशक हैं यातैं कामना सहित अनुष्ठान किये काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं, लोक कामनासे विना अनुष्ठान

किये केवल प्रायश्चित्तरूप हैं, जैसे वेदांतमतमें संपूर्णकर्म सकामपुरुषकूं संसारके हेतुहैं और निष्कामकूं अंतःकरणकी शुद्धि करिके मोक्षके हेतु हैं, तैसे एकही गंगास्नान तथा ईश्वरका नाम उच्चारण सकामकूं तो काम्यरूपप्रायश्चित्त हैं और निष्कामकूं केवल प्रायश्चित्तरूप हैं, यातैं मुमुक्षु साधारण प्रायश्चित्त करै, इस रीतिसे जन्मांतरके संपूर्ण पापका ज्ञानसे विना ही नाश होवे है तैसे मुमुक्षुके जन्मांतरके काम्यकर्म भी वंध्याके समान हैं, फलके हेतु नहीं. काहेतैं जैसे कर्मके अनुष्ठान कालविषे पुरुषकी इच्छा फलका हेतु वेदांत-मतमें अंगीकार करी है, इच्छारहित अनुष्ठान किये स्वर्गादि फलके हेतु नहीं, यह वेदांतका सिद्धान्त है, तैसे कर्मकी सिद्धिसे अनंतर भी पुरुषकी इच्छा फलका हेतु है सो पुरुषकी इच्छा जिस कालमें पुरुष मुमुक्षु हुआ तब दूर होगई यातें जन्मांतरके काम्यकर्म भी फलके हेतु नहीं जैसे किसी पुरुषने धनकी प्राप्तिकी इच्छाते धनीपुरुषका आराधन किया होवे, तो धनीके आराधनसे अनंतर भी धनकी इच्छा दूर होय जावे तौ धनकी प्राप्तिरूप फल होवे नहीं, तैसे जन्मान्तरके काम्य-कर्मका भी मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतें फल होवे नहीं, इस रीतिसे केवल कर्मसे मोक्ष होवे है ।

३

वर्त्तमान जन्म विषे काम्य और निषिद्ध किये नहीं, जातैं ऊर्ध्वलोक अधोलोककूं जावे, जन्मांतरके प्रारब्ध जो निषिद्ध और काम्य, तिनका भोगसे नाश होवे है नित्य और नैमित्तिकके नहीं करनेते जो पाप होवे सो तिनके करनेतैं मुमुक्षुकूं होवे नहीं, और जन्मांतरके संचित जो निषिद्ध हैं, तिनका साधारण प्रायश्चित्तसे नाश होवेहै, जन्मांतरका संचित काम्य कर्म मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल देवे नहीं, यातैं मुमुक्षु नित्य नैमित्तिक और साधारण प्रायश्चित्त कर्म करै और वर्त्तमान जन्मका ज्ञात निषिद्धकर्म होवे तौ असाधारण प्रायश्चित्त करै, अथवा नित्य और नैमित्तिक ही करैं, प्रायश्चित्त नहीं करे काहेतैं? जो संचित निषिद्धकर्म और काम्यकर्म, सो मुमुक्षुके नाश होय जावे हैं जैसे ज्ञानवान्‌के संचितकर्मका नाश वेदांतमें अंगीकार किया है, तैसे निषिद्धकाम्यका त्याग करके नित्यनैमित्तिक कर्मविषे वर्त्तमान जो मुमुक्षु ताके संचित कर्मका नाश होवे है अथवा संचित जो काम्य और निषिद्ध सो सारे मिलके एकजन्मका आरंभ करै हैं यातैं मुमुक्षुकूं एक जन्म और होवे है अथवा योगीके कायव्यूहकी न्याई एक ही कालविषे सारे संचित अनंतशरीरोंका आरंभ करै हैं, तिनतैं मुमुक्षु उत्तर जन्मविषे सर्वका फल भोग लेवे है, अथवा नित्य और नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानते जो क्लेश होवे है, सो

जन्मांतरके संचित निषिद्धकर्मका फल है, यातैं जन्मांतरका संचितनिषिद्ध और जन्मका आरंभ करे नहीं काम्य जो संचित है सो एकजन्म अथवा एक कालमें अनंत शरीरोंका आरंभ करै है यातैं मुमुक्षुकूं उत्तरजन्मविषे दुःखका लेश भी होवै नहीं केवल सुखका भोग होवै है काहेतैं ? जन्मांतरके संचित जो विहितकर्म है तिनते शरीर हुआ है, और संचित जो निषिद्ध है तो नित्यनैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेशतैं पूर्वजन्मविषे भोग लिये इस रीतिसे प्रायचित्तसे विना केवल नित्य और नैमित्तिक कर्मके अनुष्ठानतैं मोक्ष होवै है यातैं नैमित्तिक कर्मके समय नैमित्तिक अनुष्ठान करै और नित्य कर्म संतत अनुष्ठान करै या मतकूं शास्त्रमें एक भविकवाद कहै हैं

यातैं भी बंधकी निवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रयोजन नहीं काहेतैं ? जो वस्तु औरसे होवै नहीं सो मुख्य प्रयोजन होवै है, जैसे—रूपका ज्ञान नेत्र विना औरसे होवै नहीं सो रूपज्ञान नेत्रका प्रयोजन है और बंधकी निवृत्ति ग्रन्थसे विना क्रमतैं होवै है, यातैं बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन नहीं इस रीतिसे ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन बने नहीं।

अधिकारी आदिकोंके अभावसे संबंध भी बनै नहीं काहेतैं ? विषयके अभावते ग्रंथका और विषयका प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव संबंध बनै नहीं, अधिकारी और

फलके अभावतैं, तिनका प्राप्यप्रापक भाव संबंध बनै नहीं अधिकारीके अभावतैं ताका और विचारका कर्तृ-कर्तव्यभावसंबंध बनै नहीं. ज्ञानकूं निष्फलता होनेतैं ग्रंथका और ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंध बनै नहीं सफलवस्तु जन्य होवे है, पूर्व कही रीतिसे ज्ञान सफल है नहीं और ज्ञानके स्वरूपका भी अभाव है यातैं भी ज्ञानका और ग्रंथका संबंध बनै नहीं, काहेतैं? जीव ब्रह्मके अभेद निश्चयका नाम सिद्धांतका ज्ञान है सो अभेद निश्चय बनै नहीं, काहेतैं? जीवब्रह्मका अभेद है नहीं यह वार्ता विषयके निराकरणमें पूर्व प्रतिपादन करी है यातैं अभेद निश्चयरूप ज्ञान बनै नहीं इस रीतिसे अधिकारी आदिक अनुबंधनके अभावतैं, ग्रंथका आरंभ बनै नहीं ॥ ८ ॥

अधिकारीमण्डन उत्तरपक्ष ।

पूर्वपक्षीने प्रथम कह्या जो-"मोक्षकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं,काहेतैं ? मोक्षविषे दो अंश हैं-एक तो कारण सहित जगत्की निवृत्ति मोक्षका अंश है, और दूसरा अंश ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है, तिनविषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकी इच्छा काहूकूं है नहीं, किन्तु तीनप्रकारके दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वपुरुषनकूं है, सो दुःखकी निवृत्ति अपने अपने उपा-

यातैं होय जावे है, यातैं मूलसहित जगत्की निवृत्तिकी इच्छावाला मुमुक्षुअधिकारी बनै नहीं" ताका—

समाधान प्रथम कहे हैं—दोहा।

मूलसहित जग हानि बिन, ह्वै न त्रिविध दुखध्वंस।
याते जन चाहत सकल, प्रथम मोक्षको अंस ॥९॥

मूल कहिये जगत्का कारण जो अज्ञान, और जगत्के नाशविना तीन प्रकारके दुःखका और उपायोंतैं ध्वंस कहिये नाश होवै नहीं, और मूलअविद्याके नाशतैं सर्वदुःख और दुःखके कारण रोगादिक, और रोगादिकोंके आश्रय शरीरादिकोंका नाश होवै है, यातैं त्रिविध दुःखके नाशके निमित्त कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकूं सकल पुरुष चाहे हैं, तात्पर्य यह है, जो सर्व औषध आदिक उपाय करनेविषे समर्थ हैं, तिनके भी दुःख नियम करि दूरि होवै नहीं, काहू पुरुषके रोगादिजन्य दुःख औषधादिक उपायोंतैं नाश होवे हैं और काहूके दुःखका औषधादिक उपायोंते नाश होवे नहीं यातैं औषधादिक उपायोंतैं रोगादिजन्य दुःखकी नियम करिके निवृत्ति होवे नहीं और जाके औषधादिक उपयोंतैं दुःखकी निवृत्ति होवे है ताके भी दुःखकी उत्पत्ति फिर होवे है, यातैं औषधआदिक उपयोंतैं दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति होवे

नहीं, जाकी निवृत्ति हुई है ताकी फेरि उत्पत्ति नहीं होवे सो अत्यंत निवृत्ति कहिये है, औषधादिक उपायोंतें दुःखकी निवृत्ति नियमकरिके होवे नहीं और निवृत्ति जो दुःख, ताकी फेर भी उत्पत्ति होवे है यातें अत्यंत निवृत्ति भी तिन उपायोंतें होवे नहीं और दुःखके सकलसाधनका नाश होवै तो सकलदुःखकी नियम करके निवृत्ति होवे और दुःखके साधनका नाश हुएते फेरि दुःख होवे नहीं,यातें दुःखकी निवृत्तिके निमित्त दुःखके साधनकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वकूं होवे है.

सो दुःखका साधन अज्ञान और ताका कार्य प्रपंच है, यह वार्ता छांदोग्यउपनिषद्में भूमाविद्याविषे प्रसिद्ध है, तहां यह प्रसंग है—"एक समय सनत्कुमारके पास नारद प्राप्त हुए और नारदने कहा—हे भगवन्! जो आत्मज्ञानी पुरुष है, ताकूं शोक नहीं होवे और मैं शोकसहित हूं,याते मैं अज्ञानी हूं मेरेसों उपदेश करो, जासे मेरा अज्ञान दूर होवे" तब सत्कुमारने नारदकूं कहा कि—"हे नारद! भूमा शोकरहित है, सुखरूप है, और भूमासे भिन्न सकल तुच्छ है और दुःखका साधन है,भूमा नाम ब्रह्मका है इस रीतिसे कि, ब्रह्मसे भिन्न जो वस्तु सो सकलदुःखके साधन कहे हैं,अज्ञान और ताका कार्य ब्रह्मसे भिन्न है यातें दुःखका साधन है, ताकी निवृत्ति हुएसे सर्वदुःखकी नियम करिके अत्यंत निवृत्ति बनै है,

यातैं सकलदुःखकी निवृत्तिकेनिमित्त अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकी चाह बनै है॥९॥

और जो पूर्वपक्षीने कह्या—"जा वस्तुका अनुभव किया होवे ताकी प्राप्तिकी इच्छा होवे है ब्रह्मका अनुभव काहूने किया है नहीं यातैं ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीय अंशकी इच्छा काहूकूं होवे नहीं";

ताका समाधान कहे हैं—दोहा।

किय अनुभव सुखको सबहि,ब्रह्म सुन्यो सुखरूप।
ब्रह्मप्राप्ति या हेतुतैं, चहत विवेकी भूप ॥ १० ॥

सर्व पुरुषने सुखका अनुभव किया है यातैं सुखकी इच्छा सबकूं है और ब्रह्म नित्य सुखरूपहै; ऐसा सच्छास्त्रमें माना है, यातैं विवेकी भूप कहिये उत्तम विवेकी सुखस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति चाहे हैं ॥ १० ॥

दोहा।

केवलसुख सब जन चहैं, नहीं विषयकी चाह।
अधिकारी यातै बनैं,है जु विवेकी नाह ॥ ११ ॥

पूर्व कह्या जो-"सर्वपुरुष विषयजन्य सुख चाहे हैं, सो विषयजन्य सुख मोक्षविषे प्राप्त होवे नहीं किंतु जगत्में प्राप्त होवे है, यातैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारीके अभावतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ताकूं यह पूछे हैं जो कोई मुमुक्षु नहीं है अथवा मुमुक्षुतो है, परंतु तिनकी ग्रन्थविषे प्रवृत्ति होवै नहीं जो ऐसे कहैं "मुमुक्षु नहीं है

सो बने नहीं है" काहेतैं ? सर्वपुरुष सर्वदुःखका नाश, और नित्य सुखकी प्राप्ति चाहै, सो सर्वदुःखका नाश और सुखकी प्राप्तिरूप मोक्ष है,यातैं सर्व पुरुष मुमुक्षु हैं.

और कह्या जो-"विषयजन्यसुख चाहे हैं" सो नहीं किंतु सुखमात्र चाहे हैं सो सुखविषयसे होवे, अथवा विषय विना होवे, जो विषयजन्य सुखको ही चाहे, ताके सुषुप्तिके सुखकी इच्छा नहीं होनी चाहिये सुषुप्तिका सुख विषयजन्य है नहीं यातैं सुखमात्रकूं चाहे हैं केवल विषयजन्यकूं ही नहीं, उलटा आत्मसुखको चाहे हैं, विषयजन्यकूं नहीं चाहे हैं, काहेतैं ? सर्वपुरुषोंको न्यून अथवा अधिक विषयसुख प्राप्त भी है परंतु ऐसी इच्छा सदा रहे है-"हमारेकूं ऐसा सुख प्राप्त होवे, जो सुखका नाश कभी होवे नहीं" ऐसा सुख आत्मस्वरूप मोक्ष है, यातैं सर्व पुरुष मुमुक्षु हैं, "कोउ मुमुक्षु नहीं" ऐसा कहना बने नहीं.

और जो ऐसे कहै-"मुमुक्षु तो हैं परंतु ग्रंथमें प्रवृत्ति होवे नहीं यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ताकूं यह पूछे हैं- ग्रन्थ मोक्षका साधन नहीं है? यातैं ग्रंथविषे प्रवृत्ति नहीं होवे अथवा ग्रन्थसे और भी कोई साधन है, जाके विषे प्रवृत्तिहोनेसे ग्रन्थविषे प्रवृत्ति होवै नहीं अथवा जिन शमादिकोंतैं ग्रन्थमें अधिकारी कह्या सो शमादिमान् ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नहीं है,यातैं ग्रन्थमें प्रवृत्ति

होवे नहीं ऐसे कहै-" ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं" सो वार्ता बनै नहीं काहेतैं मोक्ष ज्ञानतैं नियम करिके होवै है, यह वेदका सिद्धांत है सो ज्ञान श्रवणसे होवे है.

श्रवण दो प्रकारका है-एक तो वेदांतवाक्यका और श्रोत्रका संयोगरूपहै, और दूसरा वेदांतवाक्यका विचा-रूप है ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवण है,दूसरानहीं काहेतैं ? शब्दजन्य ज्ञान विषे इंद्रियके साथ शब्दका संयोगही सर्वत्र हेतु है, यातैं वेदांतवाक्यका और श्रोत्रका संयोग-रूप श्रवण ब्रह्मज्ञानका हेतु है. अवान्तरवाक्यका श्रवण परोक्ष ज्ञानका हेतु है. और महावाक्यका श्रवण अपरोक्ष ज्ञानका हेतु है, यह वार्ता पूर्व प्रतिपादन करी है जाको ज्ञान होनेतैं भी असंभावना और विपरीत-भावना होवे, सो दूसरा श्रवण और मनन निदिध्यासन करे. वेदांतवाक्यका विचाररूप जो श्रवण, तासूं वेदान्त वाक्यविषे असंभावना दूर होवे है. वेदांतवाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं ? ऐसा संशय वेदांत वाक्यकी असंभावना है, सो तिनके विचारसे दूर होवे है. और मननसे प्रमेयकी असंभावना दूरि होवे है, जीवब्रह्मकी एकता वेदांतका प्रमेय कहिये है. सो एकता सत्य है, अथवा जीवब्रह्मका भेद सत्य है ? ऐसा जो संशय, सो प्रमेयकी असंभावना कहिये है, जो मननसे दूर होवे है. विपरीत भावना निदिध्या-

सनतैं दूरि होवे है. इस रीतिसे प्रथम श्रवण तो ज्ञान-द्वारा मोक्षका हेतु है और विचाररूप श्रवण और मनन और निदिध्यासन, ये असंभावना और विपरीतभावनाकी निवृत्तिद्वारा मोक्षके हेतु हैं वेदांत नाम उपनिषद्का है. सो यद्यपि या ग्रंथतैं भिन्न तथापि तिनके समान अर्थवाले भाषावाक्य या ग्रंथमें हैं. तिनके श्रवणतैं भी ज्ञान होवे है यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. इसी रीतिसे ज्ञानद्वारा ग्रंथ मोक्षका हेतु है और विचाररूप मननरूप यह ग्रंथ है, यातैं असंभावना दोषकी निवृत्ति-द्वारा मोक्षका हेतु है, यातैं " ग्रंथसे मोक्ष होवे नहीं " यह केवल हठमात्र है।

और जो ऐसे कहे—"ग्रंथसे मोक्ष तो होवे है" परंतु और साधनसे भी मोक्ष होवे है यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है. ताकूं यह पूछे हैं—सो और साधन कौन है जाते मोक्ष होवेहै ? जो ऐसे कहे—"उपनिषद् सूत्रभाष्यसे आदिलेके संस्कृत ग्रन्थ जीव-ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक बहुत हैं, तिनसे भी ज्ञानद्वारा मोक्ष होवे है याका भिन्न अधिकारी नहीं. यातैं यह ग्रन्थ निष्फल है" सो वार्ता यद्यपि सत्यहै, तथापि तिनका अर्थ ग्रहण करने-विषे जाकी बुद्धि समर्थ नहीं है,जो ऐसा मुमुक्षु ताको तिनसे ज्ञान होवे नहीं, यातैं मंदबुद्धि मुमुक्षुकी तिनविषे प्रवृत्ति होवे नहीं, या ग्रन्थ विषे ही प्रवृत्ति होवेगी.

और जो ऐसे कहै "ग्रंथसे मोक्ष भी होवे है और संस्कृतग्रंथसे मंदबुद्धिकूं बोध भी होवे नहीं, और मुमुक्षु भी है तौ भी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवे नहीं काहेतें जो विवेक वैराग्य शमादिमान अधिकारी कह्या सो दुर्लभ है, यातें आपणेविषे साधनके अभाव देखके ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं," ताकूं यह पूछै हैं—बहुत अधिकारी नहीं ? अथवा कोई भी नहीं जो ऐसे कहै—"बहुत अधिकारी नहीं" सो तो हम भी अंगीकार करे हैं और जो ऐसे कहै—"कोई भी ज्ञानके योग्य अधिकारी नहीं" सो वार्त्ता बनै नहीं काहेतें अंतःकरणविषे तीन दोष हैं—एक मल है, दूसरा विक्षेप है और तीसरा स्वरूपका आवरण है, मल नाम पापका है, विक्षेप नाम चंचलताका है और आवरण नाम अज्ञानका है, शुभकर्मतें मलदोष दूर होवै है और उपासनातें विक्षेपदोष दूरि होवे है. ज्ञानतें आवरणदोष दूरि होवै है. जिनके अंतःकरणविषे मल और विक्षेप दोष हैं, सो अधिकारी भी नहीं परंतु इस जन्मविषे अथवा पूर्वजन्मविषे शुभकर्म और उपासनाके अनुष्ठानतें जिनके मल और विक्षेपदोष नाश होवे हैं. ऐसे ज्ञानयोग्य अधिकारी हैं तिनकी ग्रन्थमें प्रवृत्ति बने है.

और जो ऐसे पूर्व कह्या-"सर्वकूं विषयसुखमें अलंबुद्धि है, नित्यसुखकूं कोई चाहै नहीं." सो बने नहीं.

काहेतैं ? चार प्रकारके पुरुष हैं—पामर, विषयी, जिज्ञासु, मुक्त. १-इस लोकके निषिद्ध और विहित भोगनविषे आसक्त जो शास्त्रसंस्काररहित पुरुष सो पामर कहिये है. २—शास्त्रके अनुसार विषयनकूं भोगता हुआ परलोकके अथवा इस लोकके भोगनके निमित्त जो कर्म करै सो विषय कहिये है.

और ३-ऐसा पुरुष जिज्ञासु कहिये है—जो पुरुषकूं उत्तम संस्कारते सच्छास्त्रका श्रवण होवै, ता उत्तमकूं ऐसा विवेक होवैहै. विषयसुख अनित्य है. जितना काल विषयसुख होवे है तब भी कोई दुःख अवश्य रहे है. और परिणाममें विनाशी सुखदुःखका हेतु है. और वर्त्तमान कालमें भी नाशके भयतैं दुःखकाहेतु है, इस रीतिसे विषयसुखदुःखतैं ग्रसा हुआ है, यातैं दुःखरूप है. और दुःखकी निवृत्ति लौकिक उपायतैं होवै नहीं, काहेतैं ? जो उपाय करै हैं, तिनके भी सारे दुःख निवृत्ति होवे नहीं. और निवृत्त हुए भी फेर होवे हैं, और जितने काल शरीर है तबपर्यंत दुःखकी निवृत्ति संभवै भी नहीं. काहेतैं, जो शरीर हैं सो सारे पुण्य और पापसे होवै है, मनुष्यशरीर तो मिश्रितकर्मका फल प्रसिद्ध है और देवशरीर भी मिश्रित कर्मका ही फल है, जो केवल पुण्यका फल देवशरीर होवै तो अपनेसे अधिक अन्यदेवकी विभूति देखके जो देवनकूं ताप होवै है, सो नहीं

होना चाहिये सर्व देवनमें प्रधान जो इंद्र ताकूं भी अनेकदैत्यदानवके भयजन्य दुःख शास्त्रमें कहे हैं जो देवशरीर केवल पुण्यका ही फल होवे तो देवनकूं दुःख नहीं होना चाहिये यातें देवशरीर भी पुण्य पाप दोनोंका फल है और जो श्रुतिमें कहा है—देवता पापरहित हैं ताका यह अभिप्राय है-कर्मका अधिकार केवल मनुष्य-शरीरमें है,औरमें नहीं यातें देवशरीरमें किया जो शुभ अथवा अशुभ, तिनका फल देवनकूं होवे नहीं. और देवशरीरसे पूर्वशरीरमें किया जो शुभ और अशुभ तिनका फल तो देवशरीरमें भी होवै है, इसरीतिसे देव-शरीर मिश्रित कर्मका फल है. देव शरीर केवल भोग योनि है

और तिर्यक् पशु पक्षीका शरीर भी मिश्रित कर्मके फलहै काहेतैं? जो तिनकूं प्रसिद्ध दुःख है,सो तो पापका फल है,और मैथुनादिकनका सुख है,सो पुण्यका फल है.उदरसे जो गमन करे सो तिर्यक् कहिये है पक्षसे गमन करै सो पक्षी कहिये हैं. चार पादसे गमन करै सो पशु कहिये है. कहूं पशु पक्षी भी तिर्यक् ही कहिये हैं. इसरीतिसे सर्व शरीर पुण्य और पापसे रचित हैं.कोई शरीर तो न्यूनपाप और अधिकपुण्यतैं रचित है जैसे देवशरीर अपने अपने जो पुण्य हैं, तिनहीते सब देवन-विषे पाप न्यून है, यातैं न्यूनपाप अधिकपुण्यतैं रचित

देवशरीर कहिये है, या अभिप्रायतैं ही शास्त्रमें केवल पुण्यका फल देवशरीर कहा है, यातैं विरोध नहीं जैसे बहुत ब्राह्मणोंसे ब्राह्मणग्राम कहिये है, तैसे अधिकपुण्यका फल होनेतैं देवशरीर केवल पुण्यका फल कहिये है, परंतु केवल पुण्यका फल नहीं.

तिर्यक् पशु पक्षीका शरीर अधिक पाप न्यूनपुण्यसे रचित है जो उत्तम मनुष्य है, तिनकी देवनके समान रीति है, और नीचनकी सर्पादिकनके समान है इसरीतिसे सर्वशरीर पुण्य पाप रचित हैं. और पापका फल दुःख है, यातैं शरीर रहे तब पर्यंत दुःखकी निवृत्ति होवे नहीं. सो शरीर धर्म और अधर्मका फल है. तिनकी निवृत्ति विना शरीरकी निवृत्ति होवे नहीं. काहेतैं ! वर्तमानशरीर दूर होनेसे भी पुण्य पापतैं और शरीरहोवेगा यातैं पुण्य पाप निवृत्ति विना शरीरकी निवृत्ति होवे नहीं,सो पुण्य पाप रागद्वेषके नाश विना दूरि होवे नहीं. काहेतैं वर्तमान पुण्यपापके भोगसे निवृत्ति हुएसे भी रागद्वेषतैं और पुण्यपाप होवेंगे यातैं रागद्वेषकी निवृत्ति विना पुण्य पाप दूर होवे नहीं सो रागद्वेष अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानसे होवे हैं,जा विषे अनुकूलज्ञान होवे ता विषे राग होवे है, और जा विषे प्रतिकूलज्ञान होवे ता विषे द्वेष होवे है, यातैं अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्ति विना रागद्वेषकी निवृत्ति होवे नहीं,सो

अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान भेदज्ञानसे होवै है, काहेतैं ? जा वस्तुको अपने स्वरूपतैं भिन्न जानैं ताके विषे अनुकूलज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान होवे है. अपने स्वरूपमें अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान होवे नहीं सुखके साधनका नाम अनुकूल है.और दुःखके साधनका नाम प्रतिकूल है, अपना स्वरूप सुखका अथवा दुःखका साधन नहीं. यद्यपि सुखरूप है तथापि सुखका साधन नहीं, यातैं स्वरूपसे भिन्न जो वस्तु जानी है ता विषे अनुकूल और प्रतिकूलज्ञान होवै है, इस रीतिसे पदार्थनविषे अपनेसे जो भेदज्ञान,सो अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानका हेतु है, ता भेदज्ञानकी निवृत्ति विना अनुकूलज्ञान प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्ति होवे नहीं. सो भेदज्ञान अविद्याजन्य है. काहेतैं संपूर्णप्रपंच और ताका ज्ञानस्वरूपके अज्ञानकालमें है, यह सम्पूर्ण वेद अरु शास्त्रका ढंढोरा है, इसरीतिसे संपूर्ण दुःखका हेतु स्वरूपका अज्ञान है, सो स्वरूप का अज्ञान, स्वस्वरूपज्ञान बिना दूर होवे नहीं,काहेतैं जा वस्तुका अज्ञान होवे सो ताके ज्ञानसे दूर होवे जैसे रज्जुका अज्ञान रज्जुके ज्ञानसे दूर होवे है, औरसे नहीं यातैं स्वस्वरूपज्ञान ही अज्ञानकी निवृत्तिका हेतु है. और निवृत्तिद्वारा स्वरूपज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति होवे है. सो ब्रह्म नित्य है और आनंदस्वरूप है,दुःखसंबन्धसे रहित है.यातैं स्वरू-

पज्ञानसे नित्य और दुःखके संबन्धसे रहित,जो ब्रह्मस्वरूप आनंद ताकी प्राप्ति भी होय है.इस रीतिसे दुःखकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिका हेतु स्वरूपज्ञानहै यातैं स्वरूप जाननेकूं योग्य है. ऐसा जाके विवेक होवे सो जिज्ञासु कहिये है.

४ स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरतैं भिन्न जो अपना स्वरूप, ताका ब्रह्मरूप करिके अपरोक्षज्ञान जाकूं होवे सो मुक्त कहिये है.

इस रीतिसे चारप्रकारके पुरुष हैं. तिनविषे १ पामर और२-विषयीकूं तो यद्यपि विषयसुखमेंही अलम्बुद्धि है और किसी विषयीकूं परमसुखकी इच्छा भी होवे, तब भी ताके जो उपाय नहीं हैं तिनमें उपाय बुद्धि करिके प्रवृत्त होवे है. काहेतैं?उपायका ज्ञान सत्संग और सच्छास्त्रके श्रवणतैं होवे है, सो ताके है नहीं यातैं पामर और विषयीकी सुखप्राप्तिके निमित्त ग्रंथमें प्रवृत्ति होवे नहीं. दुःखकी निवृत्तिके निमित्त भी दोनोंसे अन्य उपायनमें प्रवृत्त होवे हैं,ताके निमित्त भी ग्रन्थमें प्रवृत्ति होवे नहीं, यातैं विषयी और पामरकी ग्रन्थमें प्रवृत्ति होवे नहीं. तथापि जिज्ञासु जो पुरुष है, ताकूं विषय सुखमें अलंबुद्धि होवे नहीं किंतु परम सुखकी ताकूं इच्छा है और दुःखकी अत्यंत करिके निवृत्तिकी इच्छा है, सो परम सुखकी प्राप्ति और दुःखकी अत्यंत निवृत्ति,ज्ञानसे विना

होवे नहीं ऐसा जाकूं सत्संगसे विवेक है ताकी ग्रन्थमें प्रवृत्ति बनै है और ४मुक्तकी प्रवृत्ति भी होवे नहीं काहेतैं ज्ञानवान् मुक्त कहिये है सो ज्ञानी कृतकृत्य है ताकूं कुछ कर्तव्य नहीं यह वार्ता आगे प्रतिपादन करेंगे और लीलाकरके मुक्त प्रवृत्त होवे तो भी मुक्तकूं ग्रन्थमें प्रवृत्तिसे कोई प्रयोजन सिद्ध होवे नहीं यातैं मुक्तके निमित्त भी ग्रन्थ नहीं. इस रीतिसे मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी बनै है ॥ ११ ॥

दोहा।

साक्षी ब्रह्म स्वरूप इक, नहीं भेदको गन्ध।
राग द्वेष मतिके धरम,तामैं मानत अंध ॥२१॥

पूर्व कह्या जो-" जीव रागादिक क्लेशसहित है और ब्रह्म क्लेशरहित है.याते जीवब्रह्मकी एकता ग्रन्थका विषय बनै नहीं" यह वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि रागद्वेषसे रहित जो साक्षी है, ताकी ब्रह्मसे एकता बनै है, और जो पूर्व कह्या-" कर्त्ता भोक्तासे भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समानअसत् है" सो बनै नहीं काहेतैं ? कर्त्ता भोक्ता जो संसारी,ताके विशेषभागका नाम साक्षी है.जो साक्षीका निषेध करे तो संसारीके विशेषभागका निषेध होनेतैं कर्त्ताभोक्ता जो संसारी,ताका ही निषेध होवेगा. एकही चेतनके विषे साक्षीभावकी अंतःकरण उपाधि है और कर्त्ताभोक्तापनेका विशेषण है,विशेषणसहित विशिष्ट

कहिये है उपाधिवाला,उपहित कहिये है-जो वस्तु जितने देशमें आप होवे,उस देशमें स्थित वस्तुकूं जनावे और आप पृथक् रहे,सो उपाधि कहिये है, जैसे नैयायिक मतमें कर्णगोलकवृत्ति आकाश श्रोत्र कहिये है सो कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है. काहेतें सो कर्णगोलक जितने देशमें आप है उतने देशमें स्थित आकाशकूं श्रोत्ररूप करके जनावे है, और आप पृथक् रहे है. यातें कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है तैसे अंतःकरण भी जितने देशमें आप है, उतने देशमें स्थित चेतनकूं साक्षी संज्ञा करके जनावे, आप पृथक् रहे है, यातें अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है यातें यह अर्थ सिद्ध हुआ-अंतःकरणविषे वृत्ति जो चेतन मात्र सो साक्षी कहिये है । अपने सहित वस्तुकूं जो जनावे, सो विशेषण कहिये है जैसे-"कुण्डलवाला पुरुष आया है" या स्थानमें पुरुषका कुण्डल विशेषण है, काहेतें ? अपने सहित पुरुषका आगमन कुण्डल जनावे है, यातें विशेषण है."नीलरूपवान् घटकूं मैं देखूं हूँ" या स्थानमें भी नीलरूपघटका विशेषण है तैसे अंतःकरण भी कर्त्ता-भोक्ता जो जीव चेतन, ताका विशेषण है. काहेतें ?अंतःकरणसहित चेतनकूं कर्त्ताभोक्तारूपकरके अंतःकरण जनावे है. यातें संसारीका अंतःकरण विशेषण है यातें यह सिद्ध हुआ-अंतःकरणविषे वृत्तिचेतन और अंतःकरण,संसारी कहिये हैं. या अर्थकूं विस्तारसे आगे कहैंगे.

रागद्वेषादिक क्लेश संसारीविषे हैं. और साक्षीविषे नहीं संसारीका भी जो विशेषण अंतकरण है, ताके विषे है और विशेष्य जो चैतन्य, ताके विषे नहीं. काहेतैं संसारीविषे विशेष्य जो चैतन्यभाग ताका साक्षीसे भेद नहीं. काहेतैं ? एक ही चैतन्य अंतःकरणसहित संसारी है और अंतःकरणभाव त्यागिके साक्षी कहिये है, यातैं साक्षीका और संसारीके विशेष्यभागका भेद नहीं, जो विशेष्यभागमें क्लेश अंगीकार करै, तब साक्षीमें भी अंगीकार करने होवैंगे. और—"साक्षी सर्वक्लेशरहित है" यह वेदका सिद्धांत है. यातैं संसारीके विशेष्यभागमें क्लेश नहीं किंतु विशेषणमात्र अंतःकरणमें है. इस अभिप्रायतैं दोहेके तृतीयपादमें रागद्वेष, बुद्धिके धर्म कहे, और जीवके नहीं कहे,इस रीतिसे अंतःकरणविशिष्टकी ब्रह्मसे एकता नहीं भी बनै, परंतु अंतःकरण उपहित जो साक्षी ताकी ब्रह्मसे एकता बनै है.

और जो पूर्व कह्या—"साक्षी नाना है, और ब्रह्म एक है यातैं नानासाक्षीकी एक ब्रह्मसे एकता बनै नहीं. और जो व्यापक एक ब्रह्मतैं साक्षीका अभेद अंगीकार करोगे तो साक्षीका भी सर्वशरीरमें व्यापक एक ही होवेगा. यातैं सर्वशरीरके सुख दुःखका भान होना चाहिये" सो शंका बनै नहीं, काहेतैं? यद्यपि ईश्वर साक्षी एक है, और जीव साक्षी नाना हैं और परिच्छिन्न हैं तौ भी व्यापक ब्रह्मसे

भिन्न नहीं. जैसे घटाकाश नाना हैं और परिच्छिन्न है, तो भी महाकाशसे भिन्न नहीं. किंतु महाकाशरूप ही घटाकाश है, तैसे नाना जो परिच्छिन्न साक्षी सो भी ब्रह्मस्वरूप ही हैं.

और जो पूर्व कह्या–"सुखदुःख अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं" सो असंगत है काहेतें?यद्यपि सुखदुःख साक्षी भाष्य है, सो साक्षी नाना हैं, तथापि जब अंतःकरणका परिणाम सुखरूप वा दुःखरूप होवे,ताही समय अंतःकरणकी ज्ञानरूप वृत्ति सुखदुःखकूं विषय करनेवाली होवे है, ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी तिनकूं प्रकाशै है. इसरीतिसे ग्रंथकारोंने सुखदुःख साक्षीके विषय कहे हैं वृत्ति विना केवल साक्षीके विषय नहीं या स्थानमें यह रहस्य है जैसे–आकाशमें घटाकाश नाम और जलका आनयनरूप जो कार्य प्रतीत होवे है, सो घटरूप उपाधिकी दृष्टिसे प्रतीत होवे है,घटरूप उपाधिकी दृष्टि विना घटाकाश नाम और जलका आनयनरूप कार्य प्रतीत होवे नहीं, किंतु आकाशमात्र ही प्रतीत होवे. याते घटाकाश महाकाशरूप है. तैसे चेतनविषे साक्षी नाम और धर्मसहित अन्तःकरणका प्रकाशरूप कार्य, अन्तःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिसे प्रतीत होवे है. और अन्तःकरणरूप उपाधिकी दृष्टि विना साक्षी नाम और धर्मसहित अन्तःकरणका प्रकाशरूप कार्य प्रतीत होवे नहीं.

किंतु चैतन्यमात्र ब्रह्म ही प्रतीत होवे, यातैं साक्षी ब्रह्मरूप है या अभिप्रायतैं दोहेके प्रथमपादमें साक्षी एक कह्या. काहेतैं? उपाधिकी दृष्टि विना साक्षीमें नानापना और परिच्छिन्नभाव प्रतीत होवे नहीं, सो साक्षी जीवपदका लक्ष्य है, यह वार्ता आगे कहैंगे इस रीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता ग्रन्थका विषय बनै है॥ १२॥

२६ प्रयोजनमंडन-उत्तरपक्ष।

(कार्याध्यासनिरूपण-कवित्त)

सजातीयज्ञान संसकारते अध्यास होत,
सत्यज्ञानजन्य संसकारको न नेम है।
दोषको न हेतु ता अध्यासविषे देखियत,
पटविषे हेतु जैसे तुरी तंतु वेम है॥
आतमा द्विजाती शंख पीत सिता कटु भासे,
सीपमें विरागी रूप देखे बिन प्रेम है।
नभ नील रूपवान भासत कटाह तंबू,
जिनके न कोउ पित्त प्रभृति अक्षेम है॥ १३॥

पूर्व कह्या जो –"बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवे नहीं" और मिथ्यावस्तुकी ज्ञानसे निवृत्ति होवे है आत्मामें मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं. सो वार्त्ता बनै नहीं काहेतैं? बंध मिथ्या, ताकी ज्ञानसे निवृत्ति बनै है.

और पूर्व कह्या जो –"सत्यवस्तुका ज्ञान संस्कारद्वारा सर्प अध्यासका हेतु है. जैसे सत्यसर्पका ज्ञान संस्कार द्वारा अध्यासका हेतु है. तैसे सत्यबंध होवे

तो सत्यबंधका ज्ञान होवे, सो सिद्धांतमें अनात्मवस्तु कोई सत्य है नहीं, यातें सत्यवस्तुका ज्ञान जो संस्कार-द्वारा अध्यासकी सामग्री, ताका अभाव होनेतैं बंध अध्यास नहीं" किन्तु सत्य है सो शंका बनै नहीं काहेतें? अध्यासविषे संस्कारद्वारा सत्यवस्तुका ज्ञान हेतु नहीं किंतु वस्तुका ज्ञान हेतु है सो वस्तु सत्य होवे अथवा मिथ्या होवे, जो सत्यवस्तुका ज्ञान ही अध्यास विषे हेतु होवे तो जा पुरुषने सत्य छुहारेका वृक्ष नहीं देखा होवे और बाजीगरका बनाया मिथ्या छुहारेका वृक्ष बहुतबार देखा होवे, और बाजीगरसे ऐसा सुना होवे, जो-"यह छुहारेका वृक्ष है" और खजूरका वृक्ष कभी देखा सुना होवे नहीं, ताकूं खजूरका वृक्ष देखिके छुहा-रेका अध्यास होवे है, सो नहीं होना चाहिये. काहेतें सत्य छुहारेका ताकूं ज्ञान है नहीं और हमारी रीतिसे तो बाजीगरका देखा जो मिथ्या छुहारा ताका ज्ञान है, यातैं अध्यास बनै है. यातैं सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार ही अध्यासके हेतु है, सो संस्कारका जनक ज्ञान और ताका विषय मिथ्या होवे, अथवा सत्य होवे, सं-स्कारद्वारा ज्ञान हेतु है और "ज्ञानजन्य संस्कारहेतु है" या कहनेमें अर्थका भेद नहीं.यातेबन्ध सत्य है ताकी निवृत्ति ज्ञानसे होवे नहीं एकही अर्थ है काहेतें? संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है. याका अर्थ यह है:-ज्ञान संस्कारका हेतु है और संस्कार अध्यासका हेतु है,

यातैं संस्कारद्वारा ज्ञानकूं हेतुता कहनेतैं भी ज्ञानजन्य संस्कारकूं ही अध्यासविषे हेतुता सिद्ध होवे है.

और केवल वस्तुके ज्ञानकूंही अध्यासविषे हेतु कहैं तो बने नहीं. काहेतैं? यह नियम है:-"जो हेतु होवे सो कार्यसे अव्यहितपूर्वकालमें होवे है" जैसे घटका हेतु दंड है, सो घटसे अव्यवहितपूर्वकालमें होवे है तैसे जो अध्यासका हेतु ज्ञान अंगीकार करैं [illegible] भी अध्यासतैं अव्यवहित पूर्वकालमें चाहिये, सो बनै नहीं. काहेतैं? जा पुरुषकूं सर्पका ज्ञान होवे ताकूं ज्ञानसे महीने पीछे भी रज्जुविषे सर्पका अध्यास होवे है. सो नहीं होना चाहिये. काहेतैं? जो रज्जुमें, सर्पअध्यासका हेतु सर्पका ज्ञान है, ताका नाश होगया, यातैं अव्यवहितपूर्वकालमें है नहीं, यद्यपि पूर्वकालमें तो है. तथापि अव्यवहित पूर्वकालमें है नहीं, अन्तरायरहितका नाम अव्यवहित है, और अन्तरायसहितका नाम व्यवहित है और जो ऐसे कहैं-कार्यतैं पूर्वकालमें हेतु चाहिये. व्यवहित पूर्वकालमें होवे. अथवा अव्यवहित पूर्वकालमें होवे और "कार्यतैं अव्यवहित पूर्वकालमें ही हेतु होवे है" ऐसा नियम अंगीकार करै तो "विहितकर्म स्वर्गप्राप्तिका हेतु है, और निषिद्धकर्म नरकप्राप्तिका हेतु है" यह शास्त्रकी वार्त्ता अप्रमाण हो जायेगी, काहेतैं? कायिक वाचिक मानसिक क्रियाका नाम कर्म है, सो क्रिया अनुष्ठानका-

लसे अनंतर ही नाश हो जावे है और स्वर्ग नरक कालांतरमें होवे है. यातैं स्वर्गनरकप्राप्तिके अव्यवहितपूर्वकालमें विहित कर्म और निषिद्धकर्म है नहीं, जैसे व्यवहित पूर्वकालके शुभकर्म और अशुभकर्म, स्वर्गप्राप्ति और नरकप्राप्तिके हेतु हैं, तैसे-"व्यवहितपूर्वकालमें जो सर्पका ज्ञान, सो भी रज्जुमें सर्प अध्यासका हेतु है सो वार्त्ता बनै नहीं काहेतैं जैसे नष्टज्ञान और नष्टककर्मतैं अध्यास और स्वर्गनरककी प्राप्ति अंगीकार करी तैसे मृत कुलाल और नष्टदंडसे भी घट होना चाहिये काहेतैं।जैसे रज्जुमें सर्पअध्यासते व्यवहितसर्पकालमेंसर्पका ज्ञान है, स्वर्गनरककी प्राप्तितैं व्यवहितसर्पकालमें शुभ अशुभकर्म हैं, तैसे घटतैं व्यवहितपूर्वकालमें नष्टदंड और मृत कुलाल भी हैं तिनतैं भी घट होना चाहिये सो होवे नहीं यातैं व्यवहित पूर्वकालमें जो वस्तु होवे सो हेतु नहीं किंतु अव्यवहित पूर्वकालमें जो वस्तु होवे सोई हेतु होवे है, और शुभ अशुभकर्म भी कालान्तर भावी जो स्वर्गनरककी प्राप्ति ताके हेतु नहीं किन्तु शुभकर्मतो अपनेतैं अव्यवहित उत्तरकालमें धर्मकी उत्पत्ति करे है अशुभकर्म अधर्मकी उत्पत्ति करे हैसो धर्म अधर्म अंतःकरणविषे रहे हैं तिनतैं कालान्तरमें स्वर्ग और नरककी प्राप्ति होवे तासे अनंतर धर्म अधर्मका नाश होवे है. इस अभिप्रायसे ही शास्त्रमें शुभकर्म और अशुभकर्म

अपूर्वद्वारा फलके हेतु कहे हैं, साक्षात् नहीं. अपूर्व नाम धर्म अधर्मका है और अदृष्ट भी तिनकूं कहे हैं और पुण्यपाप भी तिनकूंही कहैं. और कहूं धर्म अधर्मकी जनक जो शुभ अशुभक्रिया है, ताकूंभी धर्म अधर्म कहे हैं, जैसे कोई शुभ क्रिया करता होवे ताकूं लोक ऐसा कहे हैं-"यह धर्म करै है" और अशुभक्रिया करनेवालेकूं ऐसा कहे हैं-"यह अधर्म करै है" सो शुभ अशुभ क्रियाका नाम धर्म अधर्म नहीं किंतु शुभ अशुभक्रिया धर्म अधर्मकी जनक है. यातैं क्रियाकूं धर्म अधर्म कहे हैं, जैसे आयुका वर्धक जो घृत है, ताकूं शास्त्रमें आयु कहे हैं, इस रीतिसे अव्यवहितपूर्वकालमें हेतु होवे है,

और रज्जुमें सर्पअध्यासतैं अव्यवहित पूर्वकालमें सर्पका ज्ञान है नहीं। यातैं सर्पका ज्ञान रज्जुमें सर्पअध्यासका हेतु नहीं, किंतु सर्पज्ञानजन्य संस्कारही रज्जुमें सर्पअध्यासका हेतु है,तैसे सीपीमें रूपा अध्यासके हेतु रूपाज्ञानजन्य संस्कार है,इसी रीतिसे सारे संस्कारही अध्यासके हेतु हैं और वस्तुका ज्ञान संस्कारका हेतु है. जैसे शुभ अशुभ कर्मजन्य धर्म अधर्म अंतःकरणमें रहे हैं, तैसे वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारभी अंतःकरणमें रहे हैं जापुरुषकूं पूर्वसर्पका ज्ञान नहीं हुआ ताके भी और वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार तो हैं, परंतु रज्जुमें सर्पका अध्यास होवे नहीं, जा वस्तुका अध्यास होवे, ताके

सजातीय वस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्यासका हेतु है. विजातीयके ज्ञानके संस्कार हेतु नहीं सर्पके सजातीय सर्प होवे हैं और नहीं, सर्पका जाकूं पूर्व ज्ञान नहीं अन्यवस्तुका ज्ञान है.ताकूं सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार नहीं, यातैं रज्जुमें सर्पका अध्यास होवे नहीं, सूक्ष्म अवस्थाका नाम संस्कार है, इस रीतिसे अध्यासतैं पूर्व जो सजातीय वस्तुका ज्ञान ताके संस्कार अध्यासके हेतु हैं "और सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कारही अध्यासके हेतु हैं, मिथ्यावस्तुके ज्ञानके नहीं" यह नियम नहीं. यह वार्त्ता लुहारके दृष्टांतसे प्रतिपादन करी है, यातैं मिथ्या वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार भी अध्यासके हेतु हैं.

—सो बंधके अध्यासविषे भी बनै हैं. काहेतैं ? जो अहंकारसे आदिलेके अनात्म और ताका ज्ञान बंध कहिये है. "सो अनात्मवस्तु, रज्जुके सर्पकी न्याई जब प्रतीत होवे तबही है और प्रतीत नहीं होवे तब नहीं" यह हमारा वेदसंमत सिद्धांत है. इस कारणतेही सुषुप्तिविषे सर्वप्रपंचका अभाव प्रतिपादन किया है सुषुप्तिमें कोई पदार्थ प्रतीत होवे नहीं. यातैं सर्वप्रपंचका सुषुप्तिमें लय होवे है. इसका नाम शास्त्रमें दृष्टिसृष्टिवाद कहे है. या अर्थकूं आगे प्रतीपादन करैंगे, इस रीतिसे अनंत अहंकारादिक और तिनके ज्ञान उत्पन्न होवे हैं और लय

होवे हैं अहंकारादिक और तिनके ज्ञानके साथही उत्पत्तिलय होवे है.तब अहंकारादिकोंकी उत्पत्ति होवे है और प्रतीतिका लय होवे तब अहंकारादिकनका लय होवे है. अहंकारादिक और तिनके ज्ञानका नाम अध्यास है. यह वार्ता अनिर्वचनीयख्यातिके प्रतिपादनमें कहैंगे, यद्यपि अहंकार साक्षीभास्य है, यह वार्ता विषयप्रतिपादनमें कही है, यातें अहंकारकी प्रतीति साक्षीरूप है, ताकी उत्पत्ति और लय बनै नहीं तथापि अहंकारका भी वृत्तिसेही साक्षी प्रकाश करे है साक्षात् नहीं, ता वृत्तिकी उत्पत्ति लय होवे है. यातें अहंकारकी प्रतीति की उत्पत्ति लय कहिये है. इसरीतिसे उत्तर उत्तर अहंकारादिक और तिनके ज्ञानकी जो उत्पत्ति; ताके हेतु पूर्वपूर्व मिथ्या अहंकारादिकोंके ज्ञानजन्य संस्कार बनैहैं.

और जो ऐसे कहैं-उत्तर उत्तर अहंकारादिकोंके अध्यास विषे तो यद्यपि पूर्व पूर्व अध्यासके संस्कार हेतु बनै हैं तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहंकार, और ताका ज्ञान ताके हेतु संस्कारसे बनैं नहीं काहेतैं? जो ताके पूर्व और अहंकार उत्पन्न हुआ होवे तो ताके ज्ञानके संस्कार भी होवे सो प्रथम अहंकारसे पूर्व और अहंकार हुआ नहीं तैसे-"सर्ववस्तुके प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बनैं है नहीं" यह शंकाभी सिद्धांतके अज्ञानसे होवे है काहेतैं? यह वेदांतका सिद्धांत है:-एक ब्रह्म, और ईश्वर, जीव

अविद्या और अविद्याका चैतन्यसे संबंध और अनादि वस्तुका भेद यह षट्वस्तुस्वरूपसे अनादि हैं जा वस्तुकी उत्पत्ति होवे नहीं, सो वस्तुस्वरूपसे अनादि कहिये है. इन षट्की उत्पत्ति होवे नहीं, याते स्वरूपसे अनादि हैं और अहंकारादिकनकी तो श्रुतिमें उत्पत्ति कही है, यातैं स्वरूपसे अनादि यद्यपि अहंकारादि नहीं, तथापि प्रवाहरूपतैं सर्ववस्तु अनादि हैं, सर्ववस्तुका प्रवाह दूर होवे नहीं. अनादि कालमें ऐसा समय कोई पूर्व हुआ नहीं जा समय कोई घट होवे नहीं. यातैं घटका प्रवाह अनादि है इस रीतिसे सर्ववस्तुका प्रवाह अनादि है, प्रलयकालमें भी सुषुप्तिकी न्याईं सर्ववस्तु संस्काररूप होयके रहेहैं. यातैं प्रपंचका प्रवाह अनादि होनेतै प्रपंच अनादि कहिये है. ऐसा जाकूं ज्ञान नहीं है, ताकूं यह शंका होवे है—"जो प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बने नहीं है और सिद्धांतमें किसी अहंकारादिक वस्तुका अध्यास सर्वसे प्रथम है नहीं किंतु अपनेसे पूर्व पूर्व अध्यासते संपूर्ण उत्तर है, यातैं शंका बने नहीं. इस रीतिसे सजातीयके पूर्वज्ञानजन्य संस्कारसे अहंकारादिक बंधका अध्यास बने है, यह प्रथमपादका अर्थ है।

(प्रमेय-दोषका खण्डन)

और जो पूर्व कह्या "तीन प्रकारका दोष अध्यासका हेतु है और बंधके अध्यासमें कोई भी दोष बनें नहीं

याते बंध सत्य है" सो वो शंका बनै नहीं. काहेतैं ? जो दोषते विना अध्यास होवै नहीं, तो अध्यासका हेतु दोष होवे, जैसे तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं. तुरी तंतु वेम होवैं तो पट होवै, और नहीं होवैं तो पट होवै नहीं. तैसे दोष अध्यासके हेतु नहीं. काहेतैं? सादृश्यदोष विना आत्मामें जातिका अध्यास होवे है. ब्राह्मणत्वसे आदिलेके जो जाति है सो स्थूलशरीरका धर्म है, आत्माका और सूक्ष्म शरीरका धर्म नहीं. काहेते ? और शरीरकूं प्राप्त होवे, तब आत्मा और सूक्ष्मशरीर तो जो पूर्व शरीरमें है सोई रहे है और जाति और भी होवे है यह नियम नहीं, "जो पूर्व शरीरमें जाति है, सोई उत्तर शरीरमें होवे है" आत्माका अथवा सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति होवे तो उत्तर शरीरविषे और जाति नहीं होनी चाहिये. यातैं आत्माका और सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति नहीं, किंतु, स्थूलशरीरका धर्म है. और "मैं द्विजाति हूं" इस रीतिसे ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व जातिका आत्मामें भान होवे है, याते आत्मामें जातिका अध्यास है जैसे रज्जुमें सर्प परमार्थसे नहीं है और भान होवे है, यातें रज्जुमें सर्पका अध्यास है तैसा आत्मामें जाति नहीं है और भान होवे है. याते आत्मामें जातिका अध्यास है और आत्माके साथ जातिका सादृश्य नहीं है काहेतैं ? आत्मा व्यापक है. और जातिपरिच्छिन्न है, आत्मा प्रत्यक् है, और

जाति पराक् है. आत्मा विषयी है और जाति विषय है इसी रीतिसे आत्मामें विरोधी जातिकाभी अध्यास होवे है. द्विजाति नाम त्रिवर्णका है. जैसे आत्माविषे सादृश्यते विना जातिका अध्यास होवे है, तैसा सादृश्य विना अहंकारादिक बंधका अध्यास भी आत्मामें बनै है. सादृश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं जो सादृश्यदोष अध्यासका हेतु होवे,तो आत्मामें जातिका अध्यास नहीं होना चाहिये, और शंखमें पीतताका अध्यास नहीं होना चाहिये काहेतैं ? श्वेत और मिश्रीमें पीतका विरोध है, सादृश्य नहीं. तैसा मधुर और कटुका विरोध है, सादृश्य नहीं. यातैं अधिष्ठानमें मिथ्यावस्तुका सादृश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं.

तैसे प्रमाताका, लोभ भयादिक दोष भी अध्यासका हेतु नहीं काहेतैं जो लोभरहित वैराग्यवान पुरुष है ताकूं भी सीपीमें रूपेका अध्यास होवै है;सो नहीं हुआ चाहिये याते प्रमाताका दोष भी अध्यासका हेतु नहीं और प्रमाणका दोष भी अध्यासका हेतु नहीं. काहेते, सर्व पुरुषनकूं रूपरहित जो आकाश है सो नीलरूपवाला प्रतीत होवै है और कटाहके तथा तंबूके आकार प्रतीत होवे हैं, याते सर्वकूं आकाशमें नीलरूपका कटाहका,

तथा तंबूका अध्यास है और सबके नेत्ररूप प्रमाणमें दोष कहना बनै नहीं याते प्रमाणका दोष अध्यासका हेतु नहीं,आकाशमें नीलादिकोंका जो अध्यास है,ताके विषे एक प्रमाण दोषकाही अभाव नहीं है, किंतु सर्व-दोषोंका अभाव है सादृश्यभी नहीं और प्रमाताका दोष भी नहीं, जैसे सर्वदोषके अभावते भी आकाशमें नीलादिकनका अध्यास होवे है,तैसे आत्माविषे भी बंधका अध्यासदोषविनाही बनै है यातैं "दोषके अभावतैं बन्ध अध्यासरूप नहीं" यह शंका बने नहीं काहेतैं सब दोषका अभाव भी है, तौभी आकाशमें नीलादिकनका अध्यास सर्वपुरुषनकूं होवे है यातैं दोष अध्यासका हेतु नहीं. कवित्तके चतुर्थपादका यह अर्थ है-जिनके कोई पित्तप्रभृतिकहिये पित्तसे आदिलेके,अक्षेम कहिये दोष नहीं है तिनको भी आकाश नीलरूपवान् कटाहाकार और तंबूके आकार भासे है यातैं प्रमाण-दोष अध्यासका हेतु नहीं क्षेम नाम कुशलका है ताका विरोधी जो प्रमाणदोष सो अक्षेम कहिये है ज्ञानका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये है.इस रीतिसे दोष अध्यासके हेतु नहीं यातै बन्धके अध्यासमें दोषकी अपेक्षा नहीं और संक्षेपशारीरकमें बन्धके अध्यास समय दोष भी प्रतिपादन किये हैं विस्तारके भयसे हमने नहीं लिखे. और अध्यासके जो दोष होवैं तौ दोष

निरूपण करते सो दोष अध्यासके हेतु नहीं हैं,यातें भी दोषका निरूपण नहीं किया ॥१३॥

(कारणाध्यासनिरूपण-दोहा)

चित् सामान्य प्रकाशते,नहीं नशे अज्ञान।
लहै प्रकाश सुषुप्तिमें, चेतनते अज्ञान॥१४॥

पूर्व कह्या जो "विशेषरूपसे अज्ञातवस्तुमें अध्यास होवै है और आत्मा स्वयंप्रकाश है,ताके विषे अज्ञान बनै नहीं काहेतैं? तमका और प्रकाशका परस्पर विरोध है यातैं जैसे अत्यंतप्रकाशमें स्थित रज्जुमें सर्पका अध्यास होवे नहीं तैसे स्वयंप्रकाश आत्मामें बन्धका अध्यास बनै नहीं "सो शंका भी बनै नहीं काहेतैं यद्यपि आत्मा प्रकाशरूप है, तथापि आत्माका स्वरूप-प्रकाश अज्ञानका विरोधी नहीं, जो आत्मस्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवे तौ सुषुप्तिमें प्रकाशरूप आत्माविषे अज्ञान प्रतीत होवै है,सो नहीं हुआ चाहिये घोर निद्रासे जाग्या जो पुरुष है ताकूं ऐसा ज्ञान होवै है-"मैं सुखसे सोया और कुछ भी नहीं जानता हुआ." या ज्ञानका सुख और अज्ञान विषय है. सो सुख और अज्ञानका जो जाग्रत्में ज्ञान है, सो प्रत्यक्षरूप नहीं. काहेतैं? जा ज्ञानका विषय सन्मुख होवे,सो ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवे है, और जाग्रत्कालमें सुख और अज्ञान है

नहीं, यातैं जाग्रतमें सुख और अज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्ष-रूप नहीं, किंतु स्मृतिरूप है, सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवे नहीं किन्तु ज्ञात वस्तुकी होवे है यातैं सुषुप्तिमें सुख और अज्ञानका ज्ञान है, सो सुषुप्तिका ज्ञान अंतःकरण और इंद्रियजन्य तो है नहीं काहेतें· सुषुप्तिमें अंतःकरण और इंद्रियका अभाव है यातैं, सुषुप्तिमें आत्मस्वरूपही ज्ञान है ज्ञान और प्रकाशका एकही अर्थ है,इस रीतिसे सुषुप्तिमें आत्मा प्रकाशरूप है,ता प्रकाशरूप आत्मासे स्वरूपसुख और अज्ञानकी प्रतीति होवे है, जो आत्म-स्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवे तो सुषुप्तिमें अज्ञानकी प्रतीति नहीं होनी चाहिये यातैं आत्मा प्रकाश-रूप तो है, परंतु आत्माका स्वरूप प्रकाश अज्ञानका विरोधी नहीं, उलटा आत्माका स्वरूप प्रकाश, अज्ञानका साधक है इस अभिप्रायतेही वेदांतशास्त्रमें कहा है:-"सामान्य चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं" किन्तु विशेषचैतन्य ही अज्ञानका विरोधी है, व्यापक जो चैतन्य है, सो सामान्य चैतन्य कहिये है,और वृत्तिमें स्थित जो चैतन्य, सो विशेषचैतन्य कहिये है, जैसे काष्ठमें स्थित जो सामान्य अग्नि है, सो अंधकारका विरोधी नहीं,और मथनसे प्रकट किया जो अग्नि है सो बत्तीमें स्थित होयके अंधकारका विरोधी है तैसे व्या-पकचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं भी है परंतु वेदांतके

विचारसे अन्तःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति हुई है,ताके-विषे स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. इस रीतिसे केवल चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं किंतु वृत्तिसहित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है, अथवा चैतन्यसहित वृत्ति अज्ञानकी विरोधी है.

प्रथमपक्षमें तो अज्ञानके नाशका हेतु चैतन्य है और वृत्ति सहायक है,दूसरे पक्षमें अज्ञानके नाशका हेतु वृत्ति है, और चैतन्य सहायक है, यह अवच्छेदवादकी रीति है,और आभासवादमें तो सामान्य चैतन्यकी न्याई विशेषचैतन्य भी अज्ञानका विरोधी नहीं किंतु वृत्तिसहित आभास अथवा आभाससहित वृत्ति अज्ञानका विरोधी है, इस रीतिसे प्रकाशरूप चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं यातैं चैतन्यके आश्रित अज्ञान है, ता अज्ञानसे आवृत जो आत्मा ताके विषे बंधका अध्यास बने है,

और पूर्व कह्या जो–"सामान्य रूपतैं ज्ञात और विशेरूपतैं अज्ञात वस्तुमें अध्यास होवे है और आत्मामें सामान्य विशेष भाव है नहीं, यातैं निर्विशेष आत्म-ज्ञात और अज्ञात बनै नहीं" ताके विषे अध्यासका असंभव है सो वार्त्ता भी बने नहीं काहेतैं ?"आत्मा है" यह सर्वकूं प्रतीत होवे है . आत्मा नाम अपने स्वरूपका है, "मैं नहीं हुं" यह किसीकूं प्रतीति होवे नहीं किंतु "मैं हूं" यह प्रतीति सर्वकूं होवे है; यातैं सत्रूप

करिके आत्मा सर्वकूं भान होवे है और "चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तिरूप आत्मा है" यह सर्वकूं प्रतीति होवे नहीं यातें चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्त रूपते आत्मा अज्ञात है, और सत्-रूप करके ज्ञात है, यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है. सो अनुभवसिद्ध वार्त्ता युक्तिसे दूरि होवे नहीं सर्वकूं प्रतीति जो होवे है आत्माका सत्‌रूप, सो तो सामान्यरूप है. और केवल ज्ञानीकूं जो प्रतीत होवे चेतन आनंदादिक, सो विशेषरूप है. जो अधिककालमें अधिक देशमें होवे सो सामान्यरूप कहिये है और न्यून देशमें न्यून-कालमें होवे, सो विशेषरूप कहिये है। यद्यपि आत्मा-का स्वरूपही चेतन आनंदादिक है यातें सत्‌की न्याई चेतन आनंदादिक सर्वत्र व्यापक है. सत्‌की अपेक्षातें चेतन आनन्दादिकोंकूं, न्यूनदेशमें और चेतन आनंदा-दिकनकी अपेक्षातें सत् रूपकूं अधिकदेशमें कहना बनै नहीं. यातें सत्‌रूप आत्माका सामान्य अंश है और चेतन आनन्दादिक विशेष अंश है, यह कहना भी बनै नहीं: तथापि सत्‌की प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमें भी होवे है और "चेतन, आनन्दरूप आत्मा है" यह प्रतीति सर्वकूं अविद्या कालमें होवे नहीं केवल ज्ञानीकूंही होवे है. अविद्याकालमें चेतन, आनन्द, मुक्तता शुद्धता भी है परन्तु प्रतीति होवे नहीं यातें अनहुएके समान हैं

इस अभिप्रायतैं चैतन्य अनंदादिक न्यून कालवृत्ति कहिये है और सत्‌रूप अधिक काल वृत्ति कहिये है. इस रीतिसें सतरूपका और चेतन आनन्दादिकोंका सामान्यविशेष भाव नहीं भी है, परंतु अल्पकाल और अधिककालमें प्रतीति होनेतैं सामान्य विशेषभावकी न्याई है. या कारणतैं आत्माका सत्‌रूप सामान्य अंश कहिये है और चेतन आनन्दादिक विशेषअंश कहिये है.

और आत्मा निर्विशेष है या सिद्धांतकी भी हानि नहीं जो आत्मामें सामान्यविशेषभाव अंगीकार करैं तो "निर्विशेष आत्मा है" या सिद्धांतकी हानि होवे सो सामान्य विशेष भाव अंगीकार किया नहीं किंतु अविद्यासे सामान्य विशेषकी नाई प्रतीति होवे हैं, यातैं सामान्यविशेष भाव कहे है.इस रीतिसे सत्यरूप करिके ज्ञात, और चेतन, आनंद, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप करके अज्ञात, आत्मा विषे बंधनका अध्यास बनै है, अध्यासरूप बंधकी ज्ञानसे निवृत्ति भी बनै है, यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभव है.

और पूर्व कह्या जो–"निषिद्धकाम्यकर्मका त्याग करके नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्त कर्म करे यातैं निषिद्ध कर्मके अभावतैं नीचलोककूं प्राप्त होवे नहीं और काम्य कर्मके अभावतैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवे नहीं और नित्य-

नैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं जो पाप होवे सो तिनके करनेतैं होवे नहीं.और इस जन्मविषे अथवा अन्यजन्म विषे पूर्व करे जो पाप हैं, तिनका साधारण और असाधारण प्रायश्चित्तसे नाश होवे है और पूर्व करे जो काम्य कर्म हैं तिनके फलकी इच्छाके अभावतैं मुमुक्षुकूं तिनका फल होवे नहीं यातैं मुमुक्षुकूं ज्ञानसे विनाही जन्मका अभावरूप मोक्ष होवे है" सो बनै नहीं काहेतैं नित्य नैमित्तिक कर्मका भी स्वर्गरूप फल है,यह वार्ता भाष्यकारने युक्ति और प्रमाण[illegible]प्रतिपादन करी है यातैं नित्य नैमित्तिक कर्मसे उत्तमलोककूं प्राप्त होवेगा,जन्मका अभाव बनै नहीं और नित्यनैमित्तिककर्मका जो फल अंगीकार नहीं करैं तो नित्यनैमित्तिककर्मका बोधक जो वेद है सो निष्फल होवेगा काहेतैं जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै तो ता पापकी अनुत्पत्ति तिनका फल बनै सो नित्य नैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवे नहीं काहेतैं जो नित्यनैमित्तिक कर्मका नहीं करना सो अभावरूप है और पाप भावरूप है, अभावसे भावकी उत्पत्ति होवे नहीं यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै है,यह कहना बनै नहीं जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेसे पापकी उत्पत्ति अंगीकार करै तौ " अभावतैं भावकी उत्पत्ति होवे नहीं" यह दूसरे अध्यायमें भगवान्‌ने कहा है, तासे

विरोध होवैगा. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके अभावतैं भावरूप पापकी उत्पत्ति बनै नहीं इस रीतिसे नित्यनैमित्तिककर्मका पापकी अनुत्पत्ति फल नहीं, किंतु नित्यनैमित्तिककर्मके विना भी पापकी अनुत्पत्ति सिद्ध है यातैं नित्यनैमित्तिककर्मका जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नहीं करै तौ कर्म निष्फल होवैंगे और निष्फल जो नित्य नैमित्तिककर्म हैं तिनका बोधक वेद भी निष्फल होवेगा यातैं नित्यनैमित्तिक कर्मसे भी स्वर्गफल होवे है.

और पूर्व कह्या जो–"जन्मांतरके जो काम्यकर्म हैं तिनका इच्छाके अभावतैं फल होवे नहीं सो वार्त्ता भी बनै नहीं काहेतैं? कर्मरूपी बीजसे दो अंकुर उत्पन्न होवे हैं–एक तो वासना और दूसरा अदृष्ट, धर्म अधर्मका नाम अदृष्ट है. शुभकर्मसे तो शुभवासना और धर्मरूप अंकुर होवे है और अशुभकर्मसे अशुभवासना और अधर्मरूप अंकुर होवे है, शुभवासनासे तो आगे शुभकर्ममें प्रवृत्ति होवे है और धर्मसे सुखका भोग होवे है, इसरीतिसे अशुभवासनासे अशुभकर्ममें प्रवृत्ति होवे है और अधर्मसे दुःखका भोग होवे है, इस रीतिसैं वासनारूप और अदृष्टरूप अंकुर कर्मरूपी बीजसे होवे है, तिनविषे "वासनारूप अंकुरका तो उपायसे नाश होवे है, और अदृष्टरूप अंकुरका फलकी उत्पत्तिसे विना

किसी प्रकारसे भी नाश होवे नहीं" यह शास्त्रका निर्णय है;"अशुभकर्मसे उत्पन्न हुवा जो अशुभवासना-रूप अंकुर है ताका तौ सत्संग आदिक उपायनतैं नाश होवे है और शुभकर्मसे उत्पन्न जो हुई शुभवासना, ताका कुसंग आदिकोतैं नाश होवे है. शास्त्रमें जितना पुरुषार्थ कह्या है, तासे प्रवृत्तिकी हेतु जो वासना ताका ही नाश होवे है.यातैं पुरुषार्थभी सफल है. और भोगका हेतु जोअदृष्ट ताका नाश होवे नहीं" यातैं "फल दिये विना कर्मकी निवृत्ति होवे नहीं" यह वार्ता जो शास्त्रमें कही है,तासे भी विरोध नहीं इस रीतिसे अज्ञानीकूं फल भोगविना कर्मकी निवृत्ति बनै नहीं और ज्ञानीकूं तौ भोगसे विना भी कर्मकी निवृत्ति बनै है. काहेतैं ? कर्म और कर्त्ता तथा फल परमार्थसे तो हैं नहीं किंतु अविद्यासे कल्पित हैं ता अविद्याका ज्ञान विरोधी है यातैं अविद्याकल्पित जो कर्मादिक हैं तिनका भी ज्ञानसे नाश होवे है जैसे स्वप्नविषे निद्रासे जो पदार्थ प्रतीत होवे हैं तिनका जाग्रत विषे निद्राकी निवृत्तिसे अभाव होवे है तैसे अविद्यारूप निद्रासे प्रतीत जो होवे है कर्म-कर्ता, फल तिनका भी ज्ञानदशारूप जाग्रत विषे अविद्याकी निवृत्तिसे अभाव होवे है और ज्ञान विना अभाव होवे नहीं और इच्छाके अभावतैं जो कर्मका फलभोग होवे नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या होवेगा. काहेतैं,

"फल भोगे विना अज्ञानीके कर्मकी निवृत्ति होवे नहीं" यह ईश्वरका संकल्पहै जो इच्छाके अभावतैं करे कर्मका फल होवे नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या ही होवेगा और "सत्य संकल्प ईश्वर है," यह वार्त्ता शास्त्रमें प्रसिद्ध है यातैं "इच्छाके अभावतैं पूर्व करे काम्यकर्मका फल होवे नहीं" यह वार्त्ता विरुद्ध है, जो इच्छाके अभावतैं ही काम्यकर्मफल नहीं होवे तो अशुभकर्मका फल किसीकूं भी नहीं होना चाहिये, काहेतैं अशुभकर्मका फल दुःख है, ताकी किसीकूं भी इच्छा है नहीं. यातैं ज्ञानविना कर्मके फलका अभाव होवे नहीं.

और जो पूर्व कह्या-"जैसे कर्मके अनुष्ठानकालमें जो इच्छारहित पुरुष है ताकूं कर्मका फल वेदांतमतमें अंगीकार नहीं करचा तैसे कर्मके अनुष्ठानसे अनंतर भी जो पुरुषकी इच्छा दूर होय जावे तो कर्मका फल होवे नहीं" सो वार्ता भी वेदांतमतकूं नहीं जानके कही है. काहेतैं, फलकी इच्छा सहित जो कर्म करै अथवा फलकी इच्छारहित जो कर्म करै है, ताकूं कर्मका फलभोग तौ निश्चय होवे है, परंतु इच्छा रहित कर्मसे अंतःकरणशुद्ध होवे है, और इच्छा सहित जो कर्म करे है, ताकूं केवल भोग तो होवे है, परंतु अंतःकरण शुद्ध होवे नहीं, जो इच्छा रहित कर्म करनेते शुद्ध अंतःकरण होयके श्रवणतैं ज्ञान होय जावे, ताकूं तौ कर्मका फल होवे नहीं, और

"जाने कर्म तो फलकी इच्छारहित किये हैं. परंतु श्रवणके अभावतें अथवा किसी अन्यनिमित्ततें ज्ञान होवे नहीं.ताकूं तो इच्छारहित कर्मके फलका भोग दूर होवे नहीं" यह वेदांतका सिद्धांत है. यातें ज्ञानके विना कर्मका फल भोग दूर होवै नहीं.

और पूर्व कह्या जो-"प्रायश्चित्तसे संपूर्ण अशुभ कर्मोंका नाश होवे है" सो वार्त्ता भी बनै नहीं, काहेतें? अनंत कल्पके जो अशुभ कर्म हैं तिनका एक जन्मविषे प्रायश्चित्त बनै नहीं और गंगास्नान और ईश्वरका नाम उच्चारणसे आदिलेके सर्वपापके नाशक जो साधारण प्रायश्चित्त कहे हैं सो भी ज्ञानकेही साधन हैं यातें सर्वपापके नाशक कहे हैं यातें ज्ञानसेही सर्व पापका नाश होवे है.

और पूर्व कह्या जो-"नित्यनैमित्तककर्म करनेतें जो क्लेश होवे है, सो पूर्वसंचित निषिद्धकर्मका फल है यातें संचित निषिद्धकर्मका फल और होवे नहीं" सो वार्त्ता भी बनै नहीं काहेतें अनंत प्रकारके संचित निषिद्ध जो कर्म हैं तिनका फलभी अनंत प्रकारका दुःख है केवल कर्मके अनुष्ठानका क्लेशही तिनका फल बनै नहीं। और पूर्व कह्याजो-"संपूर्ण संचित काम्यकर्मतें एकही शरीर होवेहै." सो वार्त्ता भी बनै नहीं काहेतें? संचित काम्यकर्म अनंत हैं तिनका एक जन्मविषे

भोग बनै नहीं और एक पुरुषकूं एककालमें नाना शरीरसे जो भोग कह्या सो भी सिद्धयोगी विना औरकूं बनै नहीं और "सिद्धयोगीकूं भी और तौ संपूर्ण सामर्थ्य होवे है, परंतु ज्ञान विना मोक्ष तौ होवे नहीं." यह वेदका सिद्धांत है, इस रीतिसे काम्यकर्म और निषिद्धकर्मकूं त्यागके जो केवल नित्यनैमित्तिककर्म अज्ञानी करे, ताकूं नित्य नैमित्तिक कर्मका फल भोगनेके वास्ते और पूर्व जो शुभ अशुभ कर्म करे है तिनका फल भोगने वास्ने, अनंतशरीर होवैंगे मोक्ष होवे नहीं यातैं ज्ञानद्वारा बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन बनै है, जैसे स्वप्नविषे जो मिथ्या पदार्थ प्रतीत होवे है, तिनकी जाग्रत विना निवृत्ति होवै नहीं. तैसे बंध भी मिथ्या प्रतीत होवे है ताकी भी ज्ञानरूप जाग्रत विना निवृत्ति होवे नहीं.

इस रीतिसे ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन संभव हैं और अधिकारी आदिकोंके संभवतैं संबंध भी संभव है, यातैं ग्रंथका आरंभ बनै है ॥ १४ ॥

दोहा।

दादूदीनदयाल जू, सत सुख परमप्रकास।
जामैं मतिकी गति नहीं, सोई निश्चलदास ॥ १५ ॥

इति अनुबंधविशेषनिरूपणं नाम द्वितीयस्तरंगः ॥२॥

तृतीयस्तरङ्गः ३.

श्रीगुरुशिष्य लक्षण.

गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपण-दोहा।

पेख चारि अनुबंधयुत, पढै सुनै यह ग्रन्थ।
ज्ञानसहित गुरुसे जु नर, लहै मोक्षकी पंथ॥ १॥

चारि अनुबंधसहित ग्रंन्थकूं जानके ज्ञान सहित गुरुसे जो पुरुष पढै, अथवा एकाग्रचित्तकरके सुनै, सो पुरुष मोक्षका पंथ जो ज्ञान है ताको प्राप्त होय॥ १॥

दोहा।

अनायास मति भूमिमैं, ज्ञान चिमन आवाद।
है इहिं कारन कहतहूं, गुरू शिष्य संवाद॥ २॥

गुरुशिष्यके संवादसे अर्थनिरूपण करनेसे श्रोताकूं बोध सुखसे होवे है. इस कारणतैं गुरुशिष्यके संवादसे ग्रंथका आरंभ करिये है॥ २॥

श्रीगुरुलक्षण-चौपाई।

वेद अर्थकूं भले पिछानै।
आतम ब्रह्मरूप इक जानै॥
भेद पंचकी बुद्धि नशावै।
अद्वय अमल ब्रह्म दरशावै॥ ३॥
भव मिथ्या मृगतृषा समाना।
अनुलव इमि भाषत नहिं आना॥

सो गुरु दे अद्भुत उपदेशा।
छेदक शिखा न लुंचित केशा ॥ ४ ॥

"वेदके अर्थकूं भली प्रकारसे पिछाने" यह कहनेसे अधीतवेद आचार्य होवे हैं, यह कहा और जीव ब्रह्मकी एकता निश्चय करके जाने यातैं आत्मज्ञानविषे जाकी स्थिति होवे, सो आचार्य होवे हैं, यह कहा जो वेद पढा होवे और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा न होवे सो आचार्य नहीं है,ज्ञान विषे जाकी निष्ठा होवे और वेद नहीं पढा सो भी आप तौ मुक्त है; परंतु उपदेश करनेयोग्य आचार्य नहीं है. काहेतैं? वाकूं जिज्ञासुकी शंका मेटनेकी युक्ति नहीं आवेहै, जाके चित्तविषे शंका उठे नहीं ऐसा जो उत्तम संस्कारवाला जिज्ञासु है, ताके तौ उपदेश करने विषे समर्थ है भी परंतु सर्वके उपदेश करने योग्य नहीं, यातैं आचार्य नहीं. किंतु अधीतवेद होवे और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवे सो आचार्य कहिये है. और शिष्यकी बुद्धिमें भान जो होवे पंचप्रकरका भेद ताकूं नाना युक्तिसे दूर करने विषे समर्थ होवे–१–जीव ईशका भेद, २–जीवनका परस्पर भेद, ३–जीव जड़का भेद, ४–ईश जड़का भेद,५–जड़जडका भेद, यह पंचप्रकारके भेद हैं, ताकूं खंडन करै. काहेतैं?भेद भयका हेतु है.यातैं भेदका निराकरण अवश्य कर्त्तव्य है. भेदका निराकरण करके अद्वय और अमल

कहिये अविद्यादि मलरहित जो ब्रह्म ताकूं दरशावे कहिये आत्मरूप करके साक्षात्कार करवावे और सब संसारकूं मिथ्यारूप करके उपदेश करै. सो अद्भुत उपदेश देनेवाला आचार्य कहिये है, और केवल आप मुंडन कराइके शिष्यकी शिखा छेदन मात्र करनेवाला अथवा और कोऊ संप्रदायके चिह्न मात्रसे अंकित करनेवाला आचार्य नहीं कहिये है ॥ ३ ॥ ४ ॥

दोहा ।

करतमोक्ष भवग्राहते, दे असि निज उपदेश ।
सो दैशिक बुध जन कहत, नहिं कृत गैरिकवेष ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५ ॥

दोहा ।

दैशिकके लक्षण कहे, श्रुति मुनि वच अनुसार ।
सो लक्षण है शिष्यके, ह्वै जिनते अधिकार ॥ ६ ॥

शास्त्रके अनुसार दैशिक कहिये गुरु ताके लक्षण कहे और जिन साधनसे ग्रंथमें अधिकार होवे सो साधन शिष्यके लक्षण हैं याका यह अभिप्राय है:-जो अधिकारीके लक्षण पूर्व कहे सोई लक्षण शिष्यके जानलेने ६॥

गुरुभक्तिका फल वर्णन-दोहा ।

ईश्वरते गुरुमें अधिक, धारे भक्ति सुजान ।
विनगुरुभक्ति प्रवीण हूँ, लहै न आतमज्ञान ॥ ७ ॥

गुरुमें ईश्वरसे अधिक भक्ति करे. काहेतैं सर्व-

शास्त्रमें प्रवीण भी पुरुष होवे सो भी गुरुके उपदेश विना ज्ञानकूं प्राप्त होवे नहीं ॥ ७ ॥

जो पूर्वदोहेमें बात कही सोई दृष्टांतसे प्रतिपादन करे हैः-

दोहा।

वेद उदधि विनगुरु लखै, लागै लौन समान।
बादर गुरुमुख द्वार है, अंमृतसे अधिकान ॥ ८ ॥

वेदरूपी उदधि कहिये जो समुद्र है सो गुरु विना लोनके समान क्षार है. जैसे क्षारसमुद्रमें पैठिके ताके जलकूं जो पान करे, सो केवल क्षारकूं अनुभव करे है और तासूं क्लेशकूं प्राप्त होवे है तैसे गुरुविना जो वेदके अर्थकूं विचारे है, सो भेदरूपी क्षारकूं अनुभव करके जन्ममरणरूपी खेदकूं प्राप्त होवे है इसी कारणसे रामानुज और मध्वसे आदिलेके जो नाना पुरुष हुए हैं तिन्होंने वेदके अर्थका विचार भी किया है, परंतु गुरुद्वारा नहीं किया, यातैं भेदविषे निश्चय करके जन्ममरणरूपी खेदकूंही प्राप्त भये मुक्तिरूपी आनंद उनकूं प्राप्त नहीं भया; यद्यपि रामानुज आदि जो भये हैं तिन्होंने भी वेद अपने २ गुरुसेही पढिके विचारा है और विचारके व्याख्यान किया;है तथापि जिनके पास उन्होंने वेद पढ्या सो गुरु नहीं, काहेतैं ? जो जीवब्रह्मकी एकताका उपदेश करै सो गुरु होवे है "यह पूर्व गुरुलक्षणके प्रसं-

गमें कहि आये और उनके जो पाठक हुए हैं,सो जीव ब्रह्मका भेद उपदेश देनेवाले हुए हैं,यातैं उनके विषे जो गुरुशब्दका प्रयोग करे है सो अर्हतके समान करे है जैसे अर्हतके शिष्य अर्हतकूं गुरु कहैं हैं परंतु अर्हत गुरु पदका विषय नहीं है,तैसे भेदवादी पुरुषोंके जो शिष्य हैं, सो अपने पाठकोंकूं गुरु कहे हैं, परंतु सो गुरु नहीं हैं. यातैं रामानुजसे आदिलेके जो भेदवादी हुए हैं, तिन्होंने गुरुद्वारा विचार नहीं किया.इस कारणतैं भेदमें अभिनिवेशकरके जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही प्राप्त भये. तैसे और भी जो कोऊ पूर्वलक्षणयुक्त गुरुसे विना आपही वेदके अर्थका विचार करै, अथवा भेदवादी पुरुषसे पढिके विचारे सो भी भेदरूपी क्षारकूं अनुभवकरके जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही अनुभव करे है. यह दोहेके पूर्वार्द्धका अर्थ है. और बादररूप ब्रह्मवित् गुरुके मुख-द्वारा सुनिके विचारे, ताकूं अमृतसेभी अधिक आनं-दका हेतु वेद होवे है.जैसे समुद्रका जल स्वरूपसे क्षार है, और बादरद्वारा मधुर होवे है, तैसे वेदका अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरुद्वारा आनंदका हेतु है ॥ ८ ॥

पूर्व दोहेमें यह बात कही जो--"गुरुसे पढ्या जो वेदका अर्थ है. ताके विचारसे मुक्तिरूपी फल प्राप्त होवे है, तासों गुरु ज्ञानी होवे,अथवा अज्ञानी होवे, ऐसा विशेष नहीं कहा सो अब कहे हैं, "यद्यपि ज्ञानहीन

गुरु नहीं यह पूर्व कह आये, तथापि पूर्व कही वार्ताकूं दृष्टान्तसे प्रतिपादन करैं हैं:--

दोहा।

दृतिपुट घट सम अज्ञजन, मेघसमान सुजान।
पढै वेद इहिं हेतुते, ज्ञानीपै तजि आन॥९॥

अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जन है, सो दृतिपुट कहिये मशक और चरस आदि जो चर्मपात्र, अथवा घटद्वारा ग्रहण किया जो समुद्रका जल,सो विलक्षण स्वादका हेतु नहीं है, तैसे अज्ञानी पुरुषद्वारा ग्रहण जो किया वेदरूपी समुद्रका अर्थरूपी जल,सो विलक्षण आनंदका हेतु नहीं, यातैं अज्ञानी पाठक चर्मपात्र और घटके समान हैं और सुजान कहिये ज्ञानी मेघके समान हैं यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करी है, यातैं चर्मपात्र और घटके समान जो अज्ञानी पाठक है ताकूं त्यागके मेघसमान जो ज्ञानी ताहीसूं वेदका अर्थ पढे अथवा सुने ॥९॥

"ज्ञानवान्के पास वेद पढे" या कहनेतैं यह शंका होवे है:--जो वेदकी श्रुति हैं. तिनही द्वारा जीवब्रह्मका स्वरूप विचारनेतैं ज्ञान होवे है.अन्य संस्कृत ग्रंथोंसे और भाषाग्रंथोंसे ज्ञान होवे नहीं. याते भाषा ग्रंथका आरंभ निष्फल होवेगा.

ताके समाधानका-दोहा।

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद॥१०॥

"ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूप है" यह वार्ता श्रुतिविषे प्रसिद्ध है, यातैं ताकी वाणी वेदरूप है सो भाषारूप होवे अथवा संस्कृतरूप होवे सर्वथा भेदभ्रमका छेद करे है और जो कहे हैः-"वेदके वचन विना ज्ञान होवे नहीं" सो नियम नहीं, जैसे आयुर्वेदमें कहे जो रोग और तिनके निदान और औषध, तिन संपूर्णका अन्यसंस्कृत ग्रंथोंसे और भाषा फारसी ग्रंथोंसे ज्ञान होयजावे है तैसे सर्वका आत्मा जो ब्रह्म ताका ज्ञान भी भाषादिक ग्रंथोंसे होवे है, इसवास्ते सर्वज्ञ जो ऋषि और मुनि हुये हैं, तिन्होंने स्मृति और पुराण और इतिहास ग्रंथोंमें ब्रह्मविद्याके प्रकरण कहे हैं, जो वेदसे विना ज्ञान न होवे तौ वे संपूर्ण प्रकरण निष्फल होय जावेंगे, यातैं आत्माके स्वरूपका प्रतिपादक जो वाक्य है तासूं ज्ञान होवे है, सो वेदका होवे अथवा अन्य होवे यातैं भाषाग्रंथसे ही ज्ञान होवे है, यह वार्ता सिद्ध हुई १०

दोहा।

वाणी जाकी वेद सम, कीजै ताकी सेव।
ह्वै प्रसन्न सब सेवते, तब जानै निज भेव ॥११॥

जा ब्रह्मवेत्ताकी वाणी कहिये वचन वेदके समान है ता ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी जिज्ञासु सेवा करै, काहेतैं, सेवातैं जब आचार्य प्रसन्न होवे तब निज भेव कहिये अपना

स्वरूप जानैं यह कहनेतैं यह वार्त्ता जनाईः-जो आचार्यकी सेवा है, सो तो ईश्वरकी सेवासे भी अधिक है; काहेतैं, जो ईश्वरकी सेवा है सो अदृष्टफलका हेतु है. और आचार्यकी सेवा है सो अदृष्टफल और दृष्टफल दोनोंका हेतु है, जो वस्तु धर्मअधर्मकी उत्पत्ति द्वारा फलका हेतु होवे सो अदृष्टफलका हेतु कहिये है और जो वस्तु धर्म अधर्मकी उत्पत्तिसे विना साक्षात् फलका हेतु होवे सो दृष्टफलका हेतु कहिये है. ईश्वरकी जो सेवा है सो धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है. यातैं ईश्वरकी सेवा अदृष्टफलका हेतु है, जो आचार्यकी सेवा धर्मकी अपेक्षा बिना आचार्यकी प्रसन्नता करके उपदेशरूप फलका हेतु है. यातैं दृष्टफलका हेतु है, और धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतुहै यातैं अदृष्टफलका भी हेतु है इस रीतिसे आचार्यकी सेवा ईश्वरकी सेवासे भी उत्तमहै यातैं जिज्ञासु सर्व प्रकारके ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी सेवा करैं ११

आचार्यसेवा प्रकार-सोरठा।

है जबही गुरुसंग, करै दण्डजिमि दण्डवत।
धारै उत्तम अंग, पावन पाद सरोज रज ॥ १२ ॥

जब गुरु प्राप्त होवे,तब दण्डकी नाईं साष्टांग प्रणाम करै और पावन कहिये पवित्र जो है पादरूप सरोज

(कमल) तिनकी रज जो धूरी, ताकूं उत्तम अंग कहिये मस्तक ऊपर धारै ॥ १२ ॥

चौपाई।

गुरु समीप पुनि करिये वासा।
जो अति उत्कट है जिज्ञासा॥
तन मन धन वच अर्पी देवै।
जो चाहै हिय बंधन छेवै॥१३॥

अर्थ स्पष्ट॥ १३॥

तनअर्पण प्रकार।

चौपाई।

तन करि बहु सेवा विस्तारै। आज्ञा गुरुकी कबहुँ न टारै॥

मन अर्पण प्रकार।

मनमें प्रेम रामसम राखै। है प्रसन्न गुरु इमिअभिलाषै१४
दोषदृष्टि स्वपने नहिं आनै। हरि हर ब्रह्म गंग रविजानै।
गुरु मूरतिको हियमें ध्याना। धारै जो चाहै कल्याना१५

धन अर्पण प्रकार।

चौपाई।

पत्नी पुत्र भूमि पशु दासी।
दास द्रव्य गृह श्रीहिविनाशी॥
धनपद इन सबहिनकूं भाखै।
है गुरु शरण दूरि तिहिं नाखै॥ १६॥

सोरठा।

धन अर्पणको भेव, एक कह्यो सुन दूसरो।
है गृहस्थ गुरुदेव, याज्ञवल्क्य सम देय तिहि॥१७॥

पत्नीसे आदिलेके व्रीहि कहिये धान्यपर्यंत सारे धन कहिये हैं तिन सर्वकूं त्यागके त्यागी जो गुरु है, ताके शरण होवे; यह धन अर्पण कहिये है. काहेतें? गुरु त्यागी है, सो आप तौ अंगीकार करै नहीं. परन्तु तिस गुरुकी प्राप्तिवास्ते धनका त्याग किया है. यातैं ऐसा जो त्याग है, सो भी गुरुकूंही अर्पण कहिये है.

जो गृहस्थ गुरु होवे तिनकूं समग्र चढाई देवे, यह दूंसरे प्रकारका धन अर्पण कहिये है। यामैं कोऊ शंका करेहैः—जो ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ नहीं होवे हैं, सो शंका बनै नहीं। काहेतें? याज्ञवल्क्य और उद्दालकसे आदि लेके ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थही वेदविषे बहुत सुनेजावे हैं. यातैं गृहस्थभी आचार्य संभव हैं ॥१७॥

वाणी अर्पणविषे छन्द।

भाषत गुणगण गुरुके वाणी शुद्ध।
दोष न कबहूं अर्पण करि इमि बुद्ध॥१८॥

सोरठा।

जो चाहे कल्याण, तन मन धन वच अरपि इम।
बसै बहुत गुरुस्थान, भिक्षातैं जीवन करै॥१९॥

जो पुरुष अपना कल्याण चाहे, सो पूर्वरीतिसे तनु

आदि अर्पण करके आप बहुतकाल गुरु जहां हों, ता स्थानविषे, वा समीपमें वास करै, आप भिक्षातैं जीवन कहिये प्राण धारण करे ॥ १९ ॥

चौपाई।

सो भिक्षा धरि देशिक आगे। गुरु
निज भोजनकूं नहिं पुनि मांगै ॥ २० ॥

जो भिक्षाका अन्न शिष्य ल्यावे सो आपही भोजन नहीं कर लेवे. किंतु दैशिक जो गुरु हैं, तिनके आगे धरदेवे और भिक्षा गुरुके आगे धरके अपने भोजनकूं गुरुसे माँगे नहीं और एकदिनमें दूसरीवार भिक्षा ग्राममें भी मांगे नहीं किंतु गुरु जो कृपा करके देवैं तो भोजन करै गुरु जो शिष्यकी श्रद्धाकी परीक्षाके निमित्त नहीं देवे, तो दूसरे दिन वृत्ति जो भिक्षा ताकूं संभारे॥२०॥

दोहा।

पुनि गुरुके आगे धरै, भिक्षा शिष्य सुजान।
निर्वेद न जियमें करै,जो निज चहै कल्यान ॥२१॥

निर्वेद नाम ग्लानिका है. अन्य अर्थ स्पष्ट है ॥२१॥

चौपाई।

इम व्यवहृत अवसर जब पेखै।
मुख प्रसन्न गुरु सन्मुख लेखै॥
विनती करै दोउ कर जोरी।
गुरु आज्ञातैं प्रश्न बहोरी ॥ २२ ॥

इस रीतिका व्योहार करते जब गुरुका अवकाश देखै और प्रसन्न मुखसे गुरु जब अपने सन्मुख देखे तब हाथ जोरके गुरुकी स्तुति करे और विनती करे हे भगवन ! "मैं पूछना चाहूं हूं" तब गुरु आज्ञा करैं तो प्रश्न करैं.

कदाचित जन्मांतरके उत्तम कर्मसे गुरु कृपाकरके शिष्यकूं तन अर्पण आदि सेवासे विनाही उपदेश करदेवे,तो भी विशुद्ध अधिकारीका कल्याण होय जावे है. काहेतें ? गुरुसेवाके दो फल हैं –एकतौ गुरुकी प्रसन्नता और दूसरा अंतःकरणकी शुद्धि, सो दोनों वाके सिद्ध हैं॥

दोहा ।

तन मन धन वाणी अरपि, जिहिं सवत चितलाय ।
सकलरूप सो आप है, दादू सदा सहाय ॥ २३ ॥

इति गुरुशिष्यलक्षणं गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणं नाम तृतीयस्तरंगः ॥ ३ ॥

चतुर्थस्तरङ्गः ४.

उत्तमाधिकारी-उपदेशनिरूपण ।

दोहा ।

गुरु शिषके संवादकी, कहूं ब गाथ नवीन ।
पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन ॥ १ ॥

दोहा।

तीन सहोदर बाल शुभ, चक्रवर्ति संतान।
शुभसंतति पितु तिहिंनमैं,स्वर्ग पताल जहान ॥२॥

तीनों बाल नाम।

तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि,दूजो कहत अदृष्ट।
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, उत्तम मध्य कनिष्ट ॥ ३ ॥

चौपाई।

बालपनो सब खेलत खोयो।
तरुणथाय पुनि मदन बिगोयो॥
धारि नारि गृह मार प्रकाशी।
भोग लहै तिहुँ सब सुखराशी ॥ ४ ॥

दोहा।

स्वर्ग भूमि पातालके, भोगहिं सर्व समाज।
शुभसंतति निज तेजबल, करत राजके काज ॥ ५ ॥
लहि अवसर इकतिहिं पिता,निज हिय रच्यो विचार।
सुखस्वरूप अज आतमा, तासूं भिन्न असार ॥ ६ ॥
इहिं कारन तजि राज यह, जानूं आतमरूप।
स्वर्ग भूमि पातालके, तिहुँ पुत्रहि करि भूप ॥ ७ ॥

चौपाई।

अस विचार शुभसंतति कीन्हा।
मंत्र पेखि तिहुँ पुत्र प्रवीना ॥
देश इकंत समीप बुलायें।
निज विरागके वचन सुनाये ॥ ८ ॥

भाष्यो पुनि यह राज सँभारहु।
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु॥
अपर बसहु काशी भुवि स्वामी।
रहत जहां शिव अन्तर्यामी॥ ९॥
जिहिं मरतहि सुनि शिव उपदेशा
अनयासहि तिहिं लोक प्रवेशा॥
गंग अंग मनु कीर्ति प्रकासै।
उत्तर वाहिनि अधिक उजासै॥ १०॥

दोहा।

करहु राज इम भिन्न तिहुँ, पालहु निज निज देश।
विन विभाग भ्रातानको, भूमि काज है क्लेश॥ ११॥

सवैया—राजसमाज तजौं सब मैं अब।
जानि हिये दुख ताहि असारा॥
और तु लोक दुखी अपने दुख,
मैं भुगत्यो जग क्लेश अपारा॥
जे भगवान प्रधान अजान,
समान दरिद्रन ते जन सारा।
हेतु विचार हिये जगके भग,
त्यागि लखूं निजरूप सुखारा॥ १२॥
वाक्य अनंत कहै इम तात,
सुने तिहुं भ्रात सुबुद्धिनिधाना।
बैठि इकंत विचार अपार,

भनै पुनि आपसमांहि सुजाना ॥
दे दुखमूल समाज हमैं यह,
आप भयो यह ब्रह्म समाना।
सो जन नागर बुद्धिकसागर,
आगर दुःख तजै जु जहाना ॥ १३ ॥

दोहा।

याते तजि दुखमूल यह, राज करौ निज काज।
करि विचार इस गेहते, निकस्यो भ्रातसमाज ॥ १४ ॥
तिहुँ खोजत सद्गुरु चले, धारि मोक्ष हिय काम।
अर्थसहित किय तातको, शुभसंतति यह नाम ॥ १५ ॥
खोजत खोजत देश बहु, सुरसरि तीर इकंत।
तरु पल्लव साखा सघन, बन तामें इक संत ॥ १६ ॥
बैठ्यो वट विटपहिं तरै, भद्रा मुद्रा धारि।
जीवब्रह्मकी एकता, उपदेशत गुण टारि ॥ १७ ॥
दोषरहित एकाग्रचित, शिष्यसंघ परिवार।
लखि दैशिक उपदेशहिय, चहुँधा करत विचार ॥१८॥
मनहु शंभु कैलासमें, उपदेशत सनकादि।
पेखि ताहि तिहिं लहिशरण, करी दंडवत आदि॥१९॥
कियो वास षट्मास पुनि,शिष्यरीति अनुसार।
करी अधिक गुरुसेव तिहुँ, मोक्ष काम हियधार ॥२०॥
ह्वै प्रसन्न श्री गुरु तबै, ते पूछे मृदुवानि।
किहिं कारण तुम तात तिहुँ, बसहु कौन कह आनि२१

तत्त्वदृष्टि तब लखि हिये, निज अनुजनकी सैन ।
कहै उभय कर जोरि निज, अभिप्रायके बैन ॥ २२ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा ।

भो भगवन् ! हम ज्ञान तिहुँ, शुभसंतति सन्तान ।
लख्यो चहैं बहुभेव हिय, दीन नवीन अजान ॥ २३ ॥
जो आज्ञा ह्वै रावरी, तौ ह्वै पूछि प्रवीन ।
आप दया निधि कल्पतरु, हम अतिदुखितअधीन॥२४॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा ।

सुनहु शिष्य मम बात, जो पूछहु तुम सो कहूँ ।
लहो हिये कुशलात, संशय कोऊ ना रहै ॥ २५ ॥

दोहा ।

गुरुकी लखी दयालुता, शिष्य हिये भो चैन ।
कार्य सिद्ध निज मानि हिय, भाषै सविनय बैन॥२६॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच चौपाई ।

जो भगवन् तुम कृपानिधाना ।
हो सर्वज्ञ महेश समाना ॥
हम अजान मति कछू न जानै ।
जन्मादिक संसृति भयमानैं ॥ २७ ॥ संसार भय दुःख
कर्म उपासन कीने भारी ।
और अधिक जगपाशीडारी ॥
आप उपाय कहौ गुरुदेवा ।
ह्वै जाते भवदुखको छेवा ॥ २८ ॥

पुनि चाहत हम परमानंदा। ताको कहो उपाय सुछंदा ॥
जबहि कृपाकरि कहिहो ताता। तब हैहै हमरे कुशलाता॥

हे भगवन्! आप कृपानिधान हैं और सदाशिवके समान आप सर्वज्ञ हो.और हे भगवन्! हम जन्ममरणसे आदि लेके जो दुःखरूप संसार है तासे डरे हैं ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहो और परमानंदकी प्राप्तिका उपाय कहो और हे गुरो! उपासना और कर्मके अनंत अनुष्ठान करे भी, परंतु उनसे हमारेकूं वांछित फल प्राप्त भया नहीं.और उलटा संसार उनसे बढतागया यातें आप और उपाय बतावो,जा करके हम कृतार्थ होवें२९

दोहा।

मोक्षकाम गुरु शिष्य लखि, ताको साधन ज्ञान।
वेदउक्त भाषण लगे, जीवब्रह्म भिद भान॥३०॥

दुःखकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिको मोक्ष कहे हैं ताकी कामना शिष्यके हृदयमें देखके ताका साधन जो वेदउक्त ज्ञान है सो कहते भये. यद्यपि ज्ञानका स्वरूप अनेकशास्त्रोंविषे भिन्न भिन्न वर्णन किया है, तथापि जीव ब्रह्मकी भिद कहिये भेद ताकूं दूर करनेवाला जो ज्ञान है,सोई वेदमें मोक्षका साधन कहा है. याते ताही ज्ञानकूं कहे हैं॥३०॥

श्री गुरुरुवाच-दोहा।

परमानंदमिलाप तू, जो शिष चहै सुजान।
जन्मादिकदुख नाश पुनि,भ्रांतिजन्य तिहिं मान ३१

परमानंद स्वरूप तू,नहिं तोमें दुख लेश।
अज अविनाशी ब्रह्म चित,जिन आनै हियक्लेश३२

हे शिष्य ! परमानंदकी प्राप्तिविषे और जन्ममरणसे आदिलेके जो दुःखरूप संसार है ताकी निवृत्तिविषे जो तेरेकूं इच्छा भई है,ता इच्छाकी भ्रांतिसे उत्पत्ति हुई है तू ऐसे जान, काहेते ? तू आप परम आनंदस्वरूप है, याते ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. जो वस्तु अप्राप्त होवे,ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै है. और अपना जो स्वरूप है सो सदा प्राप्त है. ताकी प्राप्तिविषे जो इच्छा सो भ्रांति विना बनै नहीं और जन्मसे आदिलेके जो संसार है, सो जो कदाचित् होवे तो ताकी निवृत्ति विषे इच्छा बनै. सो जन्मादिक संसारका लेश भी तेरे विषे नहीं है.याते अनहुए दुःखकी निवृत्तिविषे भी इच्छा भ्रांति विना बनै नहीं और हे शिष्य ! जन्म और नाश करके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है, सो तूं है याते अपने हृदयविषे जन्मादिक खेद मत मान॥ ३१ ॥ ३२॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच—दोहा।

विषयसंग क्यों भान है, जो मैं आनँदरूप।
अब उत्तर याको कहो, श्रीगुरु मुनिवरभूप ॥३३॥

हे भगवन्! जो मेरा आत्मा आनन्दरूप होवे तो विषयके संबंधसे आनंदका आत्माविषे भान नहीं होना चाहिये. याते आत्मा आनंदरूप नहीं, किंतु विषयके संबंधसे आत्मा विषे आनंद होवे है ॥३३॥

श्रीगुरुरुवाच—चौपाई।

आतम विमुख बुद्धि जन जोई। इच्छाताहि विषयकीहोई॥
तासूं चंचलबुद्धिबखानी।सुखआभास होइ तहँ हानी ३९
जब अभिलषित पदारथपावै।तब मतिछनकविछेप नशावै
तातें है आनन्द प्रतिबिंबा। पुनि छनमें बहु चाहहिडंबा॥
तातैं है थिरताकी हानी। सो अनन्द प्रतिबिंब नशानी॥
विषय संग अनन्दजु होई।बिनसत गुरु यह लखै नकोई॥

हे शिष्य! आत्मासे विमुख है बुद्धि जाकी ऐसा जो पुरुष हो ताकूं विषयकी इच्छा होवे है या स्थान विषे जो भोगका साधन होवे सो विषय कहिये है. याते धन पुत्रादिकोंका भी ग्रहणकरि लेना ता विषयकी इच्छाते बुद्धि चंचल रहे है. ता चंचल बुद्धिमें आत्मस्वरूप आनन्दका आभास कहिये प्रतिबिंब नहीं होवे है और जिस विषयकी इच्छा हुई होवे सो विषय याकूं प्राप्त होइजावे तब या पुरुषकी बुद्धि क्षणमात्र स्थित होयके अंतर्मुख बुद्धिकी वृत्ति होवे है ता अंतर्मुख वृत्तिविषे आत्माका स्वरूप जो आनन्द ताका प्रतिबिंब होवे है. तिस आत्मस्वरूप आनन्दके प्रतिबिंबकूं अनुभव करके पुरुषकूं भ्रांति होवे है, जो मेरेकूं विषयसे आनन्दका लाभ हुआ है परंतु विषयमें आनन्द है नहीं.

जो कदाचित् विषयमें आनंद होवे, तो एक विषयसे तृप्त जो पुरुष, ताकूं जब दूसरे विषयकी इच्छा होवे,तब

भी प्रथम विषयसे आनन्द होना चाहिये सो होवे तो नहीं है. और हमारी रीतिसे स्वरूप आनन्दका तो भान बनै नहीं काहेतैं? जो दूसरे विषयकी इच्छा करके बुद्धि चंचल है, ताकेविषे प्रतिबिंब बनै नहीं । किंवाः—

जो विषयमेंही आनंद होवे तो जा पुरुषका प्रियपुत्र अथवा और कोई अत्यन्त प्यारा जो अकस्मात् बहुत काल पीछे मिलि जावे, तब वाकूं देखनेही प्रथम जो आनंद होवे, सो आनंद फेर सदा नहीं होता सो सदाही होनाचाहिये.काहेते आनन्दका हेतु जो पुरुष है सो वाके समीप है.और हमारी रीतिसे तो प्रथमही आनंद बनै है;सदा बनै नहीं. काहेतैं?एकबेर प्यारेकूं देखके वृत्ति स्थित होवे है, फेर वृत्ति और पदार्थनमें लग जावे है; याते चंचल है. याते पदार्थमें आनंद नहीं किंवाः—

जो विषयमें आनंद होवे तौ समाधिकालविषे जो योगानंदका भान होवे है सो न होना चाहिये, काहेते, समाधिमें किसी विषयका संबंध नहीं है। किंवाः—

जो विषयमें आनन्द होवे तो सुषुप्तिमें आनन्दका भान नहीं होना चाहिये. काहेते सुषुप्तिविषे भी किसी विषयका संबंध है नहीं,याते विषयमें आनन्द नहीं किंतु आत्मस्वरूप आनंद सारे भान होवे है,इसी वास्ते वेदमें लिखा है:—“आत्मस्वरूप आनन्दकूं लेके सारे आनंद-वाले होवे हैं” ॥ २४–२६ ॥

दोहा।

विषय संगतैं है प्रगट, आतम आनँदरूप।
शिष्य सुनायो तोहि मैं, यह सिद्धांत अनूप ॥३७॥

सोरठा।

सो तूं मोहि बभाख, जो यामैं शंका रही।
निजमतिमैं मति राख, मैं ताको उत्तर कहूँ ॥३८॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच–चौपाई।

भो भगवन् तुम दिनदयाला। मेट्यो मम संशय ततकाला
यामैं कछुक रहि आशंका। सो भाखों अब है निर्बंका ३९
आतमविमुख बुद्धि अज्ञानी। ताकी यह सब रीति बखानी।
ज्ञानी जनको कहौ विचारा। कोउ न तुम सम और उदारा

हे भगवन्! आपने पूर्व विषयके संबंधसे आत्मानंदके भानकी जो रीति कही सो अज्ञानीपुरुषकी कही और ज्ञानीकी नहीं कही. काहेतैं? आत्मासे विमुख है बुद्धि जाकी ताका आपने नाम लिया है, सो आत्मासे विमुखबुद्धि अज्ञानीकी होवे है, ज्ञानीकी नहीं यातेआप अब ज्ञानीका विचार कहो. जो ज्ञानवानकूं विषयकी इच्छा और ताके सम्बंधसे पूर्व रीति करके सुखका भान होवे है; अथवा नहीं? यह वार्त्ता आप कहौ॥३९॥४०॥

श्रीगुरुरुवाच–दोहा।

सुनहु शिष्य इक बात मम, सावधान मन कान।
हैं द्वैविध आतम विमुख, अज्ञानी रु सुजान ॥ ४१ ॥

है विस्मृत व्यवहारमें, कबहुक ज्ञानी संत ।
अज्ञानी विमुखहि रहै, यह तू जान सिधंत ॥ ४२ ॥

हे शिष्य ! तू चित्त और श्रवणकूं सावधान करके सुन. पूर्व जो हमने आत्मविमुख कहाहै सो आत्मविमुख अज्ञानीही नहीं होवे किंतु ज्ञानवान्की भी बुद्धि जब व्यवहारमें आजावै तब वह तत्त्वकूं भूल जावे है तिसकाल विषे ज्ञानवान् भी आत्मविमुखही होवे है. और ज्ञानीकी बुद्धि जो सदा आत्माकार ही रहै तौ भोजनादिक व्यवहार न होवे, याते आत्मविमुखबुद्धि दोनोंकी बने है. अज्ञानीकी तो बुद्धि सदा आत्मविमुख है, और ज्ञानीकी बुद्धि आत्मविमुख होवे तिसकालमें ज्ञानीकूं भी इच्छा और विषयके संबंधसे जो आत्मस्वरूप आनंदका भान अज्ञानीके समान है. परंतु इतना भेद है विषयके संबन्धसे जो आनंदका भान होवेहै,ताकूं ज्ञानी तो जानै है जो यह आनन्द है सो मेरे स्वरूपसे न्यारा नहीं है किंतु ताकाही आभास है. याते ज्ञानीकूं विषयभोगमेंभी समाधिही है-और अज्ञानी नहीं जानैहै. जो मेराही स्वरूपआनंद है और दोनोंका स्वरूप आनंद है विषयसे केवल अज्ञानीकूं भ्रांति होवे है॥४१॥ ४२ ॥

शिष्य उवाच-चौपाई ।

हे प्रभु परमानंद बखान्यो । मेरो रूप सु मै पहिचान्यो॥
नहीं तो मैं भवबन्धन लेशा । कह्यो आपपुनियहउपदेशा॥

यामें शंका मुहि यह आवे। जातेतब वच हियन सुहावे॥
नहिं मोमैं यह बंधपसारो। कहो कौन तो आश्रय न्यारो॥

हे भगवन्! आपने कहा—"तू परम आनन्दस्वरूप है" सो मैं भलीप्रकारसे जाना और आपने कहा जो "जन्म मरणसे आदि लेके संसाररूपदुःख तेरे विषे है नहीं यातैं ताकी निवृत्ति होवे नहीं" ताके विषे मेरेकूं शंका है जो जन्मादि दुःख मेरेविषे नहीं है तो जा विषे यह संसार है सो मेरेसे न्यारा कहिये भिन्न आश्रय आप कृपा करके बतावो, जाके विषे संसारदुःख जानिके अपने विषे नहीं मानूं॥ ४३॥ ४४॥

श्रीगुरुरुवाच सोरठा।

सुनहु शिष्य मम बानि, जाते तव शंका मिटै।
है जगकी अति हानि, तो मोमैं नहिं और मैं॥४५॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा।

जो भगवन् कहुँहै नहीं, जन्म मरण जगखेद।
है प्रत्यक्ष प्रतीति क्यों, कहो आप यह भेद॥४६॥

हे भगवन्! जो जन्म मरणसे आदि लेके संसारदुःख मेरेविषे तथा और विषे कहुँ भी नहीं है तो प्रत्यक्ष प्रतीत क्या होवे है? जो वस्तु नहीं होवे सो प्रतीतहोवे नहीं जैसे वन्ध्याको पुत्र और आकाशविषे पुष्प नहीं है, सो प्रतीत होवे नहीं, तैसे संसार भी नहीं होवे तो प्रतीत नहीं होना चाहिये और जन्मसे आदिलेके संसार

प्रतीत होवे है याते-"जन्मादिक संसाररूपी दुःख नहीं है" यह कहना बनै नहीं.

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

आतमरूप अज्ञानतैं, है मिथ्या परतीति।
जगत स्वप्न नभ नीलता, रज्जुभुजगकीरीति॥४७॥

जन्मादिक जगत् परमार्थसे नहीं है तो भी आत्माका ब्रह्मस्वरूप करके अज्ञानसे मिथ्या प्रतीत होवे है जैसे स्वप्नके पदार्थ आकाशमें नीलता और रज्जुमें सर्प परमार्थसे नहीं हैं और मिथ्या प्रतीत होवे है तैसे जन्मादिक जगत् परमार्थसे नहीं है मिथ्या प्रतीत होवे है॥४७॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-चौपाई।

मिथ्यासर्प रज्जुमें जैसे। भाष्यो भव आतममें तैसे।
कैसे सर्प रज्जुमें भासै। यह संशय मनबुद्धि विनाशै॥४८॥

जैसे रज्जुमें सर्प मिथ्याहै तैसे आत्मामें भव दुःख मिथ्या कहा, तहां दृष्टांतके ज्ञानविना दार्ष्टान्तका ज्ञान होवे नहीं याते रज्जुमें सर्प कैसे भासे? यह दृष्टांतमें प्रश्न है॥ ४८॥

प्रश्नअभिप्राय।

चौपाई-असत ख्याति पुनि आतमख्याती।
ख्याति अन्यथा अरु अख्याती॥
सुने चारि मत भ्रमकी ठौरा।
मानो कवन कहौ यह व्योरा॥ ४९॥

जहां रज्जुमें सर्प और सीपीमें रूपा इत्यादिक भ्रम हैं, तहां चार मत सुने हैं:—शून्यवादी असत्य ख्याति कहे हैं. क्षणिक विज्ञानवादी आत्मख्याति कहे हैं. न्याय और वैशेषिक मतमें अन्यथाख्याति कहे हैं, सांख्य और प्रभाकर अख्याति कहे हैं। तहां—

शून्यवादीका यह अभिप्राय है:—जेवरी देशमें सर्प अत्यन्त असत् है. तैसे अन्यदेशमें भी अत्यन्त असत् हैं. ऐसे अत्यंत असत् सर्पकी जेवरी देशमें प्रतीति होवे है, याकूं असत्यख्याति कहे हैं. अत्यन्त असत्य सर्पकी ख्याति कहिये भान और कथन है.

विज्ञानवादीका यह अभिप्राय है:—जेवरी देशमें तथा अन्यदेशमें बुद्धिके बाहिर कहूँ सर्प है नहीं सारे पदार्थ बुद्धिसे भिन्न नहीं, किंतु सर्व पदार्थोंके आकारकूं बुद्धिही धारे है. सो बुद्धि क्षणिक विज्ञानरूप है, क्षण-क्षणमें नाश और उत्पत्तिकूं प्राप्त होवे जो विज्ञान सोई सर्परूप प्रतीत होवे है. याकूं आत्मख्याति कहे हैं. आत्मा कहिये क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धि ताका सर्परूपसे ख्याति कहिये भान और कथन है.

नैयायिकका और वैशेषिकका यह अभिप्राय है:—बंबी आदिक स्थानमें साँचा सर्प है, ताकूं नेत्रसे देखे है. और नेत्रमें दोष है ताके बलते सन्मुख समीप प्रतीति होवे है, यद्यपि साँचा सर्प और नेत्रके मध्य भीति आदिक

अंतराय हैं, तथापि दोषसहित नेत्रते अंतरायसहित भी सर्प दीखे है. और यामें कोऊ ऐसी शंका करै—दोषते सामर्थ्य घटे है,बढै नहीं. जैसे जठराग्निमें पाचनसामर्थ्य वात पित्त कफदोषते घटे है. तैसे नेत्रमें भी तिमिरादि दोषते सामर्थ्य घटनी चाहिये,और बंबी आदिक स्थानमें स्थित सर्पका दोषसहित नेत्रसे ज्ञान कहा, तहां शुद्धनेत्रसे तो परदेशमें स्थितका प्रत्यक्ष ज्ञान होवे नहीं और दोषसहितसे होवे है.याते दोषते नेत्रका सामर्थ्य अधिक होवे है यह माननेमें कोई दृष्टांत नहीं सो शंका बनै नहीं. काहेते किसीको पित्तदोषते ऐसा रोग होवे है,जो चतुर्गुण भोजन कियेते भी तृप्ति होवे नहीं जैसे पित्तदोषतैं जठराग्निमें पाचन सामर्थ्य बधे है, तैसे नेत्रमें भी तिमिरादि दोषते परदेशमें स्थित सर्पके प्रत्यक्ष करनेका सामर्थ्य बधे है,इस रीतिसे बंबी आदिक देशमें स्थित सर्पका अन्यथा कहिये और प्रकारते सन्मुख जेवरी देशमें जो ख्याति कहिये भान और कथन सो अन्यथाख्याति कहिये है. और चिंतामणिकार (नैयायिक) का यह मत है:—जो दोषसहित नेत्रते बंबीमें स्थित सर्पका ज्ञान होवे तौ बीचके और पदार्थनका ज्ञान भी होना चाहिये याते परदेशमें स्थित वस्तुका नेत्रसे ज्ञान होवे नहीं, किंतु दोषसहित नेत्रते जेवरीका निजरूपते भान होवे नहीं, सर्परूपते भान होवे है. याते जेवरीकाही

अन्यथा कहिये और प्रकारते सर्परूपते जो ख्याति कहिये भान और कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है.

और अख्यातिवादीका यह अभिप्राय है:— जो असत्की प्रतीति होवे तौ वंध्यापुत्र, और शशशृंगकी प्रतीति होनी चाहिये. याते असत्ख्याति असंगत है, क्षणिकविज्ञानका ही आकार सर्पादिक होवे तो क्षणमात्रसे अधिककाल स्थिर प्रतीति नहीं होनी चाहिये. याते आत्मख्याति असंगत है और अन्यथाख्यातिकी प्रथम रीति तौ चिंतामणिके मतसे दूषितही है, तैसे चिंतामणिकी रीतिसे भी अन्यथाख्याति मत असंगत है. काहेते ज्ञेयके अनुसार ज्ञान होवे है. ज्ञेय रज्जु और सर्पका ज्ञान, यह कहना अत्यंतविरुद्ध है. याते यह रीति माननी योग्य है।

जहां रज्जुमें सर्पभ्रम है, तहां रज्जुसे नेत्रका अपनी वृत्तिद्वारा संबंध होयके रज्जुका इदं रूपते सामान्यज्ञान होवेहै और सर्पकी स्मृति होवे है. "यह सर्प है" यामें दो ज्ञान हैं- "यह" अंश तो रज्जुका सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है, और "सर्प है" ऐसे सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है. इस रीतिसे यह "सर्प है" यहां दो ज्ञान हैं. परंतु भयदोष प्रमातामें और तिमिर दोष प्रमाणमें ताके बलते पुरुषकूं ऐसा विवेक नहीं होता जो मेरेकूं दो ज्ञान हुए हैं. यद्यपि "यह" अंश रज्जुका सामान्य ज्ञान यथार्थ है और पूर्व देखे सर्पका स्मृतिज्ञानभी यथार्थही है. तौ भी

मेरेकूं दो ज्ञान हुए हैं तिनमें रज्जुका सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है और सर्पका स्मृतिज्ञान है;यह विवेक नहीं होवे है.तिस दो ज्ञानके अविवेककूंही सांख्य प्रभाकर मतमें भ्रम कहे हैं. यही रीति सारे भ्रमस्थलमें जाननी. या रीतिसे रज्जु आदिकनमें सर्पादिकभ्रम जहां होवे तहां चार मत सुने हैं तिनमें जो नीका मत होय सो कहो, ताहीकूं मैं मानो.यह शिष्यका प्रश्न है॥४९॥

श्रीगुरुरुवाच--दोहा।

ख्याति अनिर्वचनीय लखि, पंचम तिनतैं और।
युक्तिहीन मत चारि ये, मानहु भ्रमकी ठौर॥५०॥

हे शिष्य! तिन चार ख्यातिनते औरही ठौर भ्रमकी अनिर्वचनीयख्याति पंचम लख. और असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति, अख्याति ये चार मत युक्तिहीन हैं. जैसे उत्तर उत्तर मतनिरूपणमें तीन मत असंगत कहे तैसे अख्यातिमत भी असंगत है,काहेतैं "यह सर्प है" या ज्ञानमें प्रथम "यह" अंश तौ रज्जुका सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष है, और "सर्प है" इतना अंश पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरण ज्ञान है. यह अख्यातिवादीका मत है, तहां पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरणही मानैं और सन्मुख रज्जुदेशमें सर्पका ज्ञान नहीं मानैं तौ सन्मुख रज्जुते पुरुषकूं भय होयके उलटा भागे है सो भय और भागना नहीं होना चाहिये,याते सन्मुख रज्जुदेशमैंभी

सर्पकी प्रतीति होवे है,पूर्वदृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं,किंवाः रज्जुका विशेष रूपते यथार्थज्ञान हुयेते अनंतर ऐसा बोध होवे है:—"मेरेकूं रज्जुमेंही सर्पकी प्रतीति मिथ्या होती भई." या बोधते रज्जुमेंही सर्पकी प्रतीति होवे है, पूर्व दृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं और "यह सर्प है" इहां ज्ञान एकही प्रतीत होवे है दो नहीं और एककालमें अन्तःकरणते स्मृतिरूप और प्रत्यक्षरूप दो ज्ञान होवे भी नहीं.याते अख्यातिमत भी अत्यन्त असंगत है.इन चारोंमतनका प्रतिपादन और खण्डन,विवरण और स्वाराज्यसिद्धि आदिक ग्रन्थनमें विस्तारसे लिखा है, प्रतिपादन और खंडनकी युक्ति कठिन है, याते संक्षेपते जिज्ञासुकूं रीति जनाई है; विस्तारसे हमने लिखा नहीं.

सिद्धांतमें अनिर्वचनीयख्याति है, ताकी यह रीति है:—अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रादिद्वारा निकसिके विषयके समान आकारकूं प्राप्त होवे है. ताते विषयका आवरण भंग होयके ताकी प्रतीति होवे है. तहां प्रकाश भी सहायक होवे है प्रकाशविना पदार्थकी प्रतीति होवे नहीं, जहां रज्जुमें सर्पभ्रम होवे है, तहां अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसी भी और रज्जुसे ताका सम्बंधभी होवे परंतु तिमिरादिकदोष प्रतिबंधक हैं, याते रज्जुके समानाकार वृत्तिका स्वरूप होवे नहीं याते रज्जुका आवरण नाशै नहीं, इस रीतिसे आवरण भंगका निमित्त वृत्तिका

सम्बंध हुएते भी जब रज्जुका आवरण भंग होवे नहीं तब रज्जुचेतनमें स्थित अविद्यामें क्षोभ होयके सो अविद्या सर्पाकार परिणामकूं प्राप्त होवे हैं सो अविद्याका कार्य सर्प सत् होवे तो रज्जुके ज्ञानसे ताका बाध होवे नहीं. और बाध होवे है,याते सत नहीं असत होवे तो वन्ध्यापुत्रकी न्याई प्रतीत नहीं होवे और प्रतीत होवेहै याते असत् भी नहीं किन्तु सत् असत्से विलक्षणअनिर्वचनीय है. शुक्ति आदिकनमें रूपादिक भी यही रीतिसे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवे है. ता अनिर्वचनीयकी जो ख्याति कहिये प्रतीति और कथन, सो अनिर्वचनीय ख्याति कहिये है.

भ्रमस्थलमें अंतःकरणसे भिन्न अविद्याका परिणाम सर्पादिक विषय और तिनका ज्ञान एकही समय होवे हैं और लीन होवे हैं, सो साक्षी भास्य है.

जैसे सर्प अविद्याका परिणाम है, तैसे ताका ज्ञानरूपवृत्ति भी अविद्याकाही परिणाम है अंतःकरणका नहीं. काहते, जैसे रज्जुज्ञानते सर्पका बाध होवे है तैसे ताके ज्ञानका भी बाध होवे है, अंतःकरणका ज्ञान होवे तो बाध नहीं होना चाहिये यातें ज्ञानभी सर्पकी न्याईं अविद्याका कार्य सत असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय है परंतु रज्जु उपहित चेतनमें स्थित तमोगुणप्रधानअविद्या अंशका परिणाम सर्प है और साक्षीचेतनमें स्थित

अविद्याके सत्त्वगुणका परिणाम वृत्तिज्ञान है. रज्जुचेतनकी अविद्याका जा समय सर्पाकार परिणाम होवे है, ताही समय साक्षी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकारपरिणाम होवे है. काहेते ? रज्जुचेतन आश्रित अविद्यामें क्षोभका जो निमित्त है ता निमित्तसे ही साक्षीआश्रित अविद्या अंशमें क्षोभ होवे है, याते भ्रमस्थलमें सर्पादिक विषय और तिनका ज्ञान एकही समय उत्पन्न होवे है और रज्जुआदिक अधिष्ठानके ज्ञानते एकही समय लीन होवे है या रीतिसे सर्पादिक भ्रमविषे बाह्य अविद्या अंश सर्पादिक विषयका उपादानकारण है और साक्षी चेतन आश्रित अंतर अविद्या अंश तिनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादानकारण है.

स्वप्न तौ साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोगुण अंश विषयरूप परिणामकूं प्राप्त होवे है, ता अविद्यामें सत्त्वगुण अंश ज्ञानरूप परिणामकूं प्राप्त होवे है याते स्वप्नमें अंतर अविद्याही विषय और ज्ञान दोनोंका उपादान कारण है,याहीते बाह्य रज्जु सर्पादिक और अंतर स्वप्न पदार्थ, साक्षी भास्य कहिये है. अविद्याकी वृत्तिद्वारा जाकूं साक्षीभासै कहिये प्रकाशै सो साक्षीभास्य कहिये है. रज्जु आदिकनमें अनिर्वचनीय सर्पादिक और तिनका ज्ञान भ्रम कहिये है और अध्यास कहिये है सो भ्रम अविद्याका परिणाम है और चेतनका

विवर्त्त है उपादानकारणके समान स्वभाववाला अन्यथास्वरूप परिणाम कहिये है. और अधिष्ठानते विपरीत स्वभाववाला अन्यथास्वरूप विवर्त्त कहिये है. उपादानकारण अविद्या, सो अनिर्वचनीय है तैसे रज्जुमें सर्प और ताका ज्ञान भी अनिर्वचनीय है याते रज्जुसर्प और ताका ज्ञान अविद्याके समान स्वभाववाला अन्यथा स्वरूपकहिये अविद्याते और प्रकारका आकार है. सो अविद्याका परिणाम है तैसे रज्जु अवच्छिन्न अधिष्ठान चेतन सत्‌रूप है, सर्प और ताका ज्ञान सत्‌से विलक्षण है. याते रज्जुसर्प और ताका ज्ञान अधिष्ठानचेतनते विपरीतस्वभाववाला, अन्यथा स्वरूप कहिये चेतनसे और प्रकारका आकार है.

मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जु उपहित चेतन है, रज्जु नहीं, काहेते ? सर्पकी न्याई रज्जु भी कल्पित है. कल्पितवस्तु अन्यकल्पितका अधिष्ठान बनै नहीं, याते रज्जु उपहित चेतनही अधिष्ठान है, रज्जु नहीं और रज्जुविशिष्टकूं अधिष्ठान कहैं तो भी रज्जु और चेतन दोनों अधिष्ठान होवेंगे तहां रज्जु भागमें अधिष्ठानपना बाधित है याते रज्जुउपहित चेतनही अधिष्ठान है रज्जुविशिष्ट चेतन नहीं तैसे सर्पके ज्ञानका साक्षीचेतन अधिष्ठान है, या रीतिसे भ्रमस्थानमें विषयका और ताके ज्ञानका उपाधिभेदसे अधिष्ठान भिन्न है एक नहीं और विशेष-

रूपते रज्जुकी अप्रतीति अविद्यामें क्षोभद्वारा दोनोंकी उत्पत्तिमें निमित्त है तैसे रज्जुका ज्ञान दोनोंकी निवृत्तिमें भी निमित्त कही है.

याके विषे ऐसी शंका होवे है-रज्जुके ज्ञानतें सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं. काहेतैं ? मिथ्यावस्तुका जो अधिष्ठान होवे ता अधिष्ठानके ज्ञानते मिथ्याकी निवृत्ति होवे है, यह अद्वैतवादका सिद्धांत है और मिथ्यासर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहित चेतन है; रज्जु नहीं, याते रज्जुके ज्ञानते सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं.

या शंकाका यह समाधान है:-रज्जु आदिके जडपदार्थका ज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप होवे तहां आवरणभंगवृत्तिका प्रयोजन है, सो आवरण अज्ञानकी शक्ति है, याते आवरणजड़के आश्रित है नहीं, किंतु जड़का अधिष्ठान जो चेतन ताके आश्रित है, याते रज्जु समानाकार अंतःकरणकी वृत्तिते रज्जु अवच्छिन्न चेतनकाही आवरण भंग होवे है, वृत्तिमें जो चिदाभास है ताते रज्जुका प्रकाश होवे है. चेतन स्वयंप्रकाश है, तामें आभासका उपयोग नहीं यह प्रक्रिया संपूर्ण आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसे चिदाभास सहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानमें जो वृत्तिभाग ताका आवरणभंगरूप फल चेतनमें होवे है और चिदाभास भागका प्रकाशरूप फल रज्जुमें होवे है याते वृत्तिज्ञानका केवल जड़रज्जु विषय नहीं किन्तु

अधिष्ठान चेतनसहित रज्जु साभासवृत्तिका विषय है, इसी कारणते सिद्धांतग्रंथमें यह लिखा है—"अंतःकरण-जन्य वृत्तिज्ञान सारे ब्रह्मकूं विषय करै है," या प्रकारसे रज्जु ज्ञानसे निरावरण होयके सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवच्छिन्न चेतनका भी निजप्रकाशते भान होवे है. याते रज्जुका ज्ञानही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है. ताते सर्पकी निवृत्ति संभव है.

अन्य शंका—यद्यपि या रीतिसे सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानते संभव है तथापि सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति संभव नहीं. काहेते? सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवच्छिन्न चेतन है. और सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी चेतन है पूर्वउक्त प्रकारते रज्जु ज्ञानसे रज्जु अवच्छिन्न चेतनकाही भान होवे है, साक्षी चेतनका नहीं याते रज्जुका ज्ञान हुएते भी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन अज्ञात है और अज्ञात अधिष्ठानमें कल्पितकी निवृत्ति होवे नहीं, किंतु ज्ञात अधिष्ठानमें ही कल्पितकी निवृत्ति होवे है याते रज्जुज्ञानते सर्पज्ञानकी निवृत्ति बने नहीं.

ताका समाधान यह है:—विषयके अधीन ज्ञान होवे है, विषय जो सर्प ताकी निवृत्ति होतेही सर्पके ज्ञानकी विषयके अभावते आपही निवृत्ति होवे है.

जो ऐसे कहै:—कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञान विना होवे नहीं और सर्पका ज्ञान भी कल्पित है ताका

अधिष्ठान साक्षीचेतन है; ताके ज्ञान विना कल्पित सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं.

ताका समाधान यह है:-निवृत्ति दो प्रकारकी होवे है,एक तौ अत्यन्तनिवृत्ति होवे है और दूसरी कारणमें जो लय,सो भी निवृत्ति कहिये है. कारणसहित कार्यकी निवृत्ति अत्यंतनिवृत्ति कहिये है, सारे कल्पित वस्तुका कारण अधिष्ठानके आश्रित अज्ञान है. ता अज्ञानसहित कल्पितकार्यकी निवृत्ति तौ अधिष्ठान ज्ञानतेही होवे है. परंतु कारणमें लयरूप जो निवृत्ति सो अधिष्ठान ज्ञान विना भी होवे है. जैसे सुषुप्ति और प्रलयमें सर्वपदार्थनका अज्ञानमें लय अधिष्ठान ज्ञानसे विना होवे है, तहां सर्वपदार्थनके लयमें निमित्त, भोगके सन्मुख कर्मका अभाव है. तैसे अधिष्ठान साक्षीके ज्ञान विनाही सर्पज्ञानका लय होवे है,तहां सर्पज्ञानका विषय जो सर्प ताका अभाव सर्पज्ञानके लयमें निमित्त है. या प्रकारसे सर्पकी निवृत्ति रज्जु ज्ञानते ही होवे है.और सर्पज्ञानका विषय जो सर्प ताके अभावते सर्पज्ञानका लय होवे है.

अथवा सर्प और ताका ज्ञान दोनोंकी निवृत्ति रज्जु ज्ञानतेही होवे है काहेतें? जब रज्जुका प्रत्यक्षज्ञान होवे तब अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसिके रज्जुदेशमें प्राप्त होवे. और रज्जुके समान वृत्तिका आकार होवे है. यातें रज्जुके प्रत्यक्ष समय वृत्ति उपहितचेतन और

रज्जुउपहित चेतन दोनों एक होवे हैं. तिनका भेद रहै नहीं यामें यह हेतु है. चेतनका स्वरूपसे तौ भेद कहूँ भी नहीं किंतु उपाधिके भेदसे चेतनका भेद होवे है वृत्तिउपहित चेतन और रज्जुउपहित चेतनका भेदक उपाधि, वृत्ति और रज्जु हैं, सो वृत्ति और रज्जु भिन्न भिन्न देशमें स्थित होवे जब तौ उपाधिवाले चेतनका भेद होवे है और दोनों उपाधि एक देशमें स्थितहोवे तब उपहितचेतनका भेद बनै नहीं. यह वार्ता वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें लिखी है. भिन्नदेशमें स्थित उपाधितेही उपहितचेतनका भेद होवे. एकदेशमें जब दोनों उपाधि स्थित भी होवें तब दोऊ उपाधिसे उपहित भी चेतन एकही होवे है. या प्रकारते रज्जुके प्रत्यक्षज्ञान समय रज्जुउपहितचेतन और वृत्तिउपहितचेतन एक है. तहां साक्षी चेतनही वृत्तिउपहित चेतन है. काहेतें? अंतःकरण और ताकी वृत्तिमें स्थित जो तिनका प्रकाशक चेतन मात्र सो साक्षी कहिये है. इस रीतिसे रज्जुज्ञान समय साक्षीचेतन और रज्जुउपहित चेतनका अभेद होवे है. और रज्जुउपहितचेतनका रज्जुज्ञानसे भान होवे है और रज्जुउपहितचेतनसे अभिन्न साक्षीका भी रज्जुज्ञानसे भान होवे है. या प्रकारते रज्जुज्ञान समय अधिष्ठान साक्षीका भान होनेतें कल्पित सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभव है.

किंवाः—कूटस्थदीपमें विद्यारण्यस्वामीने यह प्रक्रिया कहीहैः—"आभाससहित अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रियद्वारा निकसिके घटादिक विषयकूं प्रकाशै है. घटादिक विषय और तैसे आभाससहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान, तथा आभाससहित अंतःकरणरूप ज्ञाता इन तीनोंको साक्षी प्रकाश है" "यह घट है" इस रीतिसे आभाससहित वृत्तिसे घटमात्रका प्रकाश होवे है. "मैं घटकूं जानूं हूं" या रीतिसे "मैं"शब्दका अर्थ ज्ञाता और ज्ञेय घट और ताका ज्ञान या त्रिपुटीका साक्षीसे प्रकाश होवेहै, याप्रकारते सर्वत्रिपुटियोंका प्रकाशक साक्षी है. साक्षी आप अज्ञात होवे तो त्रिपुटीका ज्ञान साक्षीसे बनै नहीं याते सर्वत्रिपुटियोंके ज्ञानमें साक्षीका ज्ञान अवश्य होवे है ता साक्षीज्ञानते सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभव है या पूर्व रीतिसे सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान भिन्नभिन्न कहा. तामें इतने शंका समाधान हैं, या पक्षमें शंका समाधानरूप विवाद और भी बहुत हैं. याते सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान एकही है. यह पक्ष कहे हैंः— तहां बाह्य जो रज्जुचेतनहै,ताकूं सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान कहैं तो बनै नहीं. काहेते? जितने ज्ञान होवे हैं सो प्रमाता अथवा साक्षीके आश्रित होवे हैं बाह्य जो रज्जुचेतन, ताके आश्रित ज्ञान बनै नहीं.तैसे सर्प और सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान अन्तःकरण उपहित साक्षीचे-

तनकूं मानैं तो शरीरके अन्तर अन्तःकरणदेशमें सर्पकी प्रतीति चाहिये, रज्जुदेशमें सर्पकी प्रतीति नहीं चाहिये अन्तर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति मायाके बलते मानैं तौ आत्मख्यातिमतकी सिद्धि होवेगी. इसरीतिसे रज्जु-उपहित चेतन ज्ञानका अधिष्ठान बनै नहीं. और अन्तःकरणउपहित चेतन सर्पका अधिष्ठान बनै नहीं यातैं सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक नहीं बनै तथापि रज्जुके समीप प्राप्त जो अन्तःकरणकी इदमाकारवृत्ति, तामें स्थित चेतनके आश्रित अविद्या, सर्पाकार और ज्ञानाकार परिणामकूं प्राप्त होवे है. वृत्तिउपहित चेतनमें स्थित अविद्याका तमोगुण अंश सर्पका उपादानकारण है. ताहीमें स्थित सत्त्वगुणअंश सर्पके ज्ञानका उपादान कारण है सर्प और ताके ज्ञानका वृत्तिउपहित चेतन अधिष्ठानहै. वृत्ति रज्जुदेशमें बाहिर गई याते वृत्तिउपहित चेतन भी बाहिर है याते सर्पका आश्रय बनै है. जितना अन्तःकरणका स्वरूप होवे उतनाही साक्षीका स्वरूप होवे है. शरीरके अन्तर स्थित जो अन्तःकरण सोई वृत्तिस्वरूप परिणामकूं प्राप्त होवे है. याते वृत्तिउपहित चेतन साक्षी है. याते ज्ञानका आश्रय बनै है, रज्जुका जब साक्षात्कार होवे तब रज्जुचेतन और वृत्तिचेतन दोनों एक होवे हैं. याते रज्जुके ज्ञानसे सर्प और ताके ज्ञानकी निवृत्ति भी बनै है.

जहां एक रज्जुमें दशपुरुषनकूं किसीकूं सर्प, किसीकूं दंड, किसीकूं माला, किसीकूं पृथिवीकी दरार, किसीकूं जलधारा इस रीतिसे भिन्न २ प्रतीति होवे अथवा सर्वकूं सर्पही प्रतीत होवे, तहां जा पुरुषकूं रज्जुका साक्षात्कार होवे है ताकी वृत्ति चेतनमें कल्पित अध्यासकी निवृत्ति होवे है. जाकूं रज्जुज्ञान नहीं होवे ताके अध्यासकी निवृत्ति होवे नहीं. याते वृत्तिचेतनही कल्पितका अधिष्ठान है. रज्जुआदिकविषय उपहितचेतन नहीं. जो रज्जुउपहित चेतनकूं सर्पदंडादिकनका अधिष्ठान माने तौ दश पुरुषनकूं प्रतीत जो होवे दश पदार्थ सो एक एककूं सारे प्रतीत होने चाहिये और हमारी रीतिसे तौ जाकी वृत्तिचेतनमें जो पदार्थ कल्पित है सो ताहीकूं प्रतीत होवे, अन्यकूं नहीं. इस रीतिसे बाह्य सर्पादिक और तिनके ज्ञानका वृत्तिउपहित साक्षी अधिष्ठान है. स्वप्नके पदार्थ और तिनके ज्ञानका भी अंतःकरण उपहित साक्षीही अधिष्ठान है, याप्रकारते सत् असत्से विलक्षण जो अनिर्वचनीय अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय सर्पादिक तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति और कथन सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है ॥ ९० ॥

शिष्य उवाच--दोहा।

यह मिथ्या परतीत है, जामें जगत अपार।
सो भगवन् मोकूं कहो, को याको आधार ॥ ९१ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ९१ ॥

श्रीगुरुरुवाच--दोहा।

तव निजरूप अज्ञानतैं, है मिथ्या जग भान।
अधिष्ठान आधार तू, रज्जुभुजंग समान॥ ९२॥

हे शिष्य! तेरा जो निजरूप कहिये ब्रह्मरूप करके अज्ञान तिससे मिथ्या जगत् प्रतीत होवे है याते जगत्का आधार और अधिष्ठान तू है. जैसे रज्जुके अज्ञानते मिथ्या भुजंग प्रतीत होवे है, तहां मिथ्याभुजंगका आधार और अधिष्ठान रज्जु है, यद्यपि मिथ्यासर्पका अधिष्ठान मुख्य द्वितीयपक्षमें वृत्तिउपहित चेतन है और प्रथम पक्षमें रज्जुउपहित चेतन है, किसी पक्षमें रज्जुअधिष्ठान नहीं तथापि प्रथमपक्षमें चेतनमें अधिष्ठानपनेकी उपाधि रज्जु है,याते स्थूलदृष्टिसे रज्जु अधिष्ठान कहिये है, जैसे मिथ्याभुजंगका अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है, तैसे मिथ्या जगत्का अधिष्ठान और आधार तू है.

या स्थानमें यह रहस्य है:--जैसे जेवरीके दो स्वरूप हैं एक तो सामान्यरूप है, दूसरा एक विशेषरूप है- १--सामान्य रूप "इदं" है. २--विशेषरूप "रज्जु" है. १--"यह सर्प है" या रीतिसे मिथ्या सर्पसे अभिन्न होयके भ्रांतिकालमें भी प्रतीत होवे जो "इदंरूप" सो सामान्य रूप है और जो स्वरूपकी भ्रांतिकालमें प्रतीति न होवे किंतु जाकी प्रतीति हुयेते भ्रांति दूर होवे, सो रज्जुका विशेषरूप है, तैसे आत्माके भी दो स्वरूप हैं,

एक सामान्यरूप दूसरा विशेषरूप १-सद्रूप सामान्यरूप है२-असंगता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक विशेषरूप है. काहेते? "स्थूलसूक्ष्मसंघात है," यामें स्थूल सूक्ष्मसंघातकी भ्रांतिसमय भी मिथ्यासंघातसे अभिन्न होयके सद्रूप प्रतीत होवे है. याते आत्माका तत्स्वरूप सामान्यरूप हैऔर स्थूलसूक्ष्मसंघातकी भ्रांतिसमय आत्माका असंग कूटस्थ नित्यमुक्तस्वरूप प्रतीत होवे नहीं. किंतु असंगादि स्वरूप आत्माकी प्रतीति हुयेते संघातभ्रांति दूर होवे है, याते असंगता, कूटस्थता, नित्यमुक्तता, व्यापकतादिक विशेषरूप है, "१-सर्व भ्रांतिमें सामान्यरूप आधार कहिये है, और २-विशेषरूप अधिष्ठान कहिये है, जैसे १-सर्पका आश्रय जो जेवरी ताका सामान्य "इदं" स्वरूप सर्पका आधार है और विशेष रज्जुस्वरूप अधिष्ठान है,१-तैसे मिथ्याप्रपंचका आश्रय जो आत्मा ताका सामान्य सद्रूप प्रपंचका आधार है और २-असंगतादिके विशेषरूप अधिष्ठान है.इस रीतिसे आधार और अधिष्ठानका सर्वज्ञात्म नाम मुनिने किंचित् भेद प्रतिपादन किया है,

शिष्य उवाच-दोहा।

भगवन् मिथ्या जगत्को, द्रष्टा कहिये कौन।
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होय न तौन ॥९३॥

अर्थ स्पष्ट ॥ भाव यह है:-जगत्का आधार औ

अधिष्ठान आत्मा है, याते जगत्‌का द्रष्टा आत्मासे भिन्न कहना चाहिये, जैसे सर्पका आधार और अधिष्ठान जो रज्जु तासे भिन्न पुरुष सर्पका द्रष्टा है॥ ९३॥

श्रीगुरुरुवाच—चौपाई।

मिथ्यावस्तु जगत्‌में जे हैं। अधिष्ठानमें कल्पित ते हैं।
अधिष्ठान सो द्विविधपिछानहु।इकचेतनदूजोजडजानहु॥
अधिष्ठान जडवस्तु जहां है। द्रष्टा ताते भिन्न तहां है॥
जहां होय चेतन आधारा। तहां न द्रष्टा होवे न्यारा९९

अर्थ स्पष्ट। भाव यह है:—१—जहां जड अधिष्ठान होवे तहां अधिष्ठानसे भिन्न ही द्रष्टा होवे है, २—जहां चेतन अधिष्ठान होवे तहां अधिष्ठान ही द्रष्टा होवे है, भिन्न नहीं॥ ९९॥

दोहा।

चेतनमिथ्यास्वप्नको, अधिष्ठान निर्धार।
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं, तैसे जगत विचार॥ ९६॥

जैसे स्वप्नका अधिष्ठान साक्षीचेतन है सोई स्वप्नका द्रष्टा है, तैसे जगत्‌का आत्माही अधिष्ठान है सोई द्रष्टा है, यह शंका और समाधान स्थूलदृष्टिसे जेवरीकूं सर्पका अधिष्ठान मानिके कहे हैं, और सिद्धांतमतमें तो सर्पका अधिष्ठान साक्षी चेतन है सोई द्रष्टा है, याते सारे कल्पितका अधिष्ठानही द्रष्टा है,शंकासमाधान बनै नहीं॥ ९६॥

दोहा।

इम मिथ्या संसारदुख, है तोमैं भ्रम भान।
ताकी कहा निवृत्ति तू, चाहै शिष्यसुजान॥८७॥

हे शिष्य! इस रीतिसे तेरेविषे संसाररूपी दुःख मिथ्याही भ्रांतिसे प्रतीत होवैहै ता मिथ्याकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं.दृष्टांतः—जैसे बाजीगरने किसी पुरुषकूं मिथ्या शत्रुमन्त्रके बलसे दिखाया होवे ताके मारनेविषे यह पुरुष उद्योग नहीं करता तैसे मिथ्या संसारकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं॥८७॥

शिष्य उवाच-चौपाई।

जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा।तथापि मैं चाहूं तिहिछेवा॥
स्वप्न भयानक जाकूं भासै। करिसाधनजनजिमितिहिनासै
यातें है जाते जग हाना। सो उपाय भाषो भगवाना॥
तुमसमान सतगुरु नहिं आना। श्रवणफूंकदे बंचकनाना॥

हे भगवन्!आपने कहा जो-"जगत तेरेविषे मिथ्यारूप करके है और सत्यरूप करके नहीं"सो यद्यपि सत्य है तथापि हे भगवन्! सो मिथ्यारूप करके वा जा उपाय करके मरणादिक संसार मेरे विषे भान न होवे सो उपाय आप कहो और आपने कहा था जो-"मिथ्याकी निवृत्तिवास्ते साधन चाहिये नहीं"सो वार्ताभी सत्य है परंतु हे भगवन्!जाकूं मिथ्यापदार्थ भी दुःखका हेतु होवे ताकूं वह मिथ्या भी साधनसे दूर करना

योग्य है जैसे किसी पुरुषकूं प्रतिदिन भयानक स्वप्न आते हों. सो मिथ्या भी हैं परंतु तिनके भी दूर करनेकूं जप और पादप्रक्षालनादिक नाना साधन अनुष्ठान करते हैं तैसे यह संसार मिथ्या भी है परंतु जन्मादिक दुःख का हेतु मेरेकूं प्रतीत होवे है.याते संसारकी निवृत्ति चाहू हूं. आप कृपा करके उपाय बतावो॥ ५८ ॥ ५९ ॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा।

सो मैं कह्यो बखानि, जो साधन तैं पूछियो।
निज हिय निश्चय आनि,रहै न रञ्चक खेदजग॥६०॥

हे शिष्य! जो तैं जगतरूपी दुःखकी निवृत्तिका साधन पूछ्या सो हम तेरेकूं प्रथमही कहदिया तिसविषे तूं दृढ निश्चय कर.ताते जगतरूपी खेद रहे नहीं॥६०॥

दोहा।

निज आतम अज्ञानते, है प्रतीत जग खेद।
नशै सु ताके बोधतैं, यह भाषत मुनि वेद॥ ६१॥
जग मोमें नहिं "ब्रह्ममें" "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
सो तोकूं शिष मैं कह्यो,नहिं उपाय को आन॥६२॥

हे शिष्य! अपने आत्मस्वरूपके अज्ञानते जगत्रूपी खेद प्रतीत होवे है,सो आत्मज्ञानते मिटता है जो वस्तु जाके अज्ञानते प्रतीत होवे, सो ताके ज्ञानते मिटे है यह नियम है. जैसे रज्जुके अज्ञानते सर्प प्रतीत होवे है,सो रज्जुके बोधते मिटे है,तैसे आत्मज्ञानते जगत्

मिटे है, सो आत्मज्ञान हम कहि दिया, जगत् तौ मेरे विषे तीनकालमें है नहीं. काहेतैं मिथ्या है, जो मिथ्या-वस्तु होवे है सो अधिष्ठानकी हानि नहीं करे है. जैसे मरीचिकाका जो जल है, सो पृथिवीकूं गीली नहीं करे है तैसे "जगत् प्रतीत भी होवे है" परंतु मिथ्या है. कुछ मेरी हानि करने विषे समर्थ है नहीं और मैं "सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मस्वरूप हूं" ऐसा जो निश्चय ताका नाम ज्ञान है सोई मोक्षका साधन है और कोई नहीं सो ज्ञान हमने प्रथम उपदेश करिदिया ॥ ६२ ॥

दोहा।

कर्म उपासनते नहीं, जगनिदान तम नाश।
अंधकार जिमि गेहमें, नशै न विन परकाश ॥६३॥

हे शिष्य! जगत्का निदान कहिये उपादान कारण तम कहिये अज्ञान है ता अज्ञानके नाशते जगत्का आपही नाश हो जावे है, काहेतैं? उपादानके नाश होते पीछे कारज रहे नहीं है, ताअज्ञानका नाश केवल ज्ञान करके है, कर्म और उपासना करके नाश होवे नहीं. काहेते अज्ञानका विरोधी ज्ञान है, कर्म उपासना विरोधी नहीं. दृष्टांतः—जैसे गृहके विषे जो अंधकार है सो काहू क्रियासूं दूरि होवे नहीं केवल प्रकाशसे दूर होवे है. तैसे अज्ञानरूपी जो अंधकार है, सो ज्ञानरूपी प्रकाशसे दूर होवे है और काहू साधनसे नहीं ॥ ६३ ॥

दोहा।

भाष्यो शिष उपदेश मैं,जगभंजक हिय धारि।
जो यामें संशय रह्यो, सो तूं पूछविचारि ॥ ६४ ॥

शिष्य उवाच—चौपाई।

भोभगवन्‌जोकछुतुमभाष्यो।सोसबसत्यजानिहियराख्यो
जगनिदान अज्ञान बखान्यो।ताकोभंजक ज्ञान पिछान्यो
ज्ञानरूप वर्णन पुनि कीना। जगमिथ्या सो मैं भलचीना
सुखस्वरूप आतमपरकाश्यो।दयातिहारीमोंमुहिभास्यो।
पुनि भाष्यो तूं ब्रह्मस्वरूपं। यह में लख्यो न भेद अनूपं
या मैं मुहि शंका इक आवै। जीवब्रह्मको भेद जनावै ६७

हे भगवन्! आपने जो कहा सो मैं आपके वचन सत्य जानूं हूँ. आपने कहा जो—"जगत्‌का कारण अज्ञान है ता अज्ञानके नाश करके जगत्‌की निवृत्ति ज्ञान करके होवे है सो वार्त्ता मैं जानी. सो ज्ञानका स्वरूप आपने कहाः—जगत मिथ्या है और जीव आनंदस्वरूप है. सो ब्रह्मसे भिन्न नहीं.किंतु ब्रह्मरूप है ऐसे निश्चयका नाम ज्ञान है.ताकेविषे जगत् मिथ्या है और जीव आनंदस्वरूप है." यह वार्त्ता मैं जानी. परंतु "जीव ब्रह्म दोनों एक हैं,"यह वार्त्ता नहीं जानी,काहेतैं जीव ब्रह्मके भेदकूं जाननेवाली शंका मेरे हृदयमें फुरती है ६४-६७

शंकाकी--चौपाई।

पुण्य पापका हूँ मैं कर्त्ता।जन्ममरण औ सुख दुख धर्त्ता॥

और अनेक भाँति जग भासै। चहूँ ज्ञानअज्ञान जु नासै॥
जो याते विपरीत स्वरूपा। ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा॥
कहो एकता कैसे जानूं। रूपविरुद्ध हिये पहिचानूं॥६९॥

हे भगवन्! मैं पुण्यपापका कर्त्ता हूं और तिनका जो फल जन्म मरण और सुख दुःख तिनकूं धारणकरूं हूँ और नानाप्रकारका जगत् मेरे विषे प्रतीत होवे है, और जगत्का कारण जो अज्ञान है ताके दूर करनेकूं मैं ज्ञान चाहूं हूँ और ब्रह्मविषे न पुण्य है, न पाप है, न जन्म है, न मरण है, न सुख है, न दुःख है और कोई क्लेश ब्रह्मविषे नहीं और ज्ञानकी इच्छा नहीं है. याते ब्रह्मका और मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है. याते दोनोंकी एकता बनै नहीं. यद्यपि मेरेविषे भी जन्मादिक संसार परमार्थ करके हैं नहीं तथापि मिथ्या जो जन्मादिक हैं सो मेरेकूं भ्रांतिसे प्रतीत होवे हैं और ब्रह्ममें नहीं, यातें इतना भेद है एकता बनै नहीं ॥६८॥६९॥

शंकाकी—चौपाई।

सुनहु गुरु दूजो पुनि संशै। जीवब्रह्म एकत्व प्रनंशै।
एक वृक्षमें सम द्वै पच्छी। फलभोगे इक दूजो स्वच्छी॥
भोगरहित परकाश असंगा। वेदवचन यहकहतप्रसंगा।
कर्म उपासन पुनि बहुभाखै। जीव ब्रह्म याते द्वयराखै॥

हे गुरो! मेरे एक और संशय है सो आप सुनो. कैसा वह संशय है:—जासूं जीवब्रह्मकी एकताका निश्चय

प्रनंशै कहिये दूर हो जावे, सो संशय मैं आपकूं कहूँ हूँ आप सुनिके तिस संशयकूं दूर करो. वेदविषे मैंने ऐसें देख्या हैः—एक बुद्धिरूपी वृक्षमें दो पक्षी हैं सो दोनों समान हैं, तिनविषे एक तौ कर्मके फलकूं भोगता है, एक स्वच्छ कहिये शुद्ध है, भोग रहित है, असंग है ता भोगनेवालेकूं प्रकाशै है. याके विषे एक भोगनेवाला जीव प्रतीत होवे है और दूसरा परमात्मा प्रतीत होवे है. याते उनकी एकता बनै नहीं.

वेदके विषे कर्म और उपासना बहुत प्रकारके कहे हैं.सो जीव ब्रह्मकी एकताविषे निष्फल होय जावैंगे काहेते, जो आप जीव ब्रह्मकी एकता कहो हो सो ब्रह्मविषे जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो अथवा जीवविषे ब्रह्मके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो ? जो कदाचित् ब्रह्मविषे जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहोगे तौ जीवकूं ब्रह्मरूप होनेते अधिकारीका अभाव होवेगा याते कर्म और उपासना निष्फल होवेंगे जो जीवविषे ब्रह्मके स्वरूपका अंतर भाव कहोगे तौ ब्रह्म, जीवरूप होनेते जाकी उपासना करिये है ता उपास्यका अभाव होवेगा. याते उपासना निष्फल होवेगी और कर्मका फल देनेवाला जो परमात्मा ताका अभाव होवेगा याते कर्म निष्फल होवेंगे और मीमांसक जो कहेहैं कर्मही ईश्वर है तिनसे ही फल होवे है सो वार्ता समीचीन नहीं.काहेते

जो कर्म हैं सो जड है तिनकूं फल देनेका सामर्थ्य बनै नहीं, याते कर्मका फल ईश्वरही देता है, या रीतिसे परमात्मा और जीवकी एकता बनै नहीं ॥७०॥७१॥

श्रीगुरुरुवाच– चौपाई।

सुनहु शिष्य इक कहूं विचारा। है जाते शंका निस्तारा॥
घटाकाशइकजलआकाशा। मेघाकाश महाआकाशा॥७२
च्यारि भेद ये नभके जानहु। पुनि चेतनके तथा पिछानहु
इक कूटस्थ जीव पुनिकहिये। ईश ब्रह्महिय जाने रहिये॥
जब इनको तू रूप पिछानै। निज शंका तबही सबभानै।
याते सुन इनको अब भेदा। नशै सुनत जन्मादिकखेदा॥

जो तेरेकूं शंका हुई है तिसका निस्तार कहिये निराकरण जातैं होवे सो विचार मैं कहूं हूं तू सुन, जैसे एक आकाशमें चार भेद हैं. १–घटाकाश है २–जलाकाश है ३–मेघाकाश है. ४–महाकाशहै. तैसे एक चेतनके चार भेद हैं. एक कूटस्थ है २–जीव है. ३ ईश्वर है. ४–ब्रह्म है. ये चारि भेद आकाशकी नाईं चेतन विषे हैं हे शिष्य! जब इनके स्वरूपकूं तू भलीप्रकारसे पिछानेगा तब अपनी शंकाका तू आपही समाधान जान लेवेगा यातैं मैं इनका स्वरूप वर्णन करूं हूं तू सुन, जाकूं सुनिकें संशयरहित ज्ञान होइके जन्मादिक दुःखका नाश होवेगा॥७२–७४॥

घटाकाशवर्णन--दोहा।

जलपूरित घटकूं जु दे, जितनो नभ अवकाश।
युक्तिनिपुण पंडित कहैं, ताकूं घट आकाश॥७५॥

हे शिष्य! जलते भरे घटकूं जितना आकाश अवकाश देवे है, तिनके आकाशकूं पंडितजन घटाकाश कहे हैं॥ ७५॥

जलाकाशवर्णन--दोहा।

जल पूरित घटमैं जु पुनि, है नभको आभास।
घटाकाशयुत विज्ञजन, भाषत जल आकाश॥७६॥

हे शिष्य! जलसे भऱ्या जो घट है ताकेविषे नक्षत्रादिसहित आकाशप्रतिबिंब होवे है सो आकाशका प्रतिबिंब और घटाकाश दोनों मिले हुए जलाकाश कहिये है. याके विषे कोई शंका करे है. आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवे है. किंतु केवल नक्षत्रादिकनका ही प्रतिबिंब होवे है,काहेते?आकाश स्वरूप करके रहितहै और रूपवाले पदार्थका प्रतिबिंब होवे है. याते आकाशका प्रतिबिंब बनै नहीं। ऐसी शंका करे है॥७६॥

ताका समाधान---दोहा।

जो जलमें आकाशको, नहिं प्रतिबिंब लखाय।
थोरेमैं गंभीरता, है प्रतीत किहि भाय॥७७॥
यातैं जलमैं व्योमको, लखि आभास सुजान।
रूपरहित जिमि शब्दतैं, है प्रतिध्वनिको भान॥७८॥

जो जलके विषे आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवे तौ थोडेपरिमाण जलविषे मनुष्यपरिमाण गंभीरताकी जो प्रतीत होवे है सो नहीं होनी चाहिये. याते आकाशका प्रतिबिंब अंगीकार करना योग्य है. और जो कहे है. "रूपरहित पदार्थका प्रतिबिंब नहीं होवे है" सो भी नियम नहीं है, काहेतें ? रूपरहित जो शब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवे है, सो शब्दका प्रतिबिंब है, यातें रूपरहित जो आकाश है ताका भी प्रतिबिंब बने है ॥७८॥

मेघाकाशवर्णन –दोहा।

जो मेघहि अवकाश दे, पुनि तामें आभास।
तिन दोनोंकूं कहत हैं, बुधजन मेघाकास ॥ ७९ ॥

मेघ जो बादल तिनकूं जो आकाश अवकाश देवे है और मेघके जलमें जो आकाशका प्रतिबिंब है तिन दोनोंकूं मेघाकाश कहे हैं ॥ ७९ ॥

याके विषे कोई शंका करे है जो मेघ तो आकाशविषे है तिनमें जल और आकाशका प्रतिबिंब दीखे विना कैसे जाने जावे हैं ?

ताका समाधान–दोहा।

वर्षत मेघ अनंत जल; उदकसहित इहि हेत।
दक नहि नभ आभास विन,इमि प्रतिबिंबसमेत॥८०॥

यद्यपि मेघविषे जल और आकाशका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अनुमानकरके जानेजावे है मेघ जो जलकी वृष्टि करे है याते ऐसा अनुमान होवे है जो मेघ

विषे जल है जो मेघविषे जल न होवे तौ जलकी वृष्टि मेघसे नहीं होवे और मेघविषे जल है सो आकाशके प्रतिबिंबसहित है; काहेतें ? जो जल होवे है सो आकाशके प्रतिबिंब विना नहीं होवे है याते मेघविषे जो जल है सो भी आकाशके प्रतिबिंबवाला है. इस रीतिसे मेघ-विषे जल और आकाशके प्रतिबिंबका अनुमान होवे है उदक और दक ये दोनों जलके नाम हैं ॥ ८० ॥

महाकाशवर्णन—दोहा ।

बाहिर भीतर एक रस, व्यापक जो नभरूप ।
महाकाश ताकूं कहैं, कोविद बुद्धि अनूप ॥ ८१ ॥

बाहिर और भीतर सारे एकरस व्यापक जो नभ कहिये आकाशका स्वरूप है ताकूं अनूप कहिये अद्भुत बुद्धिवाले पंडित महाकाश कहे हैं ॥ ८१ ॥

दोहा ।

चतुर्भांति नभके कहे. लक्षण श्रुति अनुसार ।
अब चेतनके शिष्य सुन, जासूं लहै विचार ॥८२॥

हे शिष्य ! चार प्रकारके आकाशके लक्षण कहे;अब चार भांतिके चेतनके लक्षण सुन, जाके सुनेते विचार कहिये विचारका फल ज्ञान प्राप्त होवे ॥ ८२ ॥

कूटस्थ वर्णन दोहा ।

मति वा व्यष्टि अज्ञानको, अधिष्ठान चैतन्य ।
घटाकाशसम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य ॥ ८३ ॥

बुद्धि अथवा व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान चेतन है सो कूटस्थ कहिये है, १—जा पक्षमें बुद्धिसहित चेतन जीव है ता पक्षमें बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ है, २—जा पक्षमें व्यष्टि अज्ञानसहित चेतन जीव कहिये है ता पक्षमें व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान है सो कूटस्थ कहिये है, या स्थानविषे यह सिद्धान्त है:—जीवपनेका जो विशेषण है ताके अधिष्ठानका नाम कूटस्थ कहिये है. सो कूटस्थ अजन्य है. उत्पत्तिसे रहित है याका अभिप्राय यह है:—ब्रह्मसे न्यारा जैसे चिदाभास उत्पन्न होवे है, तैसे यह उत्पन्न नहीं हुआ, किंतु ब्रह्मरूपही है जैसे घटाकाश महाकाशसे न्यारा नहीं होयगया, किंतु महाकाशरूप है. यह जो कूटस्थ है सोई आत्मपदका लक्ष्य अर्थ है और याहीकूं प्रत्यक् कहे हैं और याहीकूं निजरूप कहें हैं. ओर यही जीव साक्षी है ॥ ८३ ॥

जीववर्णन—दोहा।

काम कर्मयुत बुद्धिमैं, जो चेतन प्रतिबिंब ।
जीव कहै विद्वान तिहिं, जलनभतुल्य सबिंब ॥८४॥

नाना काम्य और कर्मसहित जो बुद्धि है तामें जो चेतनका प्रतिबिंब है, ताकूं विद्वान कहिये ज्ञानी जीव कहे हैं, सो केवल प्रतिबिंबमात्रकूं जीव नहीं कहे हैं, किंतु जैसे घटाकाशसहित आकाशके प्रतिबिंबकूं जलाकाश कहे हैं. तैसे सबिंब कहिये बिंब जो कूटस्थ, ता

सहित चिदाभासकूं जीव कहैं हैं, यातैं यह सिद्धांत हुआ बुद्धिमें जो चिदाभास और बुद्धिका अधिष्ठान चेतन दोनोंका नाम जीव है ॥ ८४ ॥

दोहा-अधिष्ठान कूटस्थसे, है आभास बहाल।
रक्तपुष्प ऊपर धऱ्यो, स्फटिक होइ जिमि लाल ८५॥

पूर्वदोहेविषे बिंब जो कूटस्थ तासहित आभासकूं जीव कह्या, याते यह प्रतीति होवे है:-जो बुद्धिमें प्रतिबिंब है सो कूटस्थका है और बाहिरके ब्रह्मचेतनका नहीं, काहेते? जाका प्रतिबिंब होवे सो बिंब कहिये है, सो कूटस्थकूं बिंब कह्या, याते ताका प्रतिबिंब है, यह प्रतीति होवे है. सो या दोहेसे प्रतिपादन करें हैं:-जैसे बड़े लाल पुष्पके ऊपर धऱ्या जो सफेद स्फटिक है ताके विषे फूलकी लालीकी दमक होवे है सो लालफूलका प्रतिबिंब है तैसा कूटस्थके आश्रित जो बुद्धि ताके विषे कूटस्थके प्रकाशकी दमक होवे है, जैसे स्फटिक अत्यंत उज्ज्वल है, तैसे बुद्धि भी अत्यंत शुद्ध है, काहेते? बुद्धि सत्त्वगुणका कार्य है, याते कूटस्थकी दमकका नाम प्रतिबिंब है.

२-अथवा ब्रह्म चेतनका प्रतिबिंब है, जैसे महाकाशका घटके जलमें प्रतिबिंब होवे है और भीतरके आकाशका नहीं, काहेतैं, जितनी गंभीरता जलविषे प्रतीत होवे है उतनी गंभीरता भीतरके आकाशमें है नहीं, सो

गंभीरता आकाशका प्रतिबिंब है याते बाहिरके आकाशका प्रतिबिंब है. १-यह जो कहैं हैं, "व्यापक चेतनका प्रतिबिंब बनै नहीं." सो आकाशके दृष्टांतसे शंका दूर होवे है. काहेते, जो आकाश भी व्यापक है, और ताका प्रतिबिंब होवे है तैसे व्यापक चेतनका भी प्रतिबिंब बनै है.

और जो कहैं हैं. "रूपवाले पदार्थका रूपवाले पदार्थमें प्रतिबिंब होवे है," सो भी नियम नहीं है, काहेते रूपरहित शब्दका रूपरहित आकाशमें प्रतिबिंब होवे है, यह पूर्व कहि आये. याते चेतनका प्रतिबिंब बनै है.

इस रीतिसे बुद्धिमें आभास और बुद्धिका अधिष्ठान चेतन, दोनोंका नाम जीव है यह कहा. १-सो जीव त्वंपदका वाच्य कहिये, है २ ताके विषे चिदाभासका त्याग करिके केवल जो कूटस्थ है सो त्वंपदका लक्ष्य कहिये है १-अहंशब्दका वाच्य भी जीव है. २ केवल कूटस्थ अहं शब्दका लक्ष्य है ॥ ८५ ॥

दोहा।

बुद्धिमाहिं आभास जो, पुण्य पाप फल भोग।
गमन आगमन सो करै, नहिं चेतनमैं जोग ॥८६॥
मिथ्या नभ घट संग ज्यों, लहै क्रिया बहु भाँति।
घटाकाश अक्रिय सदा, रहै एकरस शांति ॥८७॥

यद्यपि जीव नाम चिदाभास और कूटस्थ दोनोंका

९

है, तथापि जीवपनेके जो धर्म हैं सो सारे आभासविषे हैं पुण्य और पाप, और पुण्य पापके फल सुखदुःख और लोकांतरविषे गमन और या लोकविषे आगमन इसते आदिलेके सारे आभा सहित बुद्धि करै है. और कूटस्थ नहीं करै है. कूटस्थविषे केवल भ्रांतिसे प्रतीति होवे है. सो भ्रांतिसे प्रतीति भी बुद्धिसहित आभासकूं होवे है. कूटस्थकूं नहीं. काहेते १-कूट जो लुहारका अहरन ताकी न्याईं निर्विकाररूपसे स्थित होवे सो कूटस्थ कहिये है. २-अथवा कूट कहिये मिथ्या जो बुद्धि और चिदाभास ताकेविषे असंगरूपसे स्थित होवे सो कूटस्थ कहिये है, याते कूटस्थविषे भ्रांति आदिक बनै नहीं, किंतु चिदाभासमें बनै हैं. और अत्यंत विचारसे देखिये तो पुण्य, पाप, सुख, दुःख लोकान्तरमें गमन और आगमन केवल बुद्धिमें है आभासमें भी नहीं. बुद्धिके संयोगसे आभासमें हैं जैसे जलसहित जो घट है, सो टेढा होवे है और सीधा होवे है, और जावे आवे है और ताके संबन्धसे व्योमके आभास संपूर्ण क्रिया करै है और स्वतंत्र कछु भी नहीं करै है. तैसे काम्यकर्म रूपी जलसे भर्‍या जो बुद्धिरूपी घट है सो पुण्यसे आदिलेके संपूर्ण विकार धारै है और ताके संबंधसे चिदाभास धारै है. और कूटस्थ सर्व विकारसे रहित है. जैसे जल पूरित घटके विकारसे रहित घटाकाश है. ताकी न्याईं कूटस्थकूं जान, यातैं

जीवपनेके धर्म चिदाभासमें हैं,तथापि कूटस्थमें अज्ञानसे प्रतीत होवे है. याते बुद्धिके विषे कूटस्थसहित जो चिदाभास सो जीव कहिये है॥ ८६॥ ८७॥

यह जो जीवका स्वरूप वर्णन किया याके विषे प्राज्ञकी हानि होवे है.काहेते, जो सुषुप्तिके अभिमानी जीवका नाम प्राज्ञ है, ता सुषुप्ति बुद्धिका अभाव होवे है यातैं बुद्धिमें आभासभी बनै नहीं.यातैं प्राज्ञके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र है; ताका विरोध होवेगा इस कारणते जीवका स्वरूप और प्रतिपादन करैं हैं:—

दोहा।

अथवा व्यष्टिअज्ञानमैं,जो चेतन आभास।
अधिष्ठान कूटस्थयुत, कहै जीवपद तास॥ ८८॥

१--अज्ञानके अंशका नाम व्यष्टि अज्ञान कहिये है;२--सम्पूर्ण अज्ञानका नाम समष्टि अज्ञान है. ता अज्ञानके अंशविषे जो चेतनका आभास और अज्ञानके अंशका अधिष्ठान जो कूटस्थ है, तिन दोनोंको जीवपद कहैं हैं, याते प्राज्ञका अभाव होवे है. काहेते, सुषुप्तिविषे अज्ञान रहै है, जो सुषुप्तिविषे चेतनके प्रतिबिंब सहित अज्ञानका अंश है सोई बुद्धिरूपकूं प्राप्त होवे है और चेतनका प्रतिबिंब साथही होवे है ता चिदाभाससहित बुद्धिमें पुण्यादिक संसार होवे है. इस अभिप्रायते बुद्धिही कहूं शास्त्रनविषे जीवपनेकी उपाधि

वर्णन करी है और विचारदृष्टिसे जीवपनेकी उपाधि अज्ञान है ॥८८॥

ईशवर्णन -दोहा।

चित छाया माया विषे, अधिष्ठान संयुक्त।
मेघव्योम सम ईश सो, अंतर्यामी मुक्त ॥ ८९ ॥

मायाके विषे जो चेतनकी छाया कहिये आभास और मायाका अधिष्ठान चेतन दोनोंकूं ईश्वर कहै हैं सो ईश्वर मेघाकाशके सम है: १-सो ईश्वर अन्तर्यामी है. काहेते, सर्वके अन्तर प्रेरणा करै है याते अन्तर्यामी है. २-सदा मुक्त है,काहेते, वाकूं अपने स्वरूपमें आवरण नहीं, याते जन्ममरणादिक बन्धकी प्रतीति नहीं. इस हेतुते ईश्वर नित्यमुक्त है.३--सर्वज्ञ है, सर्व पदार्थके जाननेवाला है, याकेविषे यह हेतु है:-मायाविषे शुद्ध सत्त्वगुण है. तमोगुण और रजोगुणसे दबाहुआ सत्त्वगुण नहीं होवे किंतु रजोगुण और तमोगुणकूं आप दबानेवाला होवे, सो शुद्ध सत्त्वगुण कहिये है सत्त्वगुणसे ज्ञानकी उत्पत्ति होवे है याते प्रकाशस्वभाववाला सत्त्वगुण है.ऐसी सत्त्वगुणवाली मायाके विषे जो चेतनका आभास ताकूं स्वरूपविषे अथवा पदार्थविषे आवरण संभव नहीं याते मुक्त है और सर्वज्ञ है, अधिष्ठान जो चेतन है सो तो जीव और ईश्वर दोनों विषे बंधमोक्षभेदसे रहित है, आकाशकी न्याई एकरस है

परंतु आभास अंशविषे बंधमोक्ष है, अधिष्ठानविषे आभासकूं भ्रांतिसे प्रतीत होवे है, याते केवल आभासमें बन्धमोक्ष है. तिसविषे भी इतना भेद है—१—जा आभासमें आवरण है ताके विषे बन्ध है, २—जा विषे स्वरूपका आवरण नहीं है सो मुक्त है, १—ईश्वरमें आवरण नहीं, याते ईश्वर सदामुक्त है, २—जीवविषे आवरण है सो बद्ध है. बद्ध कहिये बँध्या हुआ है, काहेते, जा अविद्याके अंशमें चेतनके आभसको जीव कह्या, ता अविद्याका आवरण करनेका स्वभाव है, यद्यपि १—अविद्या २—अज्ञान और ३ माया एकही वस्तुकूं कहै है. तथापि शुद्धसत्त्वगुणकी प्रधानतासे माया कहिये है २—३ मलिन सत्त्वगुणकी प्रधानताते अज्ञान और अविद्या कहै हैं, रजोगुण और तमोगुणसे दबा जो सत्त्वगुण है सो मलिनसत्त्वगुण कहिये है याते तमोगुण और रजोगुणकी अधिकता होनेते अविद्यामें जो जीवका आभास अंश ताकूं अविद्या स्वरूपका आवरण करे है, याते जीवमें बन्धन है और ईश्वरमें नहीं. १—अधिष्ठानचेतनसहित जो मायामें आभासरूप ईश्वर है सो तत्पदका वाच्य कहिये है, २—केवल अधिष्ठानचेतनतत्पदका लक्ष्य है जो ईश्वर है सोई जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करै है. यह संपूर्ण शास्त्रमें कह्या है, ताका यह अभिप्राय है:—चेतनअंश तौ, आकाशकी न्याई असंग

है और आभासअंश जगत्की उत्पत्ति आदि करै है, ताहीविषे सर्वज्ञता है, भक्तजनके ऊपर अनुग्रह जो करै है सो भी केवल आभासअंश करै है, जो कछु ऐश्वर्य है, सो केवल आभासमें है चेतन अंश एकरस है, वाकेविषे सत्तास्फूर्ति देनेविना और ऐश्वर्य बनै नहीं ॥ ८९ ॥

ब्रह्मस्वरूप वर्णन-दोहा।

अंतर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ।
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥९०॥

ब्रह्मांडके अंतर कहिये भीतर और बाहिर जो महाकाशकी न्याई भरपूर चेतन है सो ब्रह्म कहिये है, सो ब्रह्म नेरे और दूर नहीं काहेते जो वस्तु अपनेसे भिन्न होवे और देशरूप उपाधिवाला होवे सो नेरे और दूर कहा जावे है. ब्रह्म भिन्न नहीं किंतु सबका आत्मा है और देशादिक सर्व उपाधिते रहित है, याते नेरे और दूर नहीं कहाजावे, यद्यपि ब्रह्मशब्दका वाच्यभी सोपाधिक है.काहेते, व्यापकवस्तुका नाम ब्रह्म है, सो व्यापकता दो प्रकारकी है:-एकतो आपेक्षिकव्यापकता है और एक निरपेक्षिक व्यापकता है. १-जो वस्तु किसी पदार्थकी अपेक्षाके व्यापक होवे और किसीकी अपेक्षासे न होवे ताके विषे आपेक्षिकव्यापकता कहिये है. जैसे पृथ्वी आदिकी अपेक्षासे माया व्यापक है और चेतनकी अपेक्षासे नहीं है याते मायाविषे आपेक्षिक व्यापकता

है. २--जो वस्तु सर्वकी अपेक्षासे व्यापक होवे ताकेविषे जो व्यापकता सो निरपेक्षिकव्यापकता कहिये है सो निरपेक्षिकव्यापकता चेतनविषे है. काहेते? चेतनके समान अथवा चेतनसे अधिक और कोई व्यापक है नहीं, किंतु चेतन ही सर्वसे व्यापक है याते चेतनविषे निरपेक्षिक व्यापकता है. यह दोनों प्रकारकी व्यापकतासहित जो वस्तु है सो ब्रह्मशब्दका वाच्य है. सो दोनों-प्रकारकी व्यापकता मायाविशिष्टचेतनविषे है. काहेते, १--विशिष्ट विषे जो मायाअंश है ताकेविषे तो आपेक्षिकव्यापकता है. २--चेतन अंश विषे निरपेक्षिकव्यापकता है. यद्यपि मायाविशिष्ट चेतनविषे निरपेक्षिक व्यापकता बनै नहीं. काहेते; माया चेतनके एकदेशविषे है. ता मायाविशिष्ट चेतनसे शुद्ध चेतनकी व्यापकता अधिक है; याते शुद्धचेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता है; तथापि मायाविशिष्ट जो चेतन है सो परमार्थ दृष्टि करके शुद्धिसे भिन्न नहीं किंतु शुद्ध रूपही है याते मायाविशिष्टमें भी जो चेतनअंश है ताकेविषे निरपेक्षिकही व्यापकता है. इस रीतिसे १--मायाविशिष्टही ब्रह्मशब्दका वाच्य बनै है. २--शुद्ध चेतन ब्रह्म शब्दका लक्ष्य है याते ईश्वर शब्द और ब्रह्म शब्द दोनोंका समानही अर्थ प्रतीत होवे है, भिन्न अर्थ नहीं तथापि १--ब्रह्मशब्दका तो यह स्वभाव है जो बहुत स्थानविषे लक्ष्य अर्थकूं

बोधन करे है और काहू स्थानविषे वाच्य अर्थकूं कहे है. २--ईश्वर शब्दका यह स्वभाव है जो बहुत स्थानमें वाच्य अर्थका बोधन करे है, इतना भेद है. यातैं लक्ष्य अर्थकूं लेके ब्रह्मशब्दका अर्थ भिन्न निरूपण किया है९०

दोहा।

चतुर्भांति चेतन कह्यो, तामें मिथ्या जीव।
पुण्य पाप फल भोगवै, शिवकूटस्थ सुशीव॥९१॥

हे शिष्य! चारि प्रकारका चेतन कह्या तामें जीवके स्वरूपमें जो मिथ्या आभास अंश है सो पुण्य पाप करे है और तिनके फलको भोगे है. २--कूटस्थ जो चेतन है सो शिव कहिये शिवरूप है. शिव नाम कल्याणका है. याते प्रथम जो शंका करी थी--'जो बुद्धिरूपी वृक्षमें दो पक्षी हैं, एक परमात्मा और जीव" ताका यह उत्तर कहा परमात्मा और जीवका ग्रहण नहीं करना किंतु कूटस्थ तो प्रकाशमान है और आभास भोगे है॥९१॥

दोहा।

कर्मी छाया देत फल, नहिं चेतनमें योग।
सो असंग इकरूप है, जानैं भिन्न कुलोग॥९२॥

जीवके स्वरूपमें जो चेतनकी छाया कहिये आभासअंश है सो कर्मी कहिये कर्म करे है ता कर्म करनेवालेकूं छाया जो ईश्वरका आभास अंश है सो फल देवे है, छाया शब्दका देहली दीपकन्याय करके पूर्व उत्तर

दोनों ओरको संबंध है, जैसे देहलीके ऊपर धरचा जो दीपक है, सो दोनों ओरकूं प्रकाशक है.

"छाया कर्मी" और "छाया देत फल" याते यह वार्त्ता सिद्ध हुई:—जीवके स्वरूपमें जो आभास अंश है सो तो पुण्य पाप करे है और तिनका फल भोगे है और ईश्वरमें जो आभास अंश है सो कर्मका फल देवे है और दोनों विषे जो चेतन अंश है. तिसविषे किसी बातका योग नहीं. जीवमें जो चेतनअंश है ताविषे तो कर्म और फलका योग नहीं और ईश्वरमें जो चेतन अंश है तामें फल देनेका योग नहीं है ता चेतनमें जो कहे है सो मूर्ख है, काहेतें ? चेतन दोनोंविषे असंग है और एकरूप है, चेतनमें भेद नहीं, जीव चेतनकूं जो ईश्वर-चेतनसे अथवा ईश्वरचेतनकूं जो जीवचेतनसे भिन्न कहिये न्यारा जाने सो कुलोगकहिये निंदन करनेयोग्य लोग हैं या कहनेते दूसरा जो प्रश्न कियाथा जो–"जीव और परमात्माकी एकता अंगीकार करनेसे कर्म और उपासनाका प्रतिपादक वेद निष्फल होवेगा" ताका उत्तर कह्या. जो जीव और ईश्वरमें चेतन भाग है तिनका तो अभेद है और आभासका भेद है. याते दोनों प्रकारके वचन बने हैं ॥ ९२ ॥

चौपाई।

अहो शिष्य तैं प्रश्न जु कीने। तिनके ये उत्तर मैं दीने ॥

कहे जु तैं तरुमैं द्वैपक्षी । इक भोगै इक आहि अनिक्षी॥
ते चेतन आभास लखाये । नभछाया ज्यों भिन्न बताये॥
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता । मतिमाया छायासो ताता॥
जीव ईशमैं चेतनरूपं । भेदगंधतैं रहित अनूपं ॥
यातैं "अहं ब्रह्म" यह जानो। "अहं" शब्दकूटस्थपिछानो
'ब्रह्म' शब्दकोअर्थसुभाख्यो ।महाकाशसमलक्ष्यजुराख्यो
'अहंब्रह्म'नहिंजौलौंजानैं।तौलौंदीनदुखितभय मानैं ९६

हे शिष्य ! जो तैंने प्रश्न करे तिनके मैं उत्तर कहे. १–जो तैंने कहाथा "एक वृक्षमें दो पक्षी हैं एक भोगै है और एक इच्छाते रहित है. याते जीवब्रह्मकी एकता बने नहीं" याका हमने उत्तर कह्या जो "या स्थानमें जीवब्रह्मका ग्रहण नहीं करना किंतु कूटस्थ और बुद्धिमें जो आभास तिनका ग्रहण करना.सो आप-समें घटाकाश और आकाशकी छायाकी न्याईं भिन्न हैं" और जो तैंने प्रश्न कियाथाः–"जीव तो कर्म उपा-सना करनेवाला है और परमात्मा फल देनेवाला है, तिनकी एकता बनै नहीं."याका भी हमने यह उत्तर कह्या जो–१-कर्म करनेवाला जीव नहीं है और फल देनेवाला ईश्वर नहीं है.किन्तु जीवनमें जो आभास अंश है सो करै है २–ईश्वरमें जो आभास अंश है सो फल देवे है और जीव ईश्वरमें जो चेतन अंश है सो घटाकाश महाकाशकी न्याईं भेदका जो गन्ध कहिये लेश तासे

रहित हैं" इस रीतिसे हे शिष्य! जीव और ब्रह्मकी एकता बनै है. याने "अहं" कहिये "मैं ब्रह्म हूं" ऐसे तूं जान, अहंशब्दका अर्थ तो कूटस्थकूं पिछान और ब्रह्म शब्दका जो महाकाशके सम लक्ष्य अर्थ कह्या है सो जान "अहं" शब्दका और "ब्रह्म" शब्दका वाच्य-अर्थका अभेद नहीं भी है परंतु लक्ष्य अर्थका अभेद है. और हे शिष्य! १-जबलग तू "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसे नहीं जानेगा तबलग तू अपनेकूं दीन मानेगा और दुःखी मानेगा.२-न्यारा जो परमात्मा जाना है सो तेरेकूं भयका हेतु होवेगा.यातै "मैं ब्रह्म हूं" ऐसे जान ९३-९६

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा।

कहो गुरू है कौनकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
नहिं जानूं मैं आपके, भाषे बिना सुजान ॥ ९७ ॥

हे गुरु आप कृपा करिके कहो. "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान किसकूं होवे है? आपके कहे विना यह वार्त्ता मैं जानूं नहीं हूं, शिष्य के चित्तमें यह गूढ अभिप्राय हैः-"मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान कूटस्थविषे होवे है अथवा आभाससहित बुद्धिमें होवे है.१-जो कूटस्थमें कहोगे तो कूटस्थविकारी होवेगा.२-आभाससहित बुद्धिमें कहोगे तो वाकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान भ्रांतिरूप होवेगा.काहेतैं, आपने ऐसा पूर्व कह्या जो "कूटस्थकी और ब्रह्मकी एकता है और आभास भिन्न है" यातै

ब्रह्मसे भिन्न जो आभास ताका ब्रह्मरूपकरके जो ज्ञानसो भ्रांतिही होवेगा. जैसे सर्पते भिन्न जो रज्जु ताका सर्परूप करिके ज्ञान भ्रांति है. इसरीतिसे आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान यथार्थ नहीं होवेगा. किंतु भ्रांतिरूप होवेगा और जो कदाचित् "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानकूं भ्रांतिरूपही अंगीकार करोगे तो या ज्ञानते मिथ्याजगत्की निवृत्ति नहीं होवेगी, किंतु यथार्थज्ञानसे मिथ्याकी निवृत्ति होवे है. जैसे रज्जुके यथार्थज्ञानसे मिथ्यासर्पकी निवृत्ति होवे है, इसरीतिसे आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान बनै नहीं॥ ९७॥

श्रीगुरुरुवाच—सोरठा।

कहूं अवस्था सात, सुन शिष्य व आभासकी।
नहिं चेतनकी तात, तिनहीमें यह ज्ञान है॥ ९८॥

हे शिष्य। अब आभासकी सात अवस्था मैं कहूं हूं सो तू सुनः--(अबकी ठौर बकार पढ़ा है.) तिन सात अवस्थामें कोई भी चेतन कूटस्थ ताकी नहीं है और "मैं ब्रह्महूं" यह ज्ञान भी तिन सातके भीतरही है॥ ९८॥

सप्तअवस्था नाम—चौपाई।

एक अज्ञान आवरण जानौ।
भ्रांति द्विविध पुनि ज्ञान पिछानौ॥

शोकनाश अतिहर्ष अपार।
सप्त अवस्था इमि निर्धारा ॥ ९९ ॥

अज्ञान और आवरणस्वरूपवर्णन–दोहा।

नहीं जानूं मैं ब्रह्मकूं, याकूं कहत अज्ञान।
ब्रह्म है न नहिंभान है, यह आवरण सुजान १००॥

हे शिष्य ! १–"मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूँ" यह जो पुरुष कहै या व्यवहारका हेतु अज्ञान है २–"ब्रह्म है नहीं और भान नहीं होवे है" इस व्यवहारका हेतु आवरण है आवरणसे यह व्यवहार होवे है काहेतैं दो प्रकारकी अज्ञानकी भांति है:–एक तो असत्त्वापादक है, और एक अभानापादक है तिन दोनोंका आवरण कहे हैं, "वस्तु नहीं है" ऐसी प्रतीति करावनेवाली जो शक्ति सो असत्त्वापादक कहिये है और वस्तुका भान नहीं होवे है ऐसी प्रतीति करानेवाली जो अज्ञानकी शक्ति, सो अभानापादक कहिये है, इस रीतिसे "ब्रह्म नहीं है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी असत्त्वापादक शक्ति है, और "ब्रह्म भान नहीं होवे है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी अभानापादक शक्ति है इन दोनोंका नाम आवरण है॥ ९९ ॥ १०० ॥

भ्रांतिवर्णन–दोहा।

जन्ममरण गमनागमन, पुण्यपाप सुखखेद।
निजस्वरूपमें भानहै, भ्रांति बखानी वेद ॥ १०१ ॥

जन्मसे आदि लेके जो संसार है ताकी जो निजस्वरूप कहिये कूटस्थ प्रतीति सो वेदमें भ्रांति कहिये है. और याहीकूं शोक कहे हैं ॥ १०१ ॥

द्विविधज्ञानवर्णन-दोहा।

द्वैविधज्ञान बखानिये, इक परोक्ष अपरोक्ष।
"अस्तिब्रह्म" परोक्ष है, "अहं ब्रह्म" अपरोक्ष१०२
"नहीं ब्रह्म" या अंशको, करै परोक्ष विनाश।
सकल अविद्या जालकूं, दूजो नशै प्रकाश ॥१०३॥

१-ब्रह्म "नहीं है" या आवरणके अंशकूं "ब्रह्म है" ऐसा परोक्षज्ञान विनाशे है काहेतें? "सत्य ज्ञान अनन्त रूप ब्रह्म है" ऐसा जो ज्ञान:ताका नाम परोक्ष ज्ञान है सो "ब्रह्म नहीं है" ऐसी प्रतीतिका विरोधी है औरको नहीं और "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा जो अपरोक्ष ज्ञान सो सकल अविद्याजालका विरोधी है या कारणते "मैंब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" यह अज्ञान और "मैं ब्रह्म नहीं" और "भान नहीं होवे है" यह आवरण और "मैं ब्रह्म नहीं हूं" किंतु पुण्यपापका कर्त्ता और सुख दुःखका भोक्ता जीव हूं" यह भ्रांति, इतना जो, अविद्याजाल है ताकूं अपरोक्षज्ञान नाश करे है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

भ्रांतिनाशवर्णन-दोहा।

जन्ममरण मोमैं नहीं, नहीं सुखदुखको लेश।
किंतु अजन्यकूटस्थ मैं, भ्रांतिनाश यह वेश॥१०४॥

मेरेविषे जन्म और मरण नहीं है और २सुख दुःखका लेश भी नहीं है और ३–कोई भी संसारधर्म मेरेविषे नहीं है किन्तु ४-अजन्य कहिये जन्मसे रहित जो कूटस्थ, सो "मैं हूं" हे शिष्य! इस रीतिसे सर्व अनर्थका जो निषेध यह भ्रांति नाशका वेष कहिये स्वरूप है- अथवा यह भ्रांतिनाश वेष कहिये उत्तम है या जगह कूटस्थमें जन्मका निषेध करनेते सर्वका निषेध जानि लेना.काहेते जन्मप्रतीतिसे अनंतर और अनर्थ प्रतीति होवे है. याते जन्मके निषेधते सर्व अनर्थका निषेध है. यह जो भ्रांति नाश है, याहीकूं शोकनाश भी कहे हैं॥ १०४॥

हर्षस्वरूपवर्णन–दोहा।

संशयरहित स्वरूपको, होय जु अद्वयज्ञान।
तव उपजे हिय मोद तब, सो तू हर्ष पिछान१०५॥

हे शिष्य! जब तेरेकूं संशयरहित अपने स्वरूपका ऐसा ज्ञान होवैगा, जो "मैं अद्वय ब्रह्मरूप हूं" तब तेरेकूं जो मोद होवेगा, ताकूं तूं हर्ष पिछान॥ १०५॥

दोहा।

कही अवस्था सात मैं, तोकूं शिष्य सुजान।
सो सगरी आभासकी, है तिनहीं मैं ज्ञान॥१०६
"ज्ञान होत है कौनकूं," यह पूछी तैं बात।
मैं ताको उत्तर कह्यो, चहै सु पूछब तात॥१०७॥

अर्थ–स्पष्ट है॥ १०६॥ १०७॥

जा गूढ अभिप्रायते प्रश्न कर्या था, ताकूं अब शिष्य प्रगट करे हैः-

दोहा।

भगवान् है आभासकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
तुम भाष्यो सो मैं लख्यो, पुनि शंका इक आन॥८॥

चौपाई।

है आभास ब्रह्मते न्यारा। अस तुम पूर्व कियो निर्धारा॥
"अहं ब्रह्म" सो कैसे जानै। आपहि भिन्नब्रह्मतैं मानै॥
जो जानैं तौ मिथ्या ज्ञाना। होइ जेवरी भुजग समाना॥
श्रीगुरु यह संदेह मिटाऊ। युक्तिसहित निजउक्ति सुनाऊ॥

हे भगवन्! आपने यह पूर्व कह्या जोः-"कूटस्थ और ब्रह्म तौ दोनों एक हैं और आभास ब्रह्मते न्यारा है" ता ब्रह्मसे भिन्न आभासकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ब्रह्म रूप करिके ज्ञान बनै नहीं. १-मेरा अधिष्ठान जो कूटस्थ सो ब्रह्मरूप है, ऐसा जो आभासकूं ज्ञान होवे तौ यथार्थ ज्ञान होवे. २-"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान यथार्थ नहीं बनै. काहेते अहं नाम अपने स्वरूपका है. जाकूं मैं कहैं हैं. सो आभासका स्वरूप मिथ्या है. याते भिन्न है याते ब्रह्मसे भिन्न आभासका जो स्वरूप वाकूं ब्रह्मरूप करके ज्ञान होवे तौ मिथ्या ज्ञान होवे. जैसे सर्पसे भिन्न जो जेवरी ताका सर्परूपकरिके ज्ञान मिथ्या होवे है, मिथ्या नाम भ्रांतिका है, सो ब्रह्म ज्ञानकूं भ्रांतिरूप कहना बनै नहीं॥ १०८-११०॥

दोहा।

"अहं" शब्दके अर्थको, सुन अब शिष्य विवेक।
तब हियके जासुँ नशै, शंक कलंक अनेक॥ १११॥
अर्थ- स्पष्ट है॥१११॥
है यद्यपि आभासमैं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
तथापि सो कूटस्थको, लहै आप अभिमान॥११२॥
ताको सदा अभेद है, विभु चेतनतैं तात।
बाध समैं निज रूपहू, ब्रह्मरूप दरशात॥ ११३॥

हे शिष्य! यद्यपि "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान बुद्धि सहित आभासकूं होवे है और कूटस्थकूं नहीं, तथापि सो आभास कूटस्थकूं और अपने स्वरूपकूं दोनोंकूंअपना आत्मा जाने है. ता आत्माका मैंशब्द ग्रहण करके ग्रहण होवे है सोई अहंशब्दका अर्थ है.

१-ता अहंशब्दमें भान जो होवे है कूटस्थ, ताका तो ब्रह्मके साथ सदा अभेद है जैसे घटाकाशका और महाकाशका सदा अभेद है इसी कारणते कूटस्थका ब्रह्मके साथ मुख्यसमानाधिकरण वेदांतशास्त्रमें कह्या है. जा वस्तुका जा वस्तुके संग सदा अभेद होवे ता वस्तुका ताके संग मुख्यसमानाधिकरण कहिये हैं. जैसे घटाकाश का महाकाशके संग सदा अभेद है. याते घटाकाश महाकाश है. इस रीतिसे घटाकाश महाकाशके साथ मुख्य समानाधिकरण है. इस रीतिसे कूटस्थका ब्रह्मके

संग मुख्यसमानाधिकरण है. काहेते, कूटस्थका ब्रह्मते सदा अभेद है. याते मैं--शब्दमें भान जो होवे है कूटस्थ ताका तो ब्रह्मके संग सदा अभेद है. और २--मैं--शब्दमें भान जो होवे है आभास, ताका ब्रह्मसे अपने स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवे है; जैसे मुखका जो प्रतिबिंब ताका बिंबस्वरूप मुखके संग प्रतिबिंबस्वरूपकूं बाधिके अभेद होवे है इसी कारणतें वेदांतशास्त्रविषे आभासका ब्रह्मके संग बाधसमानाधिकरण कह्या है. जो वस्तुका बाध होइके जाके संग अभेद होइ, ता वस्तुका ताके साथ बाधसमानाधिकरण कहिये है. जैसे--मुखके प्रतिबिंबका बाध होयके मुखके साथ अभेद होवे है. याते प्रतिबिंब मुख है न्यारा नहीं, ऐसा प्रतिबिंबका मुखके साथ बाधसमानाधिकरण है.

किंवा--जैसे स्थाणुमें पुरुषभ्रम होयके स्थाणुज्ञानसे अनन्तर--"पुरुष स्थाणु है" इस रीतिसे पुरुषका स्थाणुसे बाधसमानाधिकरण होवे है, तैसे आभासका बाध होइके ब्रह्मके साथ अभेद होवे है. याते मैंशब्दविषे भान जो होवे आभास, सो ब्रह्म है न्यारा नहीं. ऐसा बाधसमानाधिकरण आभासका ब्रह्मके साथ होवे है. इस रीतिसे हे शिष्य! १--अहंशब्दमें भान जो होवे है कूटस्थ ताका तो मुख्य अभेद है. २--आभासका बाध करिके अभेद है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच—दोहा।

अहं वृत्तिमें भान है, साक्षी अरु आभास।
सो क्रमतें वा क्रमविना,याको करहु प्रकास॥११४॥

हे भगवन् ! आपने कह्या जो–"अहंवृत्तिमें साक्षी अरु आभास दोनोंका भान होवे है" याके विषे मैं एक वार्त्ता नहीं जानू हूँ सो कूटस्थ और आभासका भान अहंवृत्तिविषे क्रमसे होवे है; अथवा क्रमसे बिना होवेहै याका अर्थ यह है:–१क्रमसे कहिये भिन्न२ कालमें होवे है अथवा दोनोंका एकही कालमें भान होवे है ? याका आप मेरेकूं प्रकाश कहिये. बोध करो॥११४॥

श्रीगुरुरुवाच–दोहा।

सावधान ह्वै शिष्य सुन, भाषूं उत्तर सार।
सुनत नशै अज्ञानतम,बोध भानु उजियार॥११५

हे शिष्य ! जो तैंने प्रश्न कियां मैं ताका सारभूत उत्तर कहूँहूं.तूं सावधान होइके सुन. कैसा उत्तर है, याके सुनतेही बोधरूपी सूर्यका प्रकाश होयके अज्ञानरूपी तमकूं नाशे है॥ ११५॥

दोहा।

एक समयही भान ह्वै, साक्षी अरु आभास।
दूजो चेतनको विषय, साक्षी स्वयं प्रकास॥११६॥

हे शिष्य ! एकही समय साक्षीका और आभासका अहंवृत्तिविषे भान होवे है सारे प्रकरणविषे आभास-

शब्दसे अंतःकरणसहित आभासका ग्रहण करना-याते १--दूजो कहिये अंतःकरणसहित जो आभास, सो तो चेतन जो साक्षी ताका विषय होइके भान होवे है. २--साक्षी स्वयंप्रकाशरूप करके भान होवे है और अंतःकरणकी जो आभाससहित वृत्ति; ताका विषय साक्षी नहीं और घटादिक बाहिरके पदार्थनविषे तो ऐसी रीति है:--जब इंद्रियका और घटका संयोग होवे तब इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति निकासिके घटके समान आकारकूं प्राप्त होवे है, जैसे मूषामें गेऱ्या जो ताम्र, ताका मूषाके आकारके समान आकार होवे है. तैसे अंतःकरणकी वृत्तिका भी घटके आकारके समान आकार होवे है. सो वृत्ति आभास विना नहीं होवे है, किंतु आभाससहित होवे है. काहेते ? वृत्ति अंतःकरणका परिणाम है. अंतःकरणका जो परिणाम ताकूं वृत्ति कहे हैं. जैसे—अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य होनेते स्वच्छ है, याते अंतःकरणविषे चेतनका आभास होवे है तैसे वृत्ति भी स्वच्छ अंतःकरणका कार्य है याते वृत्तिविषे चेतनका आभास होवे है. और वृत्ति जो उत्पन्न होवे है सो आभाससहित अन्तःकरणसे उत्पन्न होवे है.इस कारणते भी वृत्ति आभाससहितही होवे है और विषय जो घट है सो तमोगुणका कार्य है, यातैं स्वरूपसे जड है और ताकेविषे अज्ञान और

ताका आवरण है यामें एक शंका होवे है:—अज्ञान और ताका आवरण विचारदृष्टिसे चेतनविषे है घटविषे नहीं काहेतें ? १—अज्ञान चेतनके आश्रित है २—चेतनहीकूं विषय करै है, यह वेदांतका सिद्धांत है. और १—सात अवस्थाके प्रसंगमें जो अज्ञानका आश्रय अंतःकरणसहित आभास कहा, सो अज्ञानका अभिमानी है "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा अभिमान अंतःकरणसहित आभासकूं होवे है, इस कारणतें अज्ञानका आश्रय कहिये है. और मुख्य आश्रय चेतन है. आभाससहित अंतःकरण नहीं काहेतें ? आभास सहित अन्तःकरण अज्ञानका कार्य है जो जाका कार्य होवे है, सो ताका आश्रय बनै नहीं यातें चेतनही अज्ञानका अधिष्ठान रूप आश्रय है और चेतनहीकूं अज्ञान विषय करै है. स्वरूपका जो आवरण करना सोई अज्ञानका विषय करना है, सो अज्ञान कृत आवरण जडवस्तुविषे बनै नहीं. काहेतें ? जडवस्तु स्वरूपसेही आवृत है ताके विषे अज्ञानरूप आवरणका कुछ उपयोग नहीं इस रीतिसे अज्ञानका आश्रय और विषय चैतन्य है, जैसे गृहके मध्य जो अन्धकार है सो गृहके मध्यकूं आवरण करै है यातें घटके विषे चेतन और ताका आवरण बनै नहीं.

ताका यह समाधान है:—जैसे चेतनके स्वरूपसे भिन्न सत् असत्से विलक्षण अज्ञान चेतनके आश्रित है ता

अज्ञानसे चेतन आवृत होवे है तैसे घटके स्वरूपसे भिन्न अज्ञान यद्यपि घटके आश्रित नहीं है तथापि अज्ञानसे घटादिक स्वरूपसे प्रकाशरहित जडस्वरूप रचे है यातैं सदाही अंधके समान आवृत है सो आवृतस्वभाव घटादिकनका अज्ञानने किया है.काहेतैं ? तमोगुणप्रधान अज्ञानसे भूतकी उत्पत्तिद्वारा घटादिक उपजैं हैं सो तमोगुण आवरण स्वभाववाला है,यातैं घटादिक प्रकाश रहित अंध ही होवे हैं, इस रीतिसे अंधतारूप आवरण घटादिकनमें अज्ञानकृत स्वभावसिद्ध है और घटादिकनके अधिष्ठान चेतन आश्रित अज्ञान चेतनकूं आच्छादित करके स्वभावसे आवृत घटादिकनकूं भी आवृत करे है. यद्यपि स्वभावसे आवृत पदार्थके आवरणमें प्रयोजन नहीं है,तथापि आवरणकर्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेक्षासे विनाही निरावरणकी न्याईं आवरणसहितमें भी आवरण करे है,यह लोकमें प्रसिद्ध है.ता अज्ञानसे आवृत घटकूं व्याप्त जो होवे है,अंतःकरणकी आभाससहित घटाकारवृत्ति तामें १-- वृत्तिभाग तौ घटके आवरणकूं दूर करै है और २--वृत्तिमें जो आभासभाग है, सो घटका प्रकाश करे है, इस रीतिसे बाहिरके पदार्थ विषे वृत्ति और आभास दोनोंका उपयोग है.

दृष्टांत ।

जैसे अंधकारमें कूंडेसे मृत्तिका अथवा लोहका पात्र

ढका धरा होवे तहां दंडसे कूंडेकूं फोड वीगेरे पीछे दीपक विना उस निवारणपात्रका भी प्रकाश होवे नहीं, किंतु दीपकसे प्रकाश होवे है तैसे अज्ञानसे आवृत जो घट ताके आवरकूं वृत्तिभंग भी करे है, तथापि घटका प्रकाश होवे नहीं.काहेतें ? घट तो स्वरूपसे जड है और वृत्ति भी जड है ताका आवरणभंगमात्र प्रयोजन है तासे प्रकाश होवे नहीं. यातें घटका प्रकाशक आभास है. नेत्रका विषय जो वस्तु है ताके प्रत्यक्षज्ञानकी यह रीति कही और श्रवणादिकका जो विषय है ताके प्रत्यक्षकी भी रीति ऐसी जान लेनी.

१–वृत्ति और घट दोनों एकदेशमें स्थित होनेतें घटका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. २–अंतःकरणकी वृत्ति तो घटाकार होवे और घटके संग वृत्तिका संबंध न होवे. किंतु अंतरही वृत्ति होवे सो घटका परोक्षज्ञान कहिये. १--"यह घट है" ऐसा अपरोक्षज्ञानका आकार है.२--" घट है" अथवा "सो घट है" ऐसा परोक्षज्ञानका आकार है, यद्यपि स्मृतिज्ञान भी परोक्षज्ञान है तथापि स्मृतिज्ञान तो संस्कारजन्य है और अनुमितिआदिक परोक्षज्ञान प्रमाणजन्य है इतना भेद है. प्रमाणके प्रसंगसे हम प्रमाण निरूपण करैं हैं.

१--चार्वाक जो हैं सो एक प्रत्यक्षप्रमाण अंगीकार करैं हैं २--कणाद और सुगतमतके जो अनुसारी हैं

सो दूसरा अनुमान प्रमाणभी अंगीकार करैं हैं. काहेतैं ? एक प्रत्यक्षही प्रमाण अंगीकार करैं तो तृप्तिके अर्थीकी भोजनविषे प्रवृत्ति नहीं होवेगी. काहेतैं ? अभुक्तभोजन विषे तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यक्षप्रमाण जन्य प्रत्यक्षज्ञान है नहीं यातैं भुक्तभोजनमें अनुभव जो "करी" है तृप्तिकी हेतुता,सो अभुक्तभोजनमें भी अनुमानसे जानके तृप्तिके अर्थीकी भोजनमें प्रवृत्ति होनेतैं अनुमानप्रमाण भी अंगीकार करना चाहिये, इस रीतिसे कणाद और सुगतमतके अनुसारी प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण अंगीकार करे हैं. सांख्यशास्त्रका कर्त्ता जो कपिल हैं ताके मतके अनुसार तीसरा शब्दप्रमाण भी अंगीकार करे हैं, काहेतैं?जो प्रत्यक्ष और अनुमान दोही प्रमाण अंगीकार करेतो देशांतरविषे जाका पिता मरगया होवे ताकूं कोई यथार्थवक्ता आइके कहै "तेरा पिता मरगया है" तब श्रोताकूं पिताके मरनेका निश्चय नहीं होना चाहिये, काहेते ? देशांतरविषे स्थित पिताके मरणका ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमानकरके बनै नहीं. इस रीतिसे कपिलमतके अनुसारी प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द तीन प्रमाण अंगीकार करे हैं,

न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है ताके मतके अनुसारी उपमान भी चतुर्थप्रमाण अंगीकार करैं हैं, काहेतैं? प्रत्यक्ष आदिक तीनही प्रमाण अंगीकार करैं तौ जा

पुरुषने गवय नहीं देखा है और वनवासीपुरुषसे ऐसा श्रवण किया है-"गौके सदृश गवय होवे है" सो पुरुष जो वनमें चला जावे और गवयकूं देखलेवे तब ताकूं वनवासी पुरुषने कहा जो-"गौके सदृश गवय होवे है" यह वाक्य ताके अर्थका स्मरण होवे है. ता स्मृतिसे अनंतर पुरुषकूं ऐसा ज्ञान होवे है" यह पशु गवय है." ऐसा ज्ञान नहीं होना चाहिये, यातैं ऐसे विलक्षण ज्ञानका हेतु उपमानप्रमाण भी अंगीकार करे हैं.

पूर्वमीमांसाका एकदेशी जो भट्टका शिष्य प्रभाकर है,सो पंचम अर्थापत्तिप्रमाण भी अंगीकार करे है. दिन में भोजनत्यागी पुरुषकूं स्थूल देखके ऐसा ज्ञान होवे है "यह पुरुष रात्रिकूं भोजन करे है" तहां रात्रिभोजन विना दिनमें भोजनत्यागीके विषे स्थूलता बनै नहीं. यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता संपाद्य है. रात्रिभोजन सम्पादक है. संपादक जो रात्रिभोजन ताको ज्ञानका हेतु स्थूलताका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण कहिये है.

पूर्वमीमांसक जो भट्ट है सो षष्ठ अनुपलब्धिप्रमाण भी अंगीकार करे हैं.और वेदांतशास्त्रविषे भी षट् प्रमाण अंगीकर किये हैं. अनुपलब्धिप्रमाणका प्रयोजन यह है गृहादिकनमें घटादिकनके अभावका ज्ञान होवे है तहां जा पदार्थकी प्रतीति नहीं होवे है ताके अभावका ज्ञान होवे है. अप्रतीतिकूं अनुपलब्धि कहे हैं. घटकी

जो अनुपलब्धि कहिये अप्रतीति ताते घटका अभाव निश्चय होवे है ऐसे पदार्थनके अभावनिश्चयाक हेतु जो पदार्थनकी अप्रतीति ताकूं अनुपलब्धि प्रमाण कहैं हैं.

१–"प्रमाज्ञानका जो करणहै, सो प्रमाण कहिये है.

२–स्मृतिसे भिन्न जो अबाधित अर्थकूं विषयकरनेवाला ज्ञान है सो प्रमा कहिये है, स्मृतिज्ञान जो है सो प्रमा नहीं है- काहेते ? जो प्रमाज्ञान है सो प्रमाताके आश्रित होवे है और स्मृति प्रमाताके आश्रित नहीं; किंतु साक्षीके आश्रित अंगीकार करीहै और भ्रांतिज्ञान और संशयभी साक्षीके आश्रित अंगीकार किये हैं, इसी कारणतें स्मृति और भ्रांति और संशयज्ञान, ये तीनों आभाससहित अविद्याकी वृत्तिरूप हैं, अंतःकरणकी वृत्तिरूप नहीं. याते प्रमाताके आश्रित नहीं, किंतु साक्षीके आश्रित हैं. जो अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञान होवे सो प्रमाताके आश्रित होवे है और सोई प्रमा कहिये है. स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति नहीं, यातें प्रमाताके आश्रित नहीं, और प्रमाभी नहीं यातें प्रमाके लक्षणविषे स्मृत्तिसे भिन्न कह्या चाहिये। अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला ज्ञान तो स्मृति ज्ञान भी है, परंतु स्मृतिज्ञान स्मृतिसे भिन्न नहीं है. यातैं अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो स्मृतिसे भिन्न ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है या लक्षण विषे कोई दोष नहीं.

कोई स्मृतिज्ञानकूं भी प्रमारूप मानैं हैं. तिनके मतमें प्रमाके लक्षणविषे स्मृतिसे भिन्न ऐसा नहीं कहना, किंतु अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है. भ्रांति ज्ञान जो है, सोअबाधित अर्थकूं विषय नहीं करे है, किन्तु बाधित अर्थकूं विषय करै है यातैं प्रमाका लक्षण भ्रांतिज्ञानमें नहीं जावे है जिन्होंके मतमें स्मृतिज्ञानविषेभी प्रमा व्यवहार है तिनके मतमें स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति है, अविद्याकी वृत्ति नहीं और साक्षीके आश्रित भी नहीं, किन्तु प्रमाताके आश्रित है. काहेतैं ? अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय प्रमाता ही बनै है, साक्षी बनै नहीं. इस रीतिसे स्मृतिज्ञान १–किसीके मतमें तो अंतःकरणकी वृत्ति है, यातैं प्रमारूप है २–किसीके मतमें अविद्याकी वृत्ति है, यातैं प्रमारूप नहीं है और भ्रांतिज्ञान और संशयज्ञान, ये दोनों सर्वके मतमें अविद्याकी वृत्ति हैं; और साक्षीके आश्रित हैं यामें कोई विवाद नहीं. विचार करिके देखिये तो स्मृतिज्ञान भी अविद्याकी वृत्ति है. और साक्षीके आश्रित है, प्रमारूप नहीं. काहेतैं? जो वेदांत संप्रदायके वेत्ता हैं, तिन्होंने प्रमाज्ञान षट्प्रकारका कहा है. ता षट्प्रकारमें स्मृतिज्ञान है नहीं, यातैं प्रमा नहीं.

मधुसूदनस्वामीने स्मृतिज्ञान साक्षीके आश्रितही कहा है. एक तो प्रत्यक्षप्रमा है, दूसरी अनुमिति प्रमा

है, तीसरी उपमिति प्रमा है, चतुर्थी शाब्दी प्रमा है, पंचमी अर्थापत्ति प्रमा है और षष्ठी अभावप्रमा है, ये षट् प्रमा हैं. और पूर्व कहे जो प्रत्यक्ष आदिक षट् प्रमाण हैं सो इनके क्रमतें करण हैं. प्रत्यक्षप्रमाका जो करण होवे सो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये है. १—असाधारण कारण जो होवे सो करण कहिये है. २—जो सर्वकार्यका कारण होवे सो साधारणकारण कहिये है जैसे १—धर्म अधर्मादिक सर्वकार्यके कारण हैं यातें साधारणकारण हैं. २—सर्वकार्यका कारण न होवे, किंतु किसी कार्यका कारण होवे सो असाधारण कारण कहिये है. जैसे दंड जो है सो सर्वकार्यका कारण नहीं किंतु घट आदिक जो कार्यविशेष हैं तिनका कारण है, यातें दंड असाधारणकारण कहिये है और घटका करण भी कहिये है. १-तैसे प्रत्यक्षप्रमाके ईश्वर और ताकी इच्छासे आदिलेके तो साधारणकारण हैं, काहेतें ? ईश्वरसे आदिलेके सर्वकार्यके कारण हैं. तिन बिना कोई कार्य होवे नहीं, याते ईश्वरादिक साधारणकारण हैं और २—नेत्रसे आदिलेके जो इंद्रियहैं सो प्रत्यक्षप्रमाके असाधारणकारण हैं यातैं नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं सो प्रत्यक्षप्रमाके करण हैं. इस रीतिसे नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं सो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये हैं.

यद्यपि इंद्रियकूं वेदांतसिद्धांत विषे प्रमाज्ञानकी कार-

णता कहना बनै नहीं काहेतैं ? चेतनके च्यारि भेद हैंः— एक तौ प्रमाताचेतन है, दूसरा प्रमाण चेतन है, तीसरा प्रमिति चेतन है, ताहीकूं प्रमाचेतन भी कहे हैं और चौथा प्रमेयचेतन है ताहीकूं विषयचेतन भी कहे हैं. इस रीतिसे प्रमा नाम चेतनका है सो नित्य है, इंद्रियजन्य नहीं, यातैं इंद्रिय ताका कारण नहीं तथापि चेतनमें प्रमाव्यवहारका संपादकवृत्ति भी प्रमा कहिये है, ताके इंद्रिय कारण हैं.

१—देहके मध्य जो अंतःकरण ता करके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमाता कहिये है २—सोई अंतःकरणनेत्रादिक इंद्रियद्वारा निकसिके जितने दूर घटादिक विषय स्थित होवें उतना लंबा परिमाण अंतःकरणका होवे है और आगे विषय जो घटादिक हैं तिनमें मिलके जैसा घटादिकका आकार होवे तैसाही अन्तःकरणका आकार होवे है,जैसे कोठेमें भऱ्या जो जल सो छिद्रद्वारा निकसिके लंबे नालेका आकार होयके बगीचेके केदारमें जावे है और केदारमें जाइके जैसा केदारका आकार होवे तिस आकारकूं जल प्राप्तहोवे है, तैसे अंतःकरण भी इंद्रियरूपी छिद्राद्वारा निकसिके विषयरूपी केदारकूं जावे है, तहां शरीरसे लेके घटादिक विषयपर्यन्त जो अंतःकरणका नालेके समान परिणाम ताकूं वृत्तिज्ञान कहे हैं ता करिके अवच्छिन्न जो चेतन ताकूं प्रमाण-

चेतन कहे हैं. ३—वृत्तिज्ञानरूप जो अंतःकरणका परिणाम ताकूं प्रमा कहे हैं. जैसे केदारविषे जल जाइके केदारके समान आकार होवे है, तैसे घटादिक जो विषय हैं तिनमें वृत्ति जाइके घटादिकके समान आकारकूं प्राप्त होवे है. ता करिके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमाचेतन कहिये है, ज्ञानके विषय जो घटादिक तिन करके अवच्छिन्न जो चेतन सो विषयचेतन कहिये है और प्रमेयचेतन भी कहिये है, यह वेद अर्थके जाननेवाले जो आचार्य हैं तिनकी परिभाषा है।

यामें इतना भेद हैः—जो अवच्छेदवाद अंगीकार करे हैं; तिनके मतमें तो १—अंतःकरण विशिष्ट जो चेतन है, सो प्रमाता है और सोई कर्त्ता भोक्ता है और २—अंतःकरण उपहित साक्षी है. एकही अन्तःकरण प्रमाताका तो विशेषण है और साक्षीकी उपाधि है, स्वरूपविषे ताका प्रवेश होवे ऐसी जो व्यावर्तक वस्तु है सो विशेषण कहिये है और पदार्थसे भिन्नता करिके वस्तुके स्वरूपकूं जो जनावे सो व्यावर्तक कहिये है, जाकूं भिन्नता करिके जनावे सो व्यावर्त्य कहिये है,जैसे "नील घट है" या स्थानमें घटका नीलता विशेषण है काहेतें ? नीलघटके विषे नीलताका प्रवेश है और पीत श्वेतादिकनसे भिन्नता करिके जनावै है, यातें व्यावर्तक है इस रीतिसे नीलता घटका विशेषण है, और घट परिच्छेद्य

है. काहेतैं? पीतश्वेतादिकनते भिन्नता कहिये जुदा करिके जनाइये है. जो भिन्नता करिके जनाइये सो परिच्छेद्य कहिये है. व्यावर्त्य कहिये है और विशेष भी कहिये है. और "दण्डी पुरुष है" या स्थानमें भी पुरुषका दण्ड विशेषण है. इस रीतिसे प्रमाताका अन्तःकरण विशेषण है, काहेतैं? प्रमाताके स्वरूपविषे अन्तः-करणका प्रवेश है, और प्रमेय चेतनसे भिन्नता करिके प्रमाताके स्वरूपकूं जनावै है, यातैं व्यावर्तक है, जो वस्तुका स्वरूपविषे प्रवेश न होवै और व्यावर्तक होवै सो उपाधि कहिये है. १--जैसे--नैयायिकके मतमें कर्ण-शष्कुलीसे अवच्छिन्न जो आकाश है, सो श्रोत्र कहिये है, या स्थानमें कर्णशष्कुली श्रोत्रकी उपाधि है. काहेतैं? श्रोत्रके स्वरूपविषे तो कर्णशष्कुलीका प्रवेश है नहीं और बाहिरके आकाशते भिन्नता करके श्रोत्रकूं जनावै है, यातें व्यावर्त्तक है और २--घटाकाश जो है सो मन परिमाण अन्नकूं अवकाश देवे है या स्थानमें भी आकाशकी घट उपाधि है. काहेते, मन अन्नकूं अवकाश देने-वाला जो आकाश है ताके स्वरूपविषे तौ घटका प्रवेश है नहीं घट पार्थिव है ताकेविषे अवकाश देना बनै नहीं, याते घटका स्वरूपमें प्रवेश बनै नहीं और व्यापक आकाशते भिन्नताकरिके जनावे है याते मन अन्नकूं अवकाश देनेवाला जो आकाश ताकी घट उपाधि

अध्यास = विवर्त, प्रतीतिमात्र नहीं।

है. तैसे अन्तःकरण उपहित जो चेतन है सो साक्षी है, या स्थानमें अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है काहेतें ?

साक्षीके स्वरूपविषे तो अन्तःकरणका प्रवेश है नहीं और प्रमेयचेतनसे साक्षीकूं भिन्नता करके जनावे है याते एकही अंतःकरण साक्षीकी तो उपाधि है, और प्रमाताका विशेषण है.इस रीतिसे १—अन्तःकरण उपहित जो चेतन है सो तौ साक्षी है और २—अन्तःकरण-विशिष्टचेतन प्रमाता है१—जो उपाधिवाला होवे सो उपहित कहिये है और २—विशेषणवाला होवे सो विशिष्ट कहिये है. जो अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता है, सोई कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी संसारी जीव है, यह अवच्छेदवादकी रीति है और—१आभासवादमें आभाससहित अंतःकरण जीवका विशेषण है और २—आभास सहित अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है. याते १—आभास अंतःकरणविशिष्टचेतन जीव है और २—साभास अन्तःकरण उपहित चेतन साक्षी है. यद्यपि दोनोंपक्षमें विशेषण सहित चेतन जीव है सोई संसारी है. तथापि विशेष्यभाग जो चेतन है ताके विषे तौ जन्ममरणसे आदिलेके संसारका संभव है नहीं. याते विशेषणमात्रमें संसार है सोई विशिष्ट चेतनमें प्रतीत होवे है. १—कहूं तो विशेषणके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवे है और२—कहूं विशेष्यके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवे है और ३—कहूं विशेषणविशेष्य दोनोंके

धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवेहै जैसे १—दंडकरके घटाकाशका नाश होवे है या स्थानमें विशेषण जो घट है ताका दंडकरके नाश होवे है और विशेष्य जो आकाश है ताका नाश बनै नहीं. तो भी विशिष्ट जो घटाकाश है ताका नाश प्रतीत होवे है. २—"कुण्डलीपुरुष सोवे है" या स्थानमें कुण्डल विशेषण है और पुरुष विशेष्य है. विशेषण जो कुण्डल है, ताकेविषे सोवना बनै नहीं किंतु विशेष्य जो पुरुष है ताकेविषे सोवना बनै है. और "कुण्डलविशिष्ट विप्र सोवे है" ऐसा विशिष्टमें व्यवहार होवे है. ३—" शस्त्री पुरुष युद्धमें गया है." या स्थानमें विशेषण जो शस्त्र और विशेष्य पुरुष दोनों युद्धमें गये हैं याते दोनोंके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवे है. या स्थानमें १--अवच्छेदवादमें तौ अंतःकरण विशेषण है -२आभासवादमें साभास अंतःकरण विशेषण है और दोनों पक्षमें चेतन विशेष्य है ताकेविषे तो जन्मादि संसार बनै नहीं. किन्तु विशेषण अंतःकरण अथवा साभास अंतःकरण ताका धर्म जो जन्मादिक संसार ताका विशिष्टचेतनमें व्यवहार करिये है. व्यवहार नाम प्रतीत और कहनेका है. इस रीतिसे आभासवाद और अवच्छेदवादका भेद है.

आभासवादमें तो अंतःकरण आभाससहित है और अवच्छेदवादमें अंतःकरण आभासरहित है.दोनों पक्षमें

आभास वाद श्रेष्ठ है. काहेते?--भाष्यकारने आभास-वाद अंगीकार किया है- २--अवच्छेदवादमें विद्यारण्यस्वामीने दोषभी कहा है--जो आभासरहित अंतःकरण अवच्छिन्न चेतनकूं प्रमाता मानै तौ घट अवच्छिन्न चेतन भी प्रमाता हुवा चाहिये. काहेते ? जैसे अंतःकरण भूतनका कार्य है तैसे घटभी भूतनका कार्य है और जैसे अंतःकरण चेतनका ३अवच्छेदक कहिये व्यावर्तक है, तैसे घट भी चेतनका अवच्छेदक है याते अंतःकरणविशिष्टकी न्याई घटविशिष्ट भी प्रमाता हुवा चाहिये और अंतःकरणमें आभास अंगीकार कियेते यह दोष नहीं. काहेते? १--अंतःकरण तौ भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है याते स्वच्छ है. और २--घटादिक भूतनके तमोगुणके कार्य हैं यातें स्वच्छ नहीं. १-जो स्वच्छपदार्थ होवै सोई आभासके योग्य होवे है. मलीन पदार्थ आभासके योग्य नहीं. जैसे कांच और ताका ढकना दोनों पृथिवीके कार्य हैं. परन्तु कांच तौ स्वच्छ है तामें मुखका आभास होवे है. ढकना स्वच्छ नहीं याते तामें आभास होवे नहीं तैसे १--सत्त्वगुणका कार्य होनेसे अंतःकरण स्वच्छ है ताहीमें चेतनका आभास होवे है. २--शरीरादिक और घटादिक तमोगुणके कार्य होनेसे स्वच्छ नहीं तिनमें चेतनका आभास होवे नहीं. इस रीतिसे अन्तःकरणमें द्विविध प्रकाश है. एकतो

व्यापक चेतनका प्रकाश और दूसरा आभासका प्रकाश है. शरीरादिक और घटादिकनमें एक व्यापक चेतनका प्रकाश तौ है. दूसरा आभासका प्रकाश नहीं. यातैं द्विविध प्रकाशसहित अंतःकरणविशिष्टही चेतन प्रमाता कहिये है.एक प्रकाशसहित जो घटादिक तिन करके संयुक्त चेतन प्रमाता नहीं. जिनके मतमें अंतःकरणमें आभास नहीं तिनके मतमें घटादिकनकी न्याईं अन्तःकरणमें भी आभासका दूसरा प्रकाश तौ है नहीं, व्यापक चेतनका जो एक प्रकाश अंतःकरणमें है सोई व्यापक चेतनका प्रकाश घटादिकनमें है यातैं अन्तःकरणविशिष्टकी न्याईं घटविशिष्ट वा शरीरविशिष्ट वा भीतविशिष्ट चेतन भी प्रमाता होना चाहिये इस रीतिसे घट शरीरादिकनते अन्तःकरणमें यही विलक्षणता है, १--अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य है याते स्वच्छ होनेते चेतनका आभासग्रहण करनेके योग्य है २--और पदार्थ स्वच्छ नहीं यातैं आभास ग्रहण करनेके योग्य नहीं १--आभासग्रहणके योग्य जो अंतःकरण ता करके संयुक्त ही चेतन प्रमाता कहिये है, २--घटादिक और शरीरादिक आभासग्रहणके योग्य नहीं यातैं तिन करके विशिष्ट चेतन प्रमाता नहीं इस रीतिसे आभासवादही उत्तम है. अवच्छेदवाद नहीं.

जैसे अंतःकरण आभाससहित है, तैसे अंतःकरणकी वृत्ति भी आभाससहितही होवे है, साभासवृत्तिविशिष्ट चेतन प्रमाण चेतन कहिये है, अन्तःकरणकी घटादि विषयाकार जो वृत्ति तामें आरूढ चेतनकूं प्रमा और यथार्थज्ञान कहे हैं, ताका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये है, काहेते ? विषयाकारवृत्तिमें आरूढ चेतनकूं प्रमा कहे हैं. तहां चेतन यद्यपि स्वरूपकरिके नित्य है याते इंद्रियजन्य ताकूं अभावते प्रमा चेतनका साधन इंद्रिय नहीं. तथापि निरुपाधिक चेतनमें तो प्रमाव्यवहार है नहीं. किंतु विषयाकारवृत्ति उपहित चेतनमें प्रमाव्यवहार होवे है. याते चेतनविषे प्रमाशब्दकी प्रवृत्तिमें विषयाकार वृत्ति उपाधि है सो विषयाकारवृत्ति इन्द्रियजन्य है. इंद्रिय ताका साधन है, प्रमापनेकी उपाधि जो वृत्ति ताको इंद्रियजन्य होनेते उपहित जो प्रमा सो भी इन्द्रियजन्य कहिये है, याते इंद्रिय प्रमाका साधनकहिये है. परंतु अन्तःकरणका परिणाम सारा प्रमा नहीं कहिये है. किंतु शरीरके भीतर जो अन्तःकरण ताका विषय घटादिकन ताई परिणाम ताकूं प्रमाण कहे हैं विषयते मिलिके विषयके समान जो अन्तःकरणका परिणाम उतनेकूं प्रमा कहे हैं, शरीरके भीतर जा अंतःकरण,तासे लेके घटादिक विषय ताई पहुंचा जो अन्तःकरणका परिणाम सोई प्रमारूपकूं धारे है, याते प्रमाका प्रमाण-

रूप अंतःकरणकी वृत्तिसे अत्यंत भेद नहीं. १–इस रीतिसे बाहिरके पदार्थनका प्रत्यक्ष ज्ञान जहाँ होवे तहाँ अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जायके विषय जो घटादिक, तिनके समान आकाररूपकूं धारे है. २–शरीरके अंतर जो आत्मा ताका प्रत्यक्ष होवे, तब अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जावे नहीं. किंतु शरीरके भीतरही वृत्ति आत्माकार होवे है, १–ता वृत्तिसे आत्माके आश्रित आवरण दूर होवे है. २–आत्मा अपने प्रकाशते ता वृत्तिमें प्रकाशे है. इसी कारणते वृत्तिका विषय आत्मा कह्या है और चिदाभासरूप जो वृत्तिमें फल ताका विषय आत्मा नहीं, या प्रकारते साक्षी आत्मा स्वयंप्रकाशरूप भान होवे है यह सिद्ध हुआ ॥ ११६ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच–दोहा।

इंद्रियके संबंध बिन, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
कैसे है प्रत्यक्ष प्रभु, मोकूं कहौ बखान ॥ ११७ ॥

"ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानते सकल अविद्याजालका नाश होवे है. परोक्षज्ञानते नहीं" यह पूर्व कहा, ताके विषे शंका करे हैं–ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष बने नहीं. काहेते? इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवे है. ब्रह्मका ज्ञान इंद्रियजन्य बने नहीं. काहेते? नेत्र इंद्रियते रूपवान्‌का अथवा नीलादिक रूपका ज्ञान होवे है ऐसा ब्रह्म नहीं. याते नेत्र-इंद्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मका बनै नहीं. रामकृष्णादिकनकी

जो मनुष्याकार मूर्त्ति है सो यद्यपि रूपवाली है तथापि सो मूर्त्ति मायारचित है मिथ्या है सो मूर्त्ति ब्रह्म नहीं और पुराणनमें रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही है सो तिनकी शरीररूप मूर्त्ति ब्रह्मरूप है इस अभिप्रायते नहीं कही किंतु तिनके शरीरका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायते कही है. याके विषे ऐसी शंका होवे है--सर्व शरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है याते अधिष्ठानचेतन अभिप्रायते रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कहा होवे तौ सर्वशरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म होनेते मनुष्य पशु पक्षी आदिक सर्वही ब्रह्मरूप हैं तिनके समानही रामकृष्णादिक होवेंगे याते रामकृष्णादिकनकूं अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायते ब्रह्मरूपता नहीं कही, किंतु तिनकूं और जीवनते विशेषरूपताकी सिद्धिवास्ते तिनका शरीरही ब्रह्म है, ऐसा मानना योग्य है सो बनै नहीं. काहेते? शरीरका बाध करके तिनके शरीरनकूं ब्रह्मरूपता मानैं तौ १--सर्वशरीरनका बाध करिके सारेही शरीर ब्रह्मरूप हैं. २--बाध किये बिना तो अन्यशरीरनकी न्याई हस्तपादादिक अवयवसहित रूपवान् क्रियावान् शरीरका निरवयव निरूप अक्रिय ब्रह्मते अभेद बनै नहीं. याते रामकृष्णादिकनका शरीर ब्रह्म नहीं. परंतु इतना भेद है. १-जीवनके शरीर पुण्य पापके अधीन हैं २--भूतनके कार्य हैं ३--जीवनकूं देहादिक

अनात्मपदार्थन विषे अविद्याबलते अहं मम अध्यास है. आचार्यके उपदेशते ता अध्यासकी निवृत्ति होवे है १--रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्य पापते रचित नहीं भूतनके कार्य नहीं. किन्तु--जैसे सृष्टिके आदिमें प्राणियोंके कर्म भोगदेनेकूं संमुख होवे, तब आप्तकाम ईश्वरमें भी प्राणियोंके कर्मके अनुसार "मैं जगतकी उत्पत्ति करूं" ऐसा संकल्प होवे है. ता संकल्पते जगतकी उत्पत्तिरूप सृष्टि होवे है तैसे सृष्टिते अनन्तर भी "मैं जगत्का पालन" ऐसा ईश्वरका संकल्प होवे है. ता संकल्पते जगत्का पालन होवे है. कर्मनके अनुसार सुख दुःखका संबंध पालन कहिये है. ता पालन संकल्पके मध्य उपासक पुरुषनकी उपासनाके बलते ईश्वरकूं ऐसा संकल्प होवे है--"रामकृष्णादिकनामसहित मूर्ति सर्वकूं प्रतीत होवे है" ता ईश्वर संकलपते विशेष नामरूपरहित ईश्वरमें रामकृष्णादिक नाम पीतांबरधरादि श्यामसुंदर विग्रह रूपकी उत्पत्ति होवे है, सो विग्रह कर्मके अधीन नहीं. यद्यपि रामकृष्णादिके विग्रहते साधु और दुष्टनकूं क्रमते सुख दुःख होवे है जो ताके सुख दुःखके हेतु होवे हैं सो ताके पुण्य पापते रचित होवे है. याते पुण्य पाप अधीन कहिये है. इस रीतिसे १--अवतारनके शरीर साधु पुरुषनकूं सुखके हेतु होनेते साधुपुरुषनके पुण्यसमुदायते रचित है. तैसे असुरादिक असाधुपुरुषनकूं

दुःखके हेतु होनेते तिनके पापते रचित है--"अवतारनके शरीर पुण्य पापके अधीन नहीं" यह कहना नहीं संभवे तथापि जैसे जीवने पूर्वशरीरमें पुण्य पाप कर्म किये हैं तिनका फल उत्तर शरीरमें ता जीवन सुख दुःख होवे है तहां शरीराभिमानी जीवकूं पूर्वशरीरके अपने पुण्यपापके अधीन उत्तर शरीर कहिये है तैसे रामकृष्णादिकनके शरीर यद्यपि साधु असाधु पुरुषनके पुण्यपापके अधीनहैं और तिनकूं सुख दुःखके हेतु हैं. परंतु रामकृष्णादिकनके पुण्यपापते रचित अवतार शरीर नहीं और तिनकूं अपने शरीरते सुखका तथा दुःखका भोग होवे नहीं, याते रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्य पापके अधीन नहीं. यह संभवे है.

तैसे भूतनके परिणाम भी रामकृष्णादिक शरीर नहीं किंतु चेतन आश्रित मायाका परिणाम है. जो पंचीकृत भूतनके परिणाम होवें तो कृष्णशरीरविषे रज्जुकृत बंधनादिकनका अभाव शास्त्रमें कहा है सो असंगत होवेगा. यद्यपिं पंचभूतरचित सिद्ध योगीशरीरमें भी बंधनादिक होवें नहीं तथापि योगीशरीरमें प्रथम बंधनादिकनका संभव होवे है फिर योगाभ्यासरूप पुरुषार्थते बंधन दाहादिकनकी योग्यता नाश होवे है, कृष्णादिकनके शरीरमें योगीकी न्याईं कुछ पुरुषार्थसे बंधनादिकनका अभाव नहीं. किंतु तिनके शरीर सहजही बन्ध

नादि योग्य नहीं, याते भूतनके परिणाम नहीं और मांडूक्यभाष्यकी टीकामें आनन्दगिरिने रामादिक शरीर भूतनके परिणाम कहे हैं सो स्थूलदृष्टिसे और शरीरनके समान वे शरीर प्रतीत होवैं हैं. इस अभिप्रायते कहे है. काहेतैं? भाष्यकारने गीताभाष्यमें यह कहा हैः—"जीवनके ऊपर अनुग्रह करिके शरीरधारीकी न्याईं मायाके बलते परमात्मा कृष्णरूप प्रतीत होवे है सो जन्मादिक रहित है ताका वसुदेवद्वारा देवकीते जन्म भी मायाते प्रतीत होवे है" इस रीतिसे भाष्यकारने कृष्णशरीर मायाका कार्य कहा है, याते भूतनते अवतार शरीरनकी उत्पत्ति नहीं; किंतु तिनके शरीरनका उपादान-कारण साक्षात् माया है.

जीवनकूं देहादिकनमें आत्मभ्रांति है रामकृष्णादिकनकूं नहीं. काहेते, जीवकी उपाधि अविद्या मलिन-सत्त्वगुणवाली है. रामकृष्णादिकनकी उपाधि माया शुद्ध सत्त्वगुणवाली है, याते जीवनकूं अविद्याकृतभ्रांति और रामकृष्णादिकनकूं मायाकृत सर्वज्ञता होवे है. जीवनकूं अज्ञानकृत आवरण और भ्रांतिके नाशनिमित्त आचार्यद्वारा महावाक्यके उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा है. तैसे रामकृष्णादिकनकूं आवरण और भ्रांति नहीं; याते उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं, किंतु जीवकूं अंतःकरण की वृत्तिरूपज्ञानकी न्याईं ईश्वरकूं मायाकी वृ रूप

आत्माका ज्ञान तो उपदेशादिके विना भी होवे है. परंतु ता ज्ञानते कुछ प्रयोजन तिनकूं सिद्ध होवे नहीं. काहेते, जीवनकूं घटादिकनके ज्ञानते आवरणभंग और विषय जो घटादिक तिनका प्रकाश होवे है और ब्रह्मरूपते आत्माका ज्ञान जो जीवनकूं होवे है तहां ज्ञानका विषय जो आत्मा ताका आवरणभंग तौ ज्ञानते होवे है और आत्मा विषय स्वयंप्रकाश है, याते आत्मज्ञानते विषयका प्रकाश होवे नहीं. तैसे ईश्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप जो "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान ताका विषय ईश्वरका आत्मा सो आवरणरहित स्वयंप्रकाश है, याते आवरणभंग वा विषयका प्रकाश ईश्वरके ज्ञानका प्रयोजन नहीं. जैसे जीवन्मुक्त विद्वानकूं निवारण आत्माकूं विषय करनेवाली अंतःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति आवरणभंगादिक प्रयोजनरहित होवे है तैसे ईश्वरकूं भी आवरणभंगादिक प्रयोजन विना मायाकीवृत्तिरूप "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान उपदेशादिकते विना होवे है.

इस रीतिसे रामकृष्णादिकनकूं जीवनते विलक्षणता ईश्वरता है तौ भी तिनका शरीर मायारचित है; याते ब्रह्म नहीं. किंतु मिथ्या है मायाने उत्पन्न किया जो अवतारनका शरीर सो हस्तपादादिक अवयवसहित और रूपसहित किया है, याते नेत्रइंद्रियका विषय तिनका शरीर होवे है, ब्रह्मकूं नेत्र इन्द्रिय विषय करे नहीं तैसे

त्वचा इन्द्रिय भी स्पर्शकूं और स्पर्शके आश्रयकूं विषय करे है.ब्रह्म स्पर्शका आश्रय नहीं और स्पर्श नहीं याते त्वचा इन्द्रियका विषय नहीं.

रसना इंद्रियते रसका ज्ञान, घ्राणते गंधका ज्ञान, श्रोत्रते शब्दका ज्ञान होवे है. रस गंध शब्दते ब्रह्म विलक्षण है, याते रसना घ्राण और श्रोत्रतें ब्रह्मका ज्ञान होवे नहीं और कर्म इन्द्रिय ज्ञानके साधन नहीं किंतु वचनादिक क्रियाके साधन हैं. याते तिनते तौ किसीका ज्ञान होवे नहीं. इस रीतिसे किसी इन्द्रियते ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं और इंद्रियते जो ज्ञान होवे सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है प्रत्यक्षकूं ही अपरोक्ष कहैं हैं. याते ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान बनै नहीं. किंतु शब्दसे ब्रह्मका ज्ञान होवे है, जो शब्दसे ज्ञान होवे सो परोक्ष होवे है याते ब्रह्मका ज्ञान भी परोक्षही होवे है ॥ ११७ ॥

श्रीगुरुरुवाच—दोहा।

इंद्रिय बिन प्रत्यक्ष नहिं, शिष यह नियम न जान।
बिनइन्द्रिय प्रत्यक्ष है, जैसे सुख दुख ज्ञान ॥११८॥

इंद्रिय संबंधविना प्रत्यक्षज्ञान होवे नहीं यह नियम नहीं. काहेते ? जैसे सुखका और दुःखका ज्ञान होवे सो किसी इंद्रियते होवे नहीं सो सुख दुःखका ज्ञान भी प्रत्यक्ष होवे है, याते इंद्रिय संबंधते जो ज्ञान होवे सोई

प्रत्यक्षज्ञानहोवे है यह नियम नहीं. किंतु विषयते वृत्तिका संबंध होयके विषयाकारवृत्ति जहां होवे तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. १-सो विषयते वृत्तिका सम्बन्ध कहूं इन्द्रियद्वारा होवे है, २-कहूं शब्दसे होवे है जैसे-"दशम तू है" इस शब्दते दशम जो आप ताते अंतःकरणकी वृत्तिका संबन्ध होयके दशमाकारवृत्ति होवे है. याते शब्दजन्य भी दशमका ज्ञान प्रत्यक्ष होवे है.तैसे प्रमाताविषे सुख दुःख होवे तब सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवे ता वृत्तिसे सुख दुःखका सम्बंध होवे है, याते सुख दुःखका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है, पूर्व उत्पन्न सुख दुःखसे नष्ट हुये पीछे जहां पुरुषकूं याद आवे तहां सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति तो होवे है. परंतु वृत्तिके नष्ट हुए सुख दुःख संबंध नहीं,याते सो ज्ञान स्मृतिरूप है प्रत्यक्षरूप नहीं है, १--यद्यपि अंतःकरणके धर्म सुख दुःख साक्षीभास्य हैं,तथापि सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा साक्षी सुखदुःखका प्रकाश करे है,जो साक्षी भास्यपदार्थ हैं तिनकूं भी साक्षी वृत्तिकी अपेक्षा प्रकाशे है, जैसे--शुक्ति रजत साक्षीभास्य है तहां अविद्याकी वृत्तिकी अपेक्षा करके साक्षी रजतकूं प्रकाशे है, १-परंतु सुख दुःखके प्रकाशमें अंतःकरणकी वृत्ति साक्षीकी सहायक है. २-मिथ्यारजतादिकनके प्रकाशमें अविद्याकी वृत्ति सहायक है.

इस रीतिसे साक्षीभास्यपदार्थके ज्ञानमें भी वृत्तिकी अपेक्षा है. १-सो वृत्ति जहाँ इंद्रियादिक बाह्य साधनतें होवे ताका विषय साक्षीभास्य नहीं कहिये है. २-सुख दुःखकूं विषय करनेवाली वृत्तिमें बाह्यइंद्रियादिक हेतु नहीं, किंतु जब सुखादिक उत्पन्न होवे, तिसी कालमें अन्यसाधनकी अपेक्षाविना सुखाकार दुःखाकार अन्तःकरणकी वृत्ति होवे है. ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी सुख दुःखकूं प्रकाशे है, याते सुख दुःख साक्षीभास्य कहिये है.

बाह्य जो घटादिक है तिनसे अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध नेत्रादिक इंद्रियद्वारा होवे है.याते घटादिक साक्षीभास्य नहीं तैसे ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति होवे है, सो अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर नहीं जावे है,किंतु शरीरके अंतरही होवे है तावृत्तिसे ब्रह्मका संबंध है, याते ब्रह्मका ज्ञान भी सुख दुःखके ज्ञानकी न्याई प्रत्यक्षरूप है. परंतु १-सुखाकार दुःखाकारवृत्तिमें बाह्यसाधनकी अपेक्षा नहीं. याते सुख दुःख साक्षीभास्य है. २-ब्रह्माकार जो अंतःकरणकी वृत्ति तामें तो गुरुद्वारा वेदवचनका श्रोत्रसे संबंध बाह्यसाधन चाहिये है, याते ब्रह्म साक्षीभास्य नहीं इस रीतिसे जहां विषयते वृत्तिका संबंध होवे तहां प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है "अहं ब्रह्मास्मि" या वृत्तिका विषय जो ब्रह्म तासे संबंध है. याते ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवे है.

१–जहां धूमकूं देखिये अग्निका ज्ञान होवे है, तहां धूमका ज्ञान तो प्रत्यक्ष है और अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं. काहेते, नेत्र द्वारा अंतःकरणकी वृत्तिका धूमते संबंध है यातैं धूमका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. २–अनुमानते अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतर अग्निके आकारकूं ग्रहण करनेवाली तो हुई परंतु अग्निके वृत्तिका संबंध नहीं याते अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं. इस रीतिसे जहां वृत्तिसे विषयका संबंध होवे तहां प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है जहां वृत्तिसे विषयका संबंध नहीं होवे विषय बाहिर दूरि होवे अथवा भूत वा भविष्यत् होवे और अनुमानते अथवा शब्दते विषयाकारवृत्ति अंतर होवे सो ज्ञान परोक्ष कहिये है. इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवे है यह नियम नहीं. जैसे सुख दुःखका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं और प्रत्यक्ष है; तैसे दशम पुरुषका ज्ञान शब्दजन्य है तो भी प्रत्यक्ष होवे है इस रीतिसे गुरुद्वारा श्रवण किया जो–"महावाक्यरूप वेद शब्द" तासे उत्पन्न हुआ ब्रह्मज्ञान भी प्रत्यक्षही संभवे है ॥ ११८ ॥

दोहा।

गुरुको अस उपदेश सुनि, तत्त्वदृष्टि बुधिमंत ।
ब्रह्मरूपलखि आत्मा, कियो भेद भ्रमअंत ॥ ११९॥
"अहं ब्रह्म" या वृत्तिमें, निरावरण ह्वै भान ।
दादू आदूरूप सो, यों मैं लियो पिछान ॥ १२० ॥

इति श्रीविचारसागरे ... उप० नाम चतुर्थस्तरंगः ॥ ४ ॥

पंचमस्तरंगः ५.

श्रीगुरुवेद।दिव्यावहारिकप्रतिपादन और मध्यमाधिकारीसाधननिरूपण।

पूर्वतरंगमें यह कहाः--"गुरुमुखद्वारा श्रवण किये वेदवाक्यते अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार होवे है" ताकूं सुनिके अदृष्टि नाम द्वितीय शिष्य यह शंका करे है-१-वेद गुरु सत्य होवे है तो अद्वैतकी हानि,-२"असत्य होवे तो तिनते पुरुषार्थकी प्राप्ति बनै नहीं" दोनों रीतिसे वेद गुरुते अद्वैतज्ञान बनै नहीं.

चौपाई।

वेदरुगुरुजोमिथ्याकहिये। तिनते भवदुखनश्योनचहिये॥
जैसेमिथ्यामरुस्थलकोजल।प्यासनाशकोनहितामें बल१
सत्य वद गुरु कहैं तू द्वैत। भयो गयो सिद्धांत अद्वैत॥
योंशंकरमतपेखि अशुद्धा। तज्योसकलमध्वादिप्रबुद्धा२
यह शंका भगवन् मुहि उपजै।उत्तर देहु दयालु न कुपिजै।
गुरुबोलेशिषकी सुनि बानी।शंकरको यह परम प्रमानी।
च्यारि यार मध्वादिक जे हैं। वेदविरुद्ध कहतसब ते हैं॥
यामैंव्यासबचनसुनिलीजै।शंकर मतहि प्रमाण करीजै॥
कलिमेंवेदअर्थ बहु करिहै। श्रीशंकरशिव तब अवतरिहै॥
जैन बुद्धमत मूल उखारै। गंगाते प्रभु मूर्ति निकारै॥ ३॥

१ "भयो" पदको प्रथमपादसे संबंध है।

जैसे भानु उदय उजियारो।दूरि करै जगसे अँधियारो ॥
सबवस्तुहि ज्योंकी त्यों भासैं।संशय औरविपर्ययनाशै॥
वेदअर्थमें त्यों अज्ञाना। भ्रमहिं है श्रीशंकरव्याख्याना ॥
करिहैं ते उपदेश यथारथ।नाशहि संशय अरुअयथारथ[१]७
और जु वेद अर्थकूं करिहैं। ते शठ वृथा परिश्रमधरिहैं॥
यों पुराणमें व्यास कही है।शंकरमतमैं मान्न यही है ॥८॥
मध्वादिकको मत न प्रमानी।यह हमव्यासवचनतेजानी॥
औरप्रमाणकहूंसोसुनिये।वाल्मीकिऋषि मुख्यजुगिनिये ॥
तिन मुनि कियो ग्रंथ वाशिष्ठा। तामैं मत अद्वैत स्पष्टा॥
श्रीशंकरअद्वैतहि गान्यो।तिनको मत यह हेतुप्रमान्यो १०
वाल्मीकीऋपिवचनविरुद्धं।भेदवाद लखिसकलअशुद्धं ॥

सर्व प्रकरणका भाव यह हैः—व्यास भगवानने पुराणमें यह कही हैः—"जब कलिमें वेदके अर्थकूं नाना भांति करैंगे, तब कृपालु शिवशंकर नाम धारके अवतार लेके बदरीनाथकी मूर्तिका देवनदी मध्यते उद्धार, स्वस्थानमें स्थापन, जैन बुद्धमतखंडन और वेदका यथार्थ व्याख्यान करैंगे" १—या व्यासवचनते श्रीशंकरमत प्रमाण है,२—मध्वादिकनका भेदमत अप्रमाण है और उपनिषद, गीता सूत्र ये तीन जो वेदांतके प्रस्थान हैं, तिनके यद्यपि मध्वादिकनने किसी

१ अयथार्थ-भ्रांति।

तरह खैंचिके स्वस्वमतके अनुसार व्याख्यान किये हैं तथापि व्यासबचनते श्रीशंकरकृत व्याख्यानही यथार्थ है. और आदिकवि सर्वज्ञ वाल्मीकिऋषिने उत्तररामायण वासिष्ठनाम ग्रंथ किया है तहां अद्वैत मतमें प्रधान जो दृष्टिसृष्टिवाद हैं सो अनेक इतिहासनसे प्रतिपादन किया है. याते वाल्मीकिवचन अनुसार अद्वैतमत प्रमाण है और वाल्मीकिवचनविरुद्ध भेदमत अप्रमाण है इस रीतिसे सर्वज्ञ ऋषि मुनि वचनविरोधते भेदवाद अप्रमाण कह्या और युक्तिसे भी भेदवाद विरुद्ध है यह खण्डन आदिक ग्रंथनमें श्रीहर्षादिकनने प्रतिपादन किया है युक्ति कठिनहै. याते भेदमत खंडनकी युक्ति नहीं लिखी.

ऋषिमुनिवचनते विरुद्ध भेदमतमें जैनमतकी न्याईं अप्रमाणता निश्चय हुएते युक्तिमें खंडनकी आस्तिक अधिकारीकूं अपेक्षा भी नहीं यह तीन चौपाईसों कहे हैंः-

चौपाई।

कियो ग्रंथ श्रीहर्ष जु खंडन। खंडन भेद एकता मंडन॥
लिख्योतहां यहबहुविस्तारा।भेदवादनहिंयुक्तिसहारा१२
और भेद धिक्कार जु ग्रंथा। तहां भेद खण्डनको पंथा॥
कठिनदुरूहतर्कहैं तेअति। नहीं पैठहिंशिषतिनमेंतेमति॥
याते कही नते तुहि उक्ति। करै जु भेदहि खंडन युक्ति॥
अप्रमाणमतभेदलख्योजब।खंडनमें युक्तिनचहियत तब॥

वेदवचनसे भी भेदमत विरुद्ध है, यह कहे हैं:-

भेदप्रतीति महादुखदाता।यमकठमें यह टेरत ताता॥याते
भेदवाद चित त्यागहु। इक अद्वैतवाद अनुरागहु॥१६
मृत्योःस मृत्युमाप्नोतियइहनानेवपश्यति"॥इतिश्रुतेः

जो पुरुष इस परमात्माविषे नानाकी न्याईं देखत है सो मृत्युकूं पावता है.

"द्वितीयाद्वै भयंभवति" "अन्योसावन्योहमस्मीति न वेद यथा। पशुरेव स देवानाम्"। इति श्रुतेः॥

अर्थ चौपाई।

जो द्वितीयकूं मतिमें धारे। भय ताकूं यह वेद पुकारे
ज्ञेय ध्येय मोतैं कछु ओरा।लखै सुपशु यह वेदढँढोरा।
शिषयातैं मध्वादिक वानी। सुनीसुबिसरहुअतिदुखदा
द्वैतवचन तब हियमैंजोलौं।ह्वै साक्षातअद्वैत नतौलौं
द्वैतवचनको स्मरण जु होवे। ह्वै साक्षाततूताहि बिगोवै
पूर्वस्मृतिसाक्षातविनाशत। सुनइकअसतुहिकथाप्रकाश
राजाको इक भर्छूमंत्री। राज काज सब ताके तंत्री
और मुसाहिब मंत्री जेते। करें ईरषा तासूं तेते॥ १९
करि न सकत भर्छूकी हानी।महाराजनिजजियप्रियजानी
तब सब मिलि यह रचो उपाया। धारिदौरदगामचवाय
सो सुनिराजहींकरीकचहरी।लिये बुलाय मुसाहिबजहरी
तिनसूं कह्यो बेगि चढि जावहु।दौरतधारिसुधूमनशावहु

तब सबमिलि उत्तर यहदीना। सदा एक मर्छुहि तुमचीना।
मरणलिये अब हमहि पठावतु। मर्छूकूं कहुक्योंनचढावतु
तब बोल्यो मर्छूकरजोरी। महाराज सुनु बिनती मोरी॥
आज्ञा होय मोहि यह रौरी। मारूं सकल धारि जो दौरी॥
तब मर्छकूं बोल्यो राजा। तुम चढि जाहु समारह काजा॥
ते जातहि मर्छू सब मारे। बणिक कृषीवल किये सुखारे॥
मर्छूविजय सुन्यो तिनजबहीं। राजापैभाष्यो यह तबहीं॥
मर्छू मर्यो न सुधर्यो काजा। मिथ्यावचनसुनतहीराजा॥
और प्रधान मुसाहिब कीनो। छत्र रु पीनश पंखादीनो॥
बन्दोबस्त तिन कीने अपनहु। सुनैनराजा मर्छुहिसुपनहु॥
सबवृत्तांतमर्छुतबसुनिके। रूप तपस्विधर्यो यह गुनिके॥
राजापै मुहिजान न देहैं। गयेद्वारलग प्राणहु लेहैं॥२७॥
अबलग सबहि पदारथ भोगे। देह रु इन्द्रिय रहे अरोगे॥
तिय जो चारि चतुष्पद मोहत। च्यारफूलफलखगमनमोहत

"तिय" आदि "खग" अंत इन दो पदोंके
अर्थोंके दोहे यथा-

च्यारि चतुष्पद।

करिकर उरु मृगखुरु पुरज, केहरिसी कटि मान।
लोचनचपल तुरंगसे, वरणे परम सुजान॥ २९॥

च्यारि फूल।

कमलवदन अलसीकुसुम, चिबुकचिह्नमतिधाम,
तिलप्रसूनसी नासिका, पंचकतनु अभिराम॥ ३०॥

न्यारिफल ।

बिंब अधर दाडिम दशन, उरज बिल्वसे धीर ।
कोहरसी एडी कहत, कोविद मति गंभीर॥३१॥

न्यारि खग ।

है मरालसी मंदगति, कंठ कपोत सुढार ।
पिकसी वाणी अतुलमधुर, मोरपुच्छसम बार॥३२॥

चौपाई ।

गगपयोनिधि कबहुँनत्यागत । जातेरसिकसुमनअनुराग
विधि तिलोत्तमा अपर बनाई।इन्यो सुन्दरजिनसोंनसुहा
मिहिंदीजावककरपदरागा।तिनकोमैंकियनिमिषत्यागा
औरभोग तिनके उपकरना।भोगैं सबै निकटभौमरना३
अहो मूढको ममसमजगमैं। भो लंपट अबलगमैंभगमैं
गीलोमलिनमूत्रतैंनिशिदिन।स्रवतमांसमयरुधिरजुछतवि
चर्मलपेटचोमांसमलीना। ऊपरि बार अशुद्ध अलीना
इनमैं कौन पदारथ सुंदर।अति अपवित्रग्लानिकोमंदिर
तियकी जंघ जघन्य सदाहीं।रंभाकरि करउपमितजाहीं
आर्द्रमूतको मनुपतनारो । रुधिरमांसत्वकअस्थिपसारो
लगत जु नीके स्थूल नितंबा।तिनकेमध्यमलिनमलबंबा
तट ताकेते अतिदुर्गंधा । ह्व आसक्त तहां सो अंधा३
अधरजोथूकलारसेभीजत।ताजिग्लानी निजमुखमैं दीज
हष्टमैदानारीमदिरा भजि । शुद्ध अशुद्धविवेकदियोत

१ [illegible] जिसको देखते ही मद चढे ।

कहतनारिकेअंगजुनीके । करत विचार लगत यों फीके॥
कपटकूटकोआकर नारी । मैं जानी अबतजनविचारी४०
कलाकंद दधि पायस पेरा । तंदुलघृतव्यंजन बहुतेरा ॥
औरविविधभोजनजेकीने । तिन सबके रसनारसलीने४१
अबलौं भई न तृप्ति जु याकूं । यातेंवृथा पोषिनाताकूं ॥
क्षुधाविनाशहीवनफलकंदा । है क्यों पराधीनयहबंदा४२
गुहामहल बन बाग घनेरा । क्यों राजाको हैहूं चेरा ॥
निजशिलाअरुनिजभुजतकिया । निर्झरजलकर पात्रन-
किया ॥४३॥ बैठि इकंत होय सुच्छंदा । लहिये
रमानंदा ॥बिनएकांतनआनँद कबहूँ । मिलै अब्धिलौं
थ्वी सबहूँ ॥ ४४ ॥

दोहा ।

पृथ्वीपती निरोग युव, दृढ़ स्थूल बलवंत ।
विद्यायुत तिहि भूपमैं, मानुष सुखको अंत ॥ ४५ ॥

मानव गंधर्व कहावत । ता नृपते शतगुणसुखपावत ॥
त देवगंधर्व जु औरा । तिनते तहँ सौगुण सुखव्यौरा४६
ख गंधर्वदेवको जोहैं । ताते शतगुण पितरनको है ॥
नि अजानदेवमैं तिनतैं । सौगुण कर्मदेवमैं जिनतैं४७॥
ख्यदेव[1] जे हैं पुनि तिनतैं । कर्मदेवतैं सौगुण जिनतैं ॥
त्रिलोकपति इंद्र कहीजे । तामैंपुनिसौगुणगिनिलीजे॥
बदेवनको गुरू बृहस्पति । लहै इंद्रतैं शतगुण सुखगति ।

१ मुख्यदेव–ग्यारहरुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु ये इकतीस हैं ।

जाको नाम प्रजापति भाषत।गुरुतेसुख सौगुणसोराखत॥
ताहूतैं सौगुण ब्रह्महि सुख। लहै न रंचकसो कबहूँ दुख॥
इतने या क्रमतैं सुख पावत। तैत्तिरीय श्रुतियों समुझावत॥

सोरठा।

सजातैं ब्रह्मांत, कह्यो जु सुख सगरो लहै।
रहत सदा एकांत, कामदग्ध जाको न हिय॥९१॥

युवतीसंग दुःख वर्णन–चौपाई।

है एकांतदेशमैं अस सुख। युवति पुत्र धनसंगसदा दुख॥
युवति कुरूपकुबोलनिजाके। सदा शोकहियहैयहताके॥
प्रभु पुरीषपंडा यह रंडा। दियमुहि कौन पापको दंडा॥
बोलतवैनव्यालकागनिके। भेडभैंसिन्योरीनागिनिके९३
भूत भावती ऊंटनिको है। बोलखरीको सुनि खर मोहै॥
रैनि जुउंचेस्वरहिउचारत। स्यार हजारनसुनतपुकारत॥
निरपराध तिय बिनवैरागा। तजतनबनतपापजियलागा
रहत दुखीयोंनिशिदिनापियमन। तियकुबोलसुनि लखिकुरूपतन॥
कामिनि ह्वै जु सुरूप सुबानी। सो कुरूपते है दुखदानी॥
चमक चामकी पियहि पियारी। अर्थ धर्मनशि मोक्षबगारी

धनबिगार।

मीठे बैन जहरयुत लड्वा। खाय गमायबुद्धि ह्वै भडवा॥
और कछूसुपनहुनहिं देखै। काकअंधइककामिनिलेखै९७
धन कछु मिलै जु बाहिर घरमैं। सोसबखरचैकामिनिघरमैं
भूषणवस्त्रताहि पहिरावै। गुरुपितुमातनत्यादिहुआवै ९८

पायसपान मिठाई मेवा । देय भक्तिते तिय निज देवा ॥
नेह नाथ नाथ्योनहिंछूटैं।तियकिशानपूयबैलहिकूटे ५९

धर्मविगार ।

ज्यों सूना पिंजरे बंधुवा । सिगयो बोलतशुद्धअशुधवा ॥
तैसें जो कछुनारिसिखावत। सोगुरुमातपिताहिसुनावत॥
जैसे मोर मोरनी आगे। नाचि रिझाय आप अनुरागे ॥
तैसेविविधवेषकरितियको।मनरिझायरीझतमनपियको ॥
जब दुहूँनकोमनअनुराग्यो।तबहिमदनमदिरामदजाग्यो॥
भये बावरे बसनहु त्यागे । अतिउन्मतघूरनपुनिलागे ६२
प्रेतरूप धरि लग्न अमंगल।भिरिफिरिभिरतमेषमनुदंगल
ज्यों लोटतमद्यपिमतवारो । गिनतमलीनगलीननारो ॥
त्योंनर नारिमदन मद अंधे। अतिगलीन अंगनमें बंधे॥
करतमदनमदभ्रमजेमनकूं। ह्वै अचरन सुनित्यागीजनकूं॥
नशै मदन मदतेमतिनरकी । लखतनऊँचनीचपरघरकी॥
तियहु बावरी मदनबनाई।क्रियादुखदजिहिं ह्वैसुखदाई॥
प्रबलकाममदिरा मदजागै। तब द्विजतियधानकतेलागै ॥
पिये मदनमदिरानरनारी।ऐसै करत अनंतखुवारी ६६॥
कामदोष यों नरहि बिगोवत ।सोइप्रगटसुंदरितियजोवत
याते अतिसुरूपतियदुखदा ।ताकोत्यागकहतमुनिसुखदा।
जोसुरूपतियमें अनुरागत ।विषसमदुखदपेखिनहिंभागत
उभयलोककीकरतसुहानी । मुनिजनगनगुनसाखबखानी
जो नानाविधभोजनखावै । रस ताको फल।बहु उपावै॥

जीवनबिंदुअधीनसुबनको। नशतशोकबिंदुहुते मनको ॥
ह्वैजब जनकोमनमूलवासी। करतशोकअतिधरतउदासी ॥
रुधिरनिवासधरतमनजबहूँ। चंचलअधिकरजोगुणतबहूँ
जबमनकरत बिंदुमें वासा। तबहिशोकचंचलतानासा ॥
पुनि आपहिबलवत जनजानै। ह्वै प्रसन्न शुभ कारजठानै॥
बिंदुहुको तनुमैं उजियारो। नशैबिंदुतनमनहतियारो ॥
जाको बिंदु न कबहूँनाशै। वलिनपलित तिहितनपरकाशै॥
योगी करत खेचरीमुद्रा। तातेबिंदु राखि ह्वै भद्रा॥७२॥
अष्ट सिद्धि जे धारत योगी। बिंदु खसै हारत ते भोगी॥
असअतिउत्तमबिंदुजुजगमें। तिहिंतियछीनिलेतनिजभगमें
ज्यों किसान बेलनमें ऊषहि। पेरतलेतनिचोरिपियूषहि ॥
बारबार बेलनमें धारहि। ह्वै असार दथ्यांतबजारहि७८
त्यों तियमींचिभुजनमेंपीकूं। भरतयोनिघटखींचिअमीकूं
पुनिपुनि करतक्रियानित तौलौं। शेषबिंदुकोबिंदुनजौलौं
कियो असार नारि नरदेहा। खींचफुलेल फूलज्योंखेहा॥
भौ अकाम सब ताहि जरावै। सूखे बैन सुरारलगावै७७॥
है जु सुरूप जोर धन भारी। ता नरपै नारी बलिहारी ॥
करि सुरूप धनबलको अंता। कहतत। हितूकाकोकंता ॥
तिहिपुनिमिलनचहैजु अनारी। करधरपै धरतहु देगारी ॥
नाक चढाय आंखिहूमोरै। जाय न पतिसेजहुके धोरै७९

१ हलकी बांधगंडेकी बंधीहुई बेलनमेंदेवेदथ्या पंजाबताकानाम में प्रसिद्धहै

कोटिबज्र संघात जु करिये ।
सबको सार खींचि इक धरिये ॥
तियके हिय सम सो न कठोरा ।
ऋषिमुनिगण यह देत ढँढोरा ॥ ८० ॥
करत पुमान हठत तिय ज्यों ज्यों ।
चिपटत शठ मतिजनमनत्योंत्यों ॥
कबहुँक ताको वांछित करिके ।
मरणअंत छोड़त न पकरिके ॥ ८१ ॥
पढ्यो पुराण वेद स्मृति गीता ।
तर्कनिपुण पुनि किनहु न जीता ॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसे ।
बाजीगर बंदरकूं जैसे ॥ ८२ ॥
सबकछु मनभावत करवावत ।
पढ पशुहि भलभांति नचावत ॥
उक्ति युक्ति सब तबही बिसरै ।
जब पंडित पढि तियपै ढिसरै ॥ ८३ ॥
जब कबहूँ सुमरत यह वेदा ।
तब तियमें मानत कछु खेदा ॥
तिहि त्यागनकी इच्छा धारै ॥
पुनि तिय नैन सैन शर सारै ॥ ८४ ॥
जहर कटाक्ष नैन शर बोरै ।
तानि कमान भौंह युग जोरै ॥

मारत सारत हिय सब जनको।
विज्ञहु बचत न धन शठगन को ॥ ८५ ॥
भयो न तियमैं तीव्र विरागा।
यों मतिमंद करत पुनि रागा ॥
करत विविध आज्ञा चाकर।
हुकुम करै बैठी मनुठाकर ॥ ८६ ॥
जे नरनारि नयनशर बीधे।
तिनके हिये होत नहिं सीधे ॥
भलो बुरो सुख दुख सब बिसरत।
ते कैसे भवदुखते निसरत ॥ ८७ ॥
नारि बुरी वेश्या अरु परकी।
तीजी नरकनिशानी घरकी ॥
तजत विवेकी तिहुं मैं नेहा।
करै नेह तिय शठमुख खेहा ॥ ८८ ॥

दोहा।

अर्थ धर्म अरु मोक्षकूं, नारि बिगारत ऐन।
सब अनर्थको मूललखि, तजै ताहि है चैन ॥ ८९ ॥
पुत्र सदा दुख देत यों, बिन प्रापति दुख एक।
गर्भसमय दुखजन्मदुख, मरै तु दुःख अनेक ॥ ९० ॥

---

१ विज्ञ-विद्वानहू न बचत, शठगणको धन कहाचीज।

चौपाई।

गर्भधरत जौलौं नहिं नारी।दुख दंपति मन तौलौं भारी।
है जु गर्भयहचिंतननाशै। पुत्रीहोय कि पुत्रप्रकाशै ९१॥
गर्भगिरनके हेतु अनंता। तिनते डरतकरतअतिचिंता॥
है जु पूतनवमासविहाने। जननीजनक अधिकदुखमाने॥
नवग्रहमें इक द्वै नहिं बिगरै।असजनकोन जन्म जगसगरै॥
बिगरेग्रहकी निशिदिनचिंता।करतमातपितुबैठे इकंता९२
शिशु उदास है जबतजिबोबा।तबदोउमिलिलागतरोबा॥
यों चिंतत कछुगये महीने।दाँतपूतकेनिकसे झीने ॥९४॥
मरत बालबहुनिकसतदंता।तब यह चिंता दुखतियकंता॥
जियेदूबरोदुखतें बारो। देखि चुराहै धरत उतारो॥९५॥
म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी। तिनतेझरवावतद्विजधोरी॥
सैयदख्वाजापीर फकीरा। धोकतजोरत हाथ अधीरा९६
ज्याकूंहिंदु कबहुंनहिं मानै। पुत्रहेतुतिहि इष्ट पिछानै॥
भैरोंभूतमनावतनाना। धरतशिवावलि भूमिमशाना९७
धानकको डमरू घरिबाजै। करजोरत पूजतनहिं लाजै॥
और यंत्र ताबीज घनेरे। लिखिमढवाय पूत गर गेरे९८
निजकुलमें इकअच्युतपूजा।किनहु नसुपनहुसुमऱ्योदूजा
सोकुलनेमपूतहितत्यागो। व्यभिचारनज्योंजहँतहँलाग्यो
होतशीतलाकोजबनिकसन।नशतमातुपितुमनकोविकसन
स्नानक्रियातजिरहतमलीना। परमदेवगदहाकूंकीना१००
मोरिबाग बकसहुशिशुमोरा। गदहा मातुचराऊं तोरा॥

योंकहिचनागोदमैंधारै । बिनतीकरिगदहाकूं चारै १०१॥
असअनंतदुखतेशिशुपारन । युवाहोतलौंऔर हजारन ॥
उमर पूतकी ह्वै जो थोरी । मरिहै करहुउपायकरोरी १०२
मरे मातपित कूटहिं माथा ।मानि आपकूं दीन अनाथा॥
हायरकरि निशिदिनरोवैं ।करिधिकरनिजजन्मबिगोवैं॥
पूतमरणकोदुख ह्वै जैसो । लगत सपूंत[1] अपूंत[2] न तैसो ॥
जो जीवैतो होतहि तरुना।लखतनारिकेपोषणभरना १०४
जिन अनेकयत्ननिप्रतिपारो । तिनकूंजलप्यावनहैभारो॥
रजनिसेजपैसिखवैनारी । तव पितमातदेहुमुहिंगारी १०५
ह्वै सुपूत तौ प्रातहि उठिके । नवै दूरते माथनगठिके ॥
चहै मातपित आवैं नेरे । पूतन सन्मुख आँखिहु हेरे १०६
ह्वै कुपूततौउठतहिप्राता ।वचन गारि समबकिअसुहाता॥
जुदोहोयलेसबघरकोधन । देपितमातहिइकतिनको तन॥
फेरिसँभारतकबहुंनतिनकूं । पोषतसबदिनतियनिजतनकूं
देखिलेतपितमातउसासा । याविधिपुत्र सदा दुखराशा ॥

दोहा ।

करि विचार यों देखिये, पुत्र सदा दुखरूप ।
सुख चाहत जे पूततैं, ते मूढ़नके भूप ॥ १०९ ॥
तजि तिय पूत जु धन चहै, ताके मुखमें धूर ।
धन जोरन रक्षा करन, खरच नाश दुख मूर॥११०॥

---

१ सपूत–जाका पूत जीवे है । २ अपूत जाके पूत नहीं हुआ.

चौपाई ।

जो चाहै माया बहु जोरी । करै अनर्थ सु लाख करोरी ॥
जातिधर्मकुलधर्मसुत्यागै । जोधनकूं जोरन जनलागै ११
विनाभागतदपिनधनजुरिहै । जुरै तु रक्षा करि२मरिहै ॥
खचंतधनघटिहैयहचिंता ।नाशै निशिदिनताप अनन्ता ॥
सदाकरतयूं दुखधनमनकूं।चहै ताहि धिकरतिहिंजनकूं ॥
युवतिपूतधनलखिदुखदाता । तज्योभर्छु ममताकोनाता॥

कुंडलिया-छंद ।

भर्छु वन एकांतमें, गयो कियो चित शांत ।
भयो नयो दीवानतिन, सुनो सकल वृत्तांत ॥
सुन्यो सकल वृत्तांत, चित्त यह उपजै ताके ।
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके ॥
तौ झूठे हम होहिं, भूप दे सबको दण्डा ।
याते अब मिलि कहौ, भर्छु भो प्रेत प्रचण्डा ११४

दोहा ।

करि सलाह यह परस्पर, गये कचहरी बीच ।
सबहि कही यह भूपते, भर्छु प्रेत भो नीच ॥११५॥
राख लगाये देहमें, मिलै जाहि बर्तरात ।
तिहिं मारत सो नर बचत, जो तिहि देखि परात[1] ॥
सुनि भूपहु निश्चय कियो, भर्छु मरि भो प्रेत ।
सांच झूठ भूप न लखत, है जु प्रमाद अचेत ११७॥

[1] परात-भाग जावे ।

कछु दिन बीते भूप तब, मारन गयो शिकार ।
पैठ्यो गिरि वन सघनमें, जहँ मृगराज हजार ११८॥
तपत तहाँ इक तरुतरे, भर्छू निज दीवान ।
पेखिताहि भाज्यो उलटि, मानि प्रेत दुखदान ११९

इंदव छंद ।

भर्छुमन्योरु परेतभयोयह, वाक्य असत्यहुसत्यपिछाना ।
देखिलियो निजआँखिनजीवत,तोहुपरेतहुमानिभगाना॥
वंचकतेसुनि द्वैततथा मति,में विसवासकरै जु अजाना ।
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छहु, तोहु न ताहि हिये ठहराना॥

दोहा ।

भेदवचन विश्वास करि, सुनत जो कोउ अजान ।
सो जन दुख भुगते सदा, है न ब्रह्मको ज्ञान १२२॥
याते सुनैं जु भेदके, वचन लखै सु असत्य ।
तबही ताकूं ज्ञान है, महावाक्यते सत्य ॥ १२३ ॥

चौपाई ।

शिषतैंसुनीजु भेद कहानी । जानि झूठ ते नरकनिशानी॥
तिनकेकहनहारसबझूठे । पुरुषारथमुखतेशठरूठे॥१२४॥
तिनको संग न कबहूं कीजे । है जो संगन वचन सुनीजै॥
जोकहुँसुनैतुसुनतहित्यागहु।म्लेच्छजैनवचसमलखिभागहु
जो मिथ्या है देशिक वेदा । कैसे करहीं भवदुख छेदा॥
याको अब उत्तर सुनि लीजै।मिथ्यादुख मिथ्याते छीजै॥
वेदरुगुरुसत्य जोहोवे । तौ मिथ्याभवदुख नहिं खोवे ॥

यामैं इकदृष्टांतसुनाऊँ। जातेतवसंदेहनशाऊँ ॥१२७॥
सुरपति इंद्र स्वर्गमैंजैसो। प्रबल प्रताप भूप इक ऐसो॥
भीम समान शूरबहुतेरे। तिनके चहुँधा डेरे गेरे॥१२८॥
योधाले निजरहथियारन। खरेरहैंतिहिं द्वार हजारन॥
अंदिरमंदिरडचोढीठाढे। लियेखड्गकोशनते काढे१२९॥
ऊँचोमहल अटारी जामैं।फूलसेज सोवे नृप तामैं॥
पंछीहू पहुँचन नहिं पावे। तहां और कैसे चलिजावे॥
तहां भूपदेख्यो असमुपना।पकऱ्या पैर गीदरी अपना॥
भूपछुडायोचाहतनिजपग। तजतनगीदरिपकरिजुपगरग
तब राजा यों खरो पुकारै। है को अस जो गीदर मारै॥
जोधा जो ठाढे निजद्वारा।तिनरंचकहु न कियो सहारा॥
तबनृपदंडलियोनिजकरमें।आपुहिमाऱ्योस्यारनिशिरमें॥
लगतदंड भो ताको अंता। तब निसरे पगरगते दंता॥
दांतलगेगाढे नृपपगमें। यों लंगरात सुचालत मगमें॥
तब चाल्यो ले लाठी करमें।पहुँच्यो घावरियाके घरमें॥
ताहि कह्यो फोहा अस दीजे।घाव पांवको तुरत भरीजे॥
घावरिया नृपते यह भाख्यो।फोहानहिं तयारधरिराख्यो॥
जो तू दे एक पैसा मोकूं। तो तयार करि देहूँ तोकूं॥
तब उलटचो नृप लाठीटेका। नहिं देनेकूं कौडिहु एका॥
लाग्यो सोच करन टरि घरते।बूझे बात कौन बिनजरते॥

१ कोश म्यान।

जो मैं होत धनी बडभागा।आवत घर धावरिया भागा॥
मोहिं निकम्मा जानि कँगाला।घरते तुरतरोगज्यों टाला॥
याहीकूं कछु दोष न दीजै।विनस्वारथको किहिनपतीजै॥
मात पिता बांधव सुत नारी।करतप्यार स्वारथतैं भारी॥
जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावै।तो इनकूं देख्योहु न भावै॥
जा बिन घरी एकनहिं रहते।दुख अपार बिछुरेसबलहते॥
जब देखै आयो घर पौरी।घरके मिलतभाजिभरिकौरी॥
विधि अधीन कोढी सो होवै। सब अंगनमें पानीचोवै॥
अरुझरि परीं आंगुरी जाके।भिनभिनातमुखमाखीताके॥
कहत ताहि तें घरके प्यारे।मरपापी अब तो हतियारे॥
जिहिंदेखतअँखियानअघानी।तीहिंलखिग्लानिबमनज्योंआनी
जोतियहियलागतपतिप्यारो। कियनचहतपलउरतेन्यारो
ताकी पवन बचायोलोरै।भिरै जु वसन तु नाक सकोरै॥
जिहिं पितुमातगोदमें लेते। सकुचततिहिंकरतेकछुदेते॥
मिलतभ्रातजौभरिभुज कोरी। सो बतरातबीचदैडोरी॥
ऐसेजग स्वारथको सारो। बिनस्वारथको काको प्यारो॥
मुहिं स्वारथयोग्यनविधिकीनो।याते इनफोहानहिंदीनो॥
यों चिंततइकमुनितिहिंभेटचो।तिनदैजरीघावदुखमेटचो
निद्राते जाग्यो नृप जबहीं। घावदरदमुनिनाशे तबहीं॥
शिषयहेतुहिदृष्टांतप्रकाश्यो।लखिमिथ्यातैंमिथ्यानाश्यो
मिथ्यादुखदेख्योजबराजा।साचसमाजनकियकछुकाजा

सर्व प्रकरणका अर्थ स्पष्ट॥भाव यह है—संसाररूप

दुःख मिथ्या है, याते तिसके दूरि करनेके साधन वेद गुरु मिथ्याही चाहिये है. मिथ्याके नाशमें सत्यसाधनकी अपेक्षा नहीं और सत्यसाधन होवे तौ तिनते मिथ्याका नाश होवे नहीं. जैसे राजाके समीप मिथ्या गीदरी स्वप्नमें पहुंची किसी सत्ययोद्धासे रुकी नहीं और राजा पुकारयो जब काहूसे भी मरी नहीं और राजाके पास अनेक सांचे शस्त्र धरे हैं तो भी मिथ्यादण्डसे मरी और राजाके मिथ्याघाव भया तब कोई वैद्य जराह सांचा पाया नहीं मिथ्या जराहके पास गया, ताने पैसा मांग्या तौ अनंत खजाने सांचे घरेही रहे, एक पैसा भी राजाकूं मिला नहीं. कोई भी सत्य साधन राजाके दुःखके नाश करनेमें समर्थ हुआ नहीं, किंतु मिथ्या मुनिने मिथ्याजरी देके मिथ्या दुःखका नाश किया इस रीतिसे स्वप्न सर्वकूं अनुभवसिद्ध हैं जाग्रतपदार्थका स्वप्नमें काहूकूं कभी भी उपयोग होवे नहीं. तैसे मिथ्या जो संसारदुःख ताका नाश, मिथ्या वेदगुरुसे होवे है सांचे वेदगुरु अपेक्षित नहीं.

जैसे मरुस्थलके मिथ्याजलते तृषाका नाश होवे नहीं, तैसे मिथ्यावेदगुरुते संसारदुःखका नाश होवे नहीं, और मिथ्या वेदगुरु मानिके संसारदुःखका तिनते नाश अंगीकार करोगे तौ मरुभूमिके जलते भी तृषाका नाश हुआ चाहिये, यह शंका शिष्यने करी थी.

ताका समाधान चौपाई।

यद्यपिमिथ्यामरुथलपानी । तातेकिनहुप्यासबुझानी ॥
तदपि विषमदृष्टांतसुतेरो।सत्ताभेददुहुनमैंहेरो ॥ १४७ ॥

टी॰ यद्यपि मिथ्या जो मरु भूमिका पानी ताते किसीने प्यास नहीं बुझाई और मिथ्यागुरुवेदते दुःखके नाशकी न्याई मिथ्याजलसे प्यासका नाश हुआ चाहिये और प्यास नाश होवे नहीं, तैसे मिथ्यागुरुवेदते संसारका नाश बने नहीं तदपि कहिये,तो भी तेरा दृष्टांत विषम है, काहेते? दुहुनमें कहिये मरुस्थलका जल और प्यास इन दोनोंमें सत्ताका भेद है ताकूं हेरो कहिये देखो १४७

चौपाई।

समसत्ता भवदुख गुरुवेदा। यों गुरुवेद करत भवछेदा ॥
आपसमें समसत्ता जिनकी।लखिसाधकबाधकतातिनकी

टी॰ भवदुःख और गुरुवेदकी समसत्ता कहिये एकसत्ता है, याते गुरुवेदके भवदुःखका छेद होवे है,जिनकी आपसमें समसत्ता होवे तिनकी आपसमें साधकता और बाधकता होवे है, १-जैसे मृत्तिका और घटकी समसत्ता है, याते मृत्तिका घटका साधक है, २-अग्नि और काष्ठकी समसत्ता है तहां अग्नि काष्ठका बाधकहै, १-साधक कहिये कारण २-बाधक कहिये नाशक मरुस्थलके जलकी और प्यासकी समसत्ता नहीं याते मरुस्थलका जल प्यासका बाधक नहीं,या स्थलमें यह रहस्य है:-

चेतनमें परमार्थसत्ता है और चेतनसे भिन्न जो मिथ्या पदार्थ तिनमें दो प्रकारकी सत्ता है—एकतो व्यवहार सत्ता है और दूसरी प्रतिभास सत्ता है.

१—जो पदार्थका ब्रह्मज्ञान विना बाध होवे नहीं किन्तु ब्रह्मज्ञानसेही बाध होवे ता पदार्थमें व्यवहारसत्ता कहिये है सो व्यवहारसत्ता ईश्वरसृष्टिमें है; काहेते ? देहइंद्रियादिक प्रपंच जो ईश्वरसृष्टि ताका ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं ब्रह्मज्ञानसेही बाध होवे है. यद्यपि ईश्वरसृष्टिके पदार्थनका ब्रह्मज्ञानसे विना नाश तौ होवे भी है परन्तु ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं. अपरोक्षमिथ्यानिश्चयका नाम बाध है- सो अपरोक्षमिथ्यानिश्चय ईश्वरसृष्टिके पदार्थनमें ब्रह्मज्ञानसे प्रथम किसीकूं होवे नहीं ब्रह्मज्ञानसे अनंतरही होवे है. याते मूल अविद्याके कार्य जो जाग्रत्के पदार्थ, ईश्वरसृष्टि तामें व्यवहारसत्ता है. जन्ममरण बंधमोक्षआदिक व्यवहारके सिद्धि करनेवाली जो सत्ता कहिये होना सो व्यवहारसत्ता कहिये है.

२—ब्रह्मज्ञानसे बिनाही जिनका बाध होवे तिन पदार्थनमें प्रतिभाससत्ता कहिये है. जैसे ब्रह्मज्ञानसे विनाही शुक्ति, जेवरी, मरुस्थल आदिकनके ज्ञानते रूपा, सर्प जल आदिकनका बाध होवेहै तिनमें प्रतिभाससत्ता है. प्रतिभास कहिये प्रतीति मात्र जो सत्ता कहिये होना. सो प्रतिभाससत्ता कहिये है. तूलाअविद्याके कार्य रूपा

आदिक पदार्थनका प्रतीतिमात्रही होना है,याते तिनकी प्रतिभाससत्ता है.

जाका तीनकालमें बाध होवे नहीं ताकी परमार्थसत्ता कहिये है. चेतनका बाध कभी होवे नहीं, याते परमार्थसत्ता चेतनकी है.इस रीतिसे वेद गुरु और संसारदुःख इनकी एक व्यवहारसत्ता होनेते आपसमें समसत्ता है. याते मिथ्यावेदगुरुते मिथ्या भवदुःखका नाश बने है और क्षुधा पिपासा प्राणके धर्म हैं,प्राण और ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं. यातें पिपासाकी व्यवहारसत्ता है, मरुस्थलके जलका ब्रह्मज्ञानसे बिनाही मरुस्थलके ज्ञानते बाध होनेते मरुस्थलके जलकी प्रतिभाससत्ता है. याते प्यास और मरुस्थलके जलकी समसत्ता नहीं होनेते ता जलते प्यासका नाश होवे नहीं. १–या प्रकारते दार्ष्टांतविषे बाधक वेद, गुरु और बाध्य संसारदुःख तिनकी सत्ता एक है. २–दृष्टांतविषे जल और प्यासकी सत्ताका भेद है,याते दृष्टांत विषम कहिये दार्ष्टांतके सम नहीं ॥१४८॥

शंका–चौपाई।

ब्रह्मभिन्न मिथ्यासबभाखौ। तिनकोभेदहेतकिहिराखौ।
उपज्यो यहमोकूं संदेह।प्रभुताको अब कीजे छेह।१४९

हे प्रभु! ब्रह्मसे भिन्न आप सर्वकूं मिथ्या कहो हो तिन मिथ्यापदार्थमें १–शुक्तिरूपा, रज्जुसर्प मरुस्थल

उत्तर-चौपाई।

जल आदिकनका ब्रह्मज्ञानसे बिनाही बाध, २-संसार दुःखका ब्रह्मज्ञानसे अनंतर बाध यह भेद कौन हेतुसे राखो हो? ॥१४९॥

सकलअविद्याकारजमिथ्या। शिषतामैं रंचकहुनतथ्या।
जा अज्ञानसे उपजत जोई। ताके ज्ञान बाधतिहिं होई॥

हे शिष्य! यद्यपि ब्रह्मसे भिन्न सकल अविद्याका कार्य है याते मिथ्या है तामें रंचक भी तथ्या कहिये सत्य नहीं, परंतु जाके अज्ञानसे जो उपजै है ताके ज्ञानसे तिसका बाध होवे है. १-शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके अज्ञानते रूपा सर्प जल आदि उपजैं हैं तिनका बाध शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके ज्ञानते होवे है. २-ब्रह्मके अज्ञानसे जो जन्ममरणादिक संसारदुःख उपजैं हैं तिनका बाध ब्रह्मज्ञानते होवे है॥ १५०॥

शिष्य उवाच-दोहा।

भगवन् ब्रह्म अज्ञानते, जो उपजै संसार।
सो किहिं क्रमते होत है,कहौ मोहिं निरधार॥१५१॥

अर्थ-स्पष्ट है॥ १५१॥

श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

जैसेस्वप्नहोतबिनक्रमते। त्योंमिथ्याजगभासत भ्रमते।
जोताको क्रमजान्योलोरै। सो मरुथलजलवसननिचोरै॥

अर्थ-स्पष्ट है॥ १५२॥

दोहा।

उपनिषदनमें बहुतविधि, जगउत्पत्तिप्रकार।
अभिप्राय तिनको यही, चेतन भिन्न असार॥१६३॥

यद्यपि उपनिषद्में जगत्की उत्पत्ति अनेक प्रकारसे कही है, १—छांदोग्यमें तो सद्रूप परमात्माते अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमते उपजैं हैं यह कह्या है. और तैत्तिरीयमें आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमते होवैं हैं. इस रीतिसे पांच भूतकी उत्पत्ति कही है. २—कहूं सर्वकी परमेश्वर उत्पत्ति करै है.इस रीतिसे क्रमसे बिनाही उत्पत्ति कहीहै. ऐसे जगत्की उत्पत्ति वेदमें अनेकप्रकारसे कही है. तहां वेदका यह अभिप्राय है:—जगत् मिथ्या है, जो जगत् कछु पदार्थ होता तौ ताकी उत्पत्ति अनेक प्रकारसे वेद नहीं कहता. अनेक प्रकारसे जगत्की उत्पत्ति कही है याते जगत्की उत्पत्ति प्रतिपादनमें वेदका अभिप्राय नहीं. किंतु अद्वैतब्रह्म लखावनेकूं जगत्के निषेध करनेवास्ते मिथ्याजगत्का किसी रीतिसे आरोप किया है.दृष्टांतः—जैसे विनोदके निमित्त दारुका हस्ती उडावनेकूं बनावे हैं ताके कान पूँछ टेढें होवें तो सूधे करने वास्ते यत्न नहीं करते. तैसे अद्वैतज्ञानके निमित्त प्रपंचके निषेधनकूं प्रपंचका आरोप किया है. याते वेदने प्रपंचकी उत्पत्तिक्रम एकरूप कहनेमें यत्न नहीं किया,प्रपंचकी,उत्पत्ति एकरूपसेवेदने

नहीं कहीं याते यह जाने हैं-वेदका अभिप्राय प्रपंच निषेधमें है ताकी उत्पत्तिमें अभिप्राय नहीं.

१-सूत्रकार भष्यकारने द्वितीय अध्यायमें उत्पत्ति कहनेवाले श्रुतिवचनका विरोध दूरि करके जो एकरूपसे तैत्तिरीय श्रुतिके अनुसार उत्पत्तिमें सब उपनिषदनका अभिप्राय कह्या है सो मंदजिज्ञासुके निमित्त कह्या है जो उत्पत्तिवाक्यनते पूर्व कहे अभिप्रायकूं नहीं जानें तो मंदजिज्ञासुकूं उपनिषदनमें नानाप्रकारसे जगत्की उत्पत्ति देखिके आपसमें उपनिषदनका विरोध है. यह भ्रांति होय जावेगी ताके दूरि करनेकूं सर्व उपनिषदनमें एकरूपसे जगतकी उत्पत्ति प्रतिपादनका प्रकार कह्या है. २-जाकूं ब्रह्मविचारसे यथार्थ ज्ञान नहीं होवे ताकूं लयचिंतनके निमित्त भी उत्पत्तिक्रम कह्या है.जा क्रमते उत्पत्ति कही है तासे विपरीतक्रमते लयचिंतन करे ता लयचिंतनसे अद्वैतमें बुद्धि स्थित होवे है सो लयचिन्तनका प्रकार पंचीकरणमें वार्त्तिककार सुरेश्वराचार्यने कह्या है. ३-यह ग्रंथ उत्तम जिज्ञासुके निमित्त है, याते जगत्की उत्पत्ति और लयका प्रकार नहीं लिखा और सागररूप है याते संक्षेपते दिखावैं हैं, शुद्धब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति होवै नहीं. काहेते ? शुद्धब्रह्म असंग, है और अक्रिय है. किन्तु मायाविशिष्ट जो ईश्वर तासे

जगत्की उत्पत्ति होवै है. याते माया और ईश्वरका स्वरूप प्रतिपादन करैं हैं॥१६३॥

कवित्त।

जीव ईश भेदहीन चेतन स्वरूप माहिं,
माया सो अनादि एक शांत ताहि मानिये।
सत ओ असतते विलक्षण स्वरूप ताको,
ताहिको अविद्या और अज्ञानहु बखानिये॥
चेतनसामान्य न विरोधी ताको साधक है,
वृत्तिमें आरूढ वा विरोधी वृत्ति जानिये।
मायामें आभास अधिष्ठान अरु माया मिल,
ईश सरवज्ञ जगहेतु पहिचानिये॥१६४॥

जीव ईश्वर भेदरहित जो शुद्ध चेतन ताके आश्रित माया है सो माया अनादि कहिये आदिरहित है. आदि नाम उत्पत्ति है. १–जो मायाकी उत्पत्ति अंगीकार करै तौ मायाके कार्य प्रपंचसे तौ पुत्रसे पिताकी न्याईं मायाकी उत्पत्ति बनै नहीं. चेतनसेही मायाकी उत्पत्ति माननी होवेगी. २–जीवभाव और ईश्वरभाव तौ मायाके कार्य हैं मायाकी सिद्धि हुए बिना जीव ईश्वरका स्वरूप असिद्धि है याते जीवचेतन वा ईश्वरचेतनसे मायाकी उत्पत्ति कहना असंभव है. ३–शुद्ध चेतन असंग है. अक्रिय है, निर्विकार है, ताते मायाकी उत्पत्ति माने विकारी होवेगा और शुद्धचेतनसे मायाकी उत्पत्ति होवे

तौ मोक्षदशाविषे माया फिर उपजेगी याते मोक्षनिमित्त साधन निष्फल होवेंगे, इस रीतिसे माया १–उत्पत्ति-रहित है, याते अनादि है २–एक है. ३–सांत कहिये अंतवाली है ज्ञानते मायाका अन्त होवे है, ४–सत् असतसे विलक्षण है, जाका तीनिकालमें बाध होवे नहीं सो सत् कहिये है ऐसा चेतन है, मायाका ज्ञानते बाध होवे है, याते सत्से विलक्षण है. जाकी तीनिकालमें प्रतीति होवे नहीं सो शशशृंग, वंध्यापुत्र, आकाशफूल आदिक असत् कहिये हैं ज्ञानसे पूर्व माया और ताका कार्य प्रतीति होवे है. जाग्रतविषे "मैं अज्ञानी हूं ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" इस रीतिसे माया प्रतीति होवे है और स्वप्नके विषे जो नानापदार्थ प्रतीत होवे हैं तिनका उपादानकारण माया है.

सुषुप्तिसे अनंतर अज्ञानकी इस रीतिसे स्मृति होवे है–"मैं सुखसे सोया कछु भी न जानताभया" सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवे नहीं याते सुषुप्तिमें अज्ञान का भान होवे है सो अज्ञान और माया एक ही है तिनका भेद नहीं या प्रकारते तीनोंअवस्थाविषे मायाकी प्रतीति होवे है याते असत्से विलक्षण है इस रीतिसे सत् असत्से विलक्षण जो माया ताका कार्य भी सत् असत्से विलक्षण है, सत् असत्से विलक्षणकूं ही अद्वैत मतमें मिथ्या कहे हैं और अनिर्वचनीय कहे हैं

याते माया और ताके कार्यते द्वैतकी सिद्धि होवै नहीं काहेते? जैसे चेतन सद्रूप है तैसे माया और कार्य सद्रूप होवे तो द्वैत होवै सो माया और ताका कार्य सत् असतसे विलक्षण होनेते मिथ्या है मिथ्या-पदार्थसे द्वैत होवे नहीं, जैसे--स्वप्नके पदार्थ मिथ्या है तिनते द्वैत होवै नहीं.

१--जीव ईश्वरविभागरहित शुद्धब्रह्मके आश्रित माया है. २--शुद्धब्रह्मकूंहीआच्छादन करै है,जैसे गेहके आश्रित अंधकार गेहकूं आच्छादन करै हैं या पक्षको स्वाश्रय स्वविषय पक्ष कहैं हैं १--स्व कहिये शुद्धब्रह्म ही आश्रय २--स्व कहिये शुद्धब्रह्महीविषय कहिये मायाते आच्छादित है. अर्थ--यह ढका है संक्षेप शारीरकविवरण वेदांतमुक्तावली, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतदीपिका आदिक ग्रंथकारोंने स्वाश्रय स्वविषयही अज्ञान अंगीकार किया है. वाचस्पतिका यह मत है-१अज्ञानजीवके आश्रित है २--ब्रह्मकूं विषय करै है, १--"मैं" अज्ञानी ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" या प्रतीतिसे "मैं" शब्दका अर्थ जीव "अज्ञानी" कहनेते अज्ञानका आश्रय भान होवे है २--"ब्रह्मकूं नहीं जानू हूं" याते अज्ञानका विषय ब्रह्म प्रतीत होवे है इस रीतिसे अज्ञान जीवके आश्रित और ब्रह्मकूं विषय कहिये आच्छादन करे है सो अज्ञान एक नहीं किंतु अनंत हैं काहेतें? एक जो अज्ञान मानै तो

एक अज्ञानकी एकके ज्ञानते निवृत्ति हुयेतै औरनकूं अज्ञान और ताका कार्य संसार प्रतीत नहीं हुवा चाहिये २-जो ऐसे कहैं आजतक किसीकूं ज्ञान हुवा नहीं तो आगे भी किसीकूं ज्ञान नहीं होवेगा. याते श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे याते अनंत जीवनके आश्रित अनंत अज्ञान अनंत हैं जीवनके अनंत अज्ञान कल्पित ईश्वर अनंत और ब्रह्मांड अनंत हैं. जो जीवकूं ज्ञान होवे ताका अज्ञान ईश्वर ब्रह्मांडकी निवृत्ति होवे है.जाकूं ज्ञान नहीं होवे ताकूं बंध रहै है. यह वाचस्पतिका मत है; सो समीचीन नहीं. काहेतैं १-"ईश्वर-जीवके अज्ञानसे कल्पित है." यह कहना श्रुति स्मृतिपुराणते विरुद्ध है. २-ईश्वर अनंत और जीव जीवमें सृष्टिका भेद यह भी विरुद्ध है. याते नाना अज्ञान मानने असंगत हैं और नाना अज्ञान मानिके ईश्वर और सृष्टि एक मानैं तो बने नहीं. काहेते? जीवईश्वर प्रपंच अज्ञानकल्पित है अनंत अज्ञान मानेते, एक एक अज्ञानकल्पित जीवकी न्याईं ईश्वर और प्रपंच भी अनंतही होवेंगे. याहीते वाचस्पतिने अनंत ईश्वर और अनंत सृष्टि कही हैं.याते अज्ञान एक है. यह मत समीचीन है.

सो एक अज्ञान भी जीवके आश्रित नहीं,किंतु शुद्ध-ब्रह्मके आश्रित है. काहेते? १-जीवभाव अज्ञानका कार्य है. सो अज्ञान स्वतंत्र कभी भी रहै नहीं, याते निरा-

श्रय अज्ञानसे तौ जीवभाव बनै नहीं, प्रथम किसीके आश्रित अज्ञान होवे तब अज्ञानका कार्य जीवभाव होवे. २–जीवपनेकी न्याईं ईश्वरताभी अज्ञानका कार्य है. ताके आश्रित भी अज्ञान नहीं, किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित अनादि अज्ञान है. अनादि जो चेतन और अज्ञान तिनका संबंध भी अनादि चेतनज्ञानके अनादिसंबंधसे जीवभाव ईश्वरभाव भी अनादि है परंतु जीवभाव और ईश्वरभाव अज्ञानके अधीन हैं. याते अज्ञानका कार्य कहिये है. यद्यपि "मैं अज्ञानी हूँ" इस रीतिसे जीवके आश्रित अज्ञान प्रतीत होवे है तथापि शुद्धब्रह्मके आश्रित जो अज्ञान ताका जीवकूं "मैं अज्ञानी हूं" यह अभिमान होवे है, १–जीव अज्ञानका कार्य है याते अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय जीव बनै नहीं, किन्तु शुद्धब्रह्मही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है. २–शुद्धब्रह्म अधिष्ठानके आश्रित जो अज्ञान सो ता ब्रह्मकूंही अच्छादन करै है तिसते अनंतर "मैं अज्ञानी हूं" इस रीतिसे अज्ञानका अभिमानी रूप आश्रय जीव होवे है. या प्रकारते स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान है।

सो अज्ञान यद्यपि एक है और ज्ञानते निवृत्ति होवे है परंतु जा अंतःकरणमें अज्ञान होवे ता अंतःकरण अवच्छिन्न चेतनमें स्थित जो अज्ञानका अंश ताकी निवृत्ति

ज्ञानसे होवे है सोई मुक्त होवे है. जा अंतःकरणमें ज्ञान नहीं होवे तहां अज्ञानका अंश रहे है और बंध रहे है. या रीतिसे एक अज्ञानपक्षमें बंधमोक्ष व्यवहार बनैहै. और किसीकूं वाचस्पतिकी रीतिसे नाना अज्ञानवादही बुद्धिमें प्रवेश होवे तौ वहभी अद्वैतज्ञानका उपाय है ताके खंडनमें कछु आग्रह नहीं जिस रीतिसे जिज्ञासुकूं अद्वैतबोध होवे तैसे बुद्धिकी स्थिति करै, शुद्धब्रह्मके आश्रित जो माया ताकूं अविद्या और अज्ञान कहै हैं. १--अचिन्त्यशक्ति और युक्तिकूं नहीं सहारे याते माया कहै हैं. २--विद्याते नाश होवे है, याते अविद्या कहैहैं. ३--स्वरूपका आच्छादन करैहै; याते अज्ञान कहैहैं १--जो चेतनके आश्रित है सो सामान्य चेतनताका विरोधी नहीं, किन्तु सामान्यचेतन मायाका साधक है, सत्तास्फुरण देवे है. २--वृत्तिमें आरूढ कहिये स्थित सो अथवा चेतनसहित वृत्ति ताकी विरोधी जानिये. कवित्तके तीनिपादनते मायाका स्वरूप कह्या.

"मायामें आभास" इत्यादि चतुर्थपादसे ईश्वरका स्वरूप कहैहैं १--शुद्धसत्त्वगुणसहित माया, २--मायाका अधिष्ठान चेतन, ३ मायामें आभास, तीनों मिले ईश्वर कहिये है, सो ईश्वर सर्वज्ञ है. सोई जगत्का हेतु कहिये कारण है. कारण दो प्रकारका होवेहै--एक तो उपादानकारण होवेहै, २--निमित्तकारण होवेहै. जाका कार्यके

स्वरूपमें प्रवेश होवे और जा विन कार्यकी स्थिति होवे नहीं सो उपादानकारण कहिये है. जैसे मृत्तिका घटका उपादान कारण है. घटके स्वरूपमें ताका प्रवेश है और मृत्तिका विना घटकी स्थिति नहीं. जाके स्वरूपमें प्रवेश नहीं किंतु कार्यकूं भिन्नस्थित होयके करै और ताके नाशते कार्य बिगरै नहीं सो निमित्तकारण कहिये है. जैसे–घटके कुलाल दंड चक्र आदिक निमित्तकारण हैं. घटके स्वरूपमें तिनका प्रवेश नहीं घटसे भिन्न कहिये किनारे स्थित होयके घटकी उत्पत्ति करै है और उत्पत्ति हुये पीछे कुलाल दंड चक्र आदिकनके नाशते घट बिगरै नहीं. इस रीतिसे उपादान और निमित्त दो प्रकारका कारण होवे है.

जगत्‌का उपादान और निमित्त दोनों प्रकारते ईश्वरही कारण है. जैसे एकही मकरी जालेका उपादानकारण और निमित्तकारण है और जो ऐसे कहैं–१ मकरीके जडशरीर जालेका उपादानकारण २–मकरीके शरीरमें जो चेतनभाग सो निमित्तकारण है याते एक ईश्वरको निमित्तकारण और उपादानकारण माननेमें कोई दृष्टांत नहीं तो मकरीके न्याईं १--ईश्वरका शरीर जड माया जगत्‌का उपादान कारण. २--चेतनभाग निमित्त कारण इस रीतिसे एकही ईश्वर जगत्‌का उपादान और निमित्त कारण है तामें मकरीका दृष्टांत और मुख्य दृष्टांत स्वप्न

है. १–जा समय जीवनके कर्मफल देनेको संमुख नहीं होवे तब प्रलय होवे है. २–जीवनके कर्म फल देनेको सम्मुख होवे तब सृष्टि होवे है. इस रीतिसे जीव कर्मके अधीन सृष्टि है याते जीवका स्वरूप कहै हैं ॥ १५४॥

दोहा।

मलिनसत्त्व अज्ञानमें, जो चेतन आभास।
अधिष्ठानयुत जीव सो, करत कर्मफलआस॥ १५५॥

१–रजोगुण तमोगुणकूं दाबिलेवे सो शुद्धसत्त्वगुण कहिये है, २-रजोगुण तमोगुणसे आप दबै सो मलिन-सत्त्वगुण कहिये है. १ ता मलिनसत्त्वगुणसहित अज्ञानके अंशमें जो चेतनका आभास. २–अज्ञान और ३–ताका अधिष्ठान कूटस्थ, तीनों मिले जीव कहिये हैं. सो जीव कर्म करै है और फलको आशा करै है.

ता जीवके कर्मनके अनुसार ऊँच नीच भोगके निमित्त ईश्वर सृष्टि रचे हैं याते ईश्वरमें विषमदृष्टि और क्रूरता नहीं और जो ऐसे कहैं:--सबसे प्रथम सृष्टिसे पूर्व कर्म नहीं और प्रथम सृष्टिमें ऊँच नीच शरीर और भोग ईश्वरने रचे हैं याते ईश्वर विषमदृष्टि है. सो बनै नहीं. काहेते? संसार अनादि है. उत्तर उत्तर सृष्टिमें पूर्व पूर्व सृष्टिके कर्म हेतु हैं सर्वसे प्रथम कोई सृष्टि नहीं, याते ईश्वरमें दोष नहीं ॥ १५५ ॥

कवित्त।

जीवनके पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईश,
इच्छा होय जीव भोग जग उपजाइये।
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचैं तहां,
शब्द स्पर्श रूप रस गंध गुण गाइये॥
सत्त्व अंश पंचनको मेलि उपजत सत्त्व, = अन्तः करण
रजोगुण अंश मिलि प्राण त्यों उपाइये।
एक एक भूत सत्त्व अंश ज्ञानइंद्रि रचै,
कर्मइंद्रि रजोगुण अंशते लगाइये॥ १९६॥

१--जब जीवनके कर्म भोग देनेसे उदासीन होवे तब प्रलय होवै है- प्रलयमें सर्व पदार्थनके संस्कार मायामें रहै हैं याते जीवनके कर्मभी जो बाकी रहे थे सो सूक्ष्म होयके मायामें रहै हैं. २-जब कर्मभोग देनेकूं सन्मुख होवै, तब ईश्वरकूं यह इच्छा होवै है "जीवनके भोगनिमित्त जगत उपजाइये"

ऐसी ईश्वरकी इच्छाते माया तमोगुणप्रधान होवै है ता तमोगुणप्रधानमायाते नभ, वायु, तेज, जल, भूमि ये पंचभूत रचे जावे हैं तिन भूतनमें क्रमते शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच गुण होवैं हैं. १--मायाते शब्द-सहित आकाशकी उत्पत्ति२-आकाशते वायुकी उत्पत्ति वायु आकाशका कार्य है, याते आकाशका शब्दगुण वायुमें होवै है, अपना गुण स्पर्श होवै है. ३--वायुते

तेजकी उत्पत्ति और तेजमें आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श होवे है, अपना रूप होवे है. ४--तेजते जलकी उत्पत्ति, आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श तेजका रूप जलमें होवे है, अपना रस होवे है,५--जलसे पृथिवीकी उत्पत्ति और आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श तेजका रूप, जलका रस, पृथ्वीमें होवे है, पृथिवीका गंध होवे है. १--आकाशमें प्रतिध्वनिरूप शब्द है. २--वायुमें सीसीशब्द और उष्णशीतकठिनते विलक्षण स्पर्श है. ३--अग्निरूपतेजमें, भुकभुकशब्द और उष्ण स्पर्श और प्रकाशरूप है, ४--जलमें चुलचुलशब्द शीतस्पर्श शुक्लरूप, मधुररस है.क्षार तथा कटु पृथिवीके सम्बंधसे जल प्रतीत होवे है जलका रस मधुरही है.सो मधुरता हरीतकी आदिक भक्षण करिके जलपान कियेते प्रगट होवे है.५--पृथ्वीमें कट कट शब्द उष्णशीतसे विलक्षण कठिनस्पर्श है. श्वेत, नील, पीत, रक्त, हरितआदि रूप हैं. मधुर, अम्ल, क्षार, कटु, कषाय, तिक्त रस हैं. सुगन्ध और दुर्गन्ध दो प्रकारका गंध है,इस रीतिसे १--आकाशमें एक, २--वायुमें दोय, ३--तेजमें तीन, ४--जलमें चारि, ५--पृथ्वीमें पांचगुण हैं. तिनमें एक-एक अपना है अधिक कारणके हैं और सर्वका मूल-कारण ईश्वर है. तामें माया और चेतन दो भाग हैं.

१–मिथ्यापना मायाका भाग है. २–सत्तास्फूर्ति सर्वभूतनमें चेतनका भाग है. कवित्तके दो पादका यह अर्थ है.

पंचभूतनका सत्त्वगुण अंश मिलके सत्त्व कहिये अंतःकरणकूं उपजावे है. अंतःकरण ज्ञानका हेतु है और ज्ञानकी उत्पत्ति सत्त्वगुणते अंगीकार करी है.याते अंतःकरण भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है और पंचभूतनके कार्य पंच ज्ञानइंद्रिय तिन सबका सहायक है.याते पञ्चभूतनके मिले सत्त्व गुणते अंतःकरणकी उत्पत्ति कही है. १–देहके अन्तर कहिये भीतर है और करण कहिये ज्ञानका साधनहै याते अन्तःकरण कहिये है. २–भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है.याते अंतःकरणका सत्त्व भी नामहै.

अन्तःकरणका जो परिणाम ताको वृत्ति कहे हैं सो अन्तःकरणकी वृत्ति चारि हैं१–पदार्थके भले बुरे स्वरूपकूं निश्चय करनेवाली वृत्ति बुद्धि कहिये है. २--संकल्प विकल्पवृत्ति मन कहिये है, ३--चिंतावृत्ति चित्त कहिये है. "अहं" ऐसी अभिमानवृत्ति अहंकार कहिये है. पंचभूतनके मिले रजो गुण अंशते प्राणकी उत्पत्ति होवे है, सो प्राण क्रियाभेदतेऔर स्थान भेदते पांच प्रकारका है. १--जाका हृदयस्थान और क्षुधा, पिपासा, क्रिया सो प्राण कहिये है. २--जाका गुदस्थान मूत्रमलअधोनयन क्रिया सो अपान. ३--जाका नाभिस्थान और भुक्तपीत अन्न जलकूं पाचन योग्य सम करनेकी क्रिया

सो समान. ४—जाका कंठस्थान और श्वास क्रिया, सो उदान, ५—जाका सर्वशरीर स्थान रसमेलन क्रिया, सो व्यान और कहूँ नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, पंचप्राण अधिक कहे हैं. तिनकी उद्गार, निमेष, छींक, जंभाई, मृतशरीरफुलावन ये क्रमते क्रिया कही हैं.—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पंचनके रजोगुण अंशते एकएककी क्रमसे उत्पत्ति कही है. और अपान, समान, प्राण, उदान, व्यान इनकी भी पृथ्वी आदिक एकएकके रजोगुण अंशते उत्पत्ति कहीहै. सर्वके मिले रजोगुण अंशते नहीं परन्तु अद्वैत सिद्धांतमें यह प्रक्रिया नहीं. काहेतैं? विद्यारण्यस्वामीने तथा पंचीकरणमें वार्तिककारने सूक्ष्मशरीरमें और पंचकोशनमें नाग, कूर्म आदिकनका ग्रहण किया नहीं. और ति में अपान आदिक पंचप्राणकी उत्पत्ति भी भूतनके मिल रजोगुण अंशते कहीहै. याते १—एकएकके रजोगुण अंशत अपान आदिकनकी उत्पत्ति कथन असंगतहै २—सूक्ष्मशरीरमें नाग कूर्म आदिकनका ग्रहण असंगत है, पंचप्राणकाही सूक्ष्म शरीरमें ग्रहण है. प्राण विक्षेपरूप हैं और विक्षेपस्वभाव रजोगुणका है, याते भूतनके रजोगुण अंशते प्राणकी उत्पत्ति कहीं है. यह तृतीयपादका अर्थ है ।

१--एकएक भूतका सत्त्वगुण अंश पंच ज्ञानइंद्रिय रचै हैं. २- एक एकका रजोगुण अंश एकएक कर्म-

इन्द्रिय रचै है. १ आकाशके सत्त्वगुणते श्रोत्र,२ वायुके सत्त्वगुण अंशते त्वक ३-तेजके सत्त्वगुण अंशते नेत्र, ४-जलके सत्त्वगुण अंशते रसना, ५-पृथिवीके सत्त्वगुण अंशते घ्राण होवे है. ये पंचेंद्रिय ज्ञानके साधनहैं याते ज्ञानेंद्रिय कहिये हैं और ज्ञान सत्त्वगुणते होवे है, याते भूतनके सत्त्वगुणते उत्पत्ति कही है. श्रोत्रेंद्रिय आकाशके गुणको ग्रहण करै है. याते श्रोत्रेंद्रियकी आकाशते उत्पत्ति कही तैसे जा भूतके गुणको जो इंद्रिय ग्रहण करै ता भूतसे ता इंद्रियकी उत्पत्ति कही है.

१-आकाशके रजोगुण अंशते वाक्इंद्रियकी उत्पत्ति, २-वायुके रजोगुण अंशते पाणिकी, ३-तेजके रजोगुण अंशते पादकी, ४-जलके रजोगुण अंशते उपस्थकी, ५ पृथिवीके रजोगुण अंशते गुदाकी उत्पत्ति होवे है, स्त्रीकी योनि और पुरुषके मेढ्रमें जो विषयानंदका साधन इंद्रिय सो उपस्थ कहिये है. कर्म नाम क्रियाका है. ये पांच इंद्रिय क्रियाके साधन हैं: याते कर्मेन्द्रिय कहिये हैं. क्रिया रजोगुणते होवे है, याते भूतनके रजोगुण अंशते इनकी उत्पत्ति कही है ॥ १५६ ॥

सवैया-छन्द।

भूत अपञ्चीकृत औ कारज,इतनी सूक्ष्मसृष्टि पिछान।
पंचीकृत भूतनते उपज्यो, स्थूलपसारो सारो मान ॥
कारण सूक्ष्म स्थूल देह अरु पंचकोश इनहींमें जान।

करिविवेकलखिआतमन्यारो, मुंजइषीकातेज्यो भान ९७

अपंचीकृतभूत और तिनका कार्य अंतःकरण प्राण कर्मइंद्रिय; ज्ञानइंद्रिय, इतनी सूक्ष्मसृष्टि कहिये है. सूक्ष्म सृष्टिका ज्ञान इंद्रियते होवे नहीं. नेत्रनासिकादिक गोलक तौ इंद्रियनके विषय हैं, परंतु तिन गोलकनमें स्थित जो इंद्रिय सो काहू इंद्रियनके विषय नहीं. सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्तिसे अनंतर ईश्वरकी इच्छाते स्थूल सृष्टिके निमित्त भूतनका पंचीकरण होता भया.

पंचीकरण दो भांतिसे कहा है:—१—एकएक भूतके दोदो भाग सम होयके एक एकभागके चारि चारि भाग भये, पांचभूतनका आधा आधा भाग प्रथम ज्योंका त्यों रहा है, आधेआधेभागके जो चारिचारि भाग सो पृथक् रहे. बडे अर्धभागनमें अपने अपने भागकूं छोडिके मिलते अर्धभाग सब भूतनमें अपना और अर्धभाग अपनेसे इतर च्यारि भूतनका मिलिके पंचीकरण कहावै है.

२—दूसरा यह प्रकार है—एक एक भूतके दो दो भाग भये सो सम नहीं. किंतु एक भाग चारि अंशका और पंचम अंशका एक भाग इस रीतिसे न्यूनअधिक दो दो भाग भये तिनमें सबके अधिक भाग ज्योंके त्यों पृथक् स्थिर रहे और पंचभूतनके न्यून जो पंच भाग, तिनके एकएक भागके पंचपंच भाग करिके पृथक् स्थित, अधिक पंचभागनमें एकएक भागके मिलि पंचीकरण

होवे है. १—प्रथमपक्षमें एक भागके चारि भाग पृथक् रहे, आधे आधे भागनमें अपने भागकूं छोडिके मिले. २-दूसरे पक्षमें न्यून भागके पंच भाग पृथक् रहे. अधिक पंचभागनमें अपने भागसहितमें मिले. १—प्रथमपक्षमें पंचीकृत भूतनमें अपना अंश अर्ध और अर्ध अंश औरनका. २—दूसरे पक्षमें पंचीकरण कियेते अपने अंश इक्कीस औरनके अंश चारि और दूसरे पक्षकी सुगमरीति यह है—एक एक भूतके पचीस पचीस भाग होयँ. इक्कीस इक्कीस भाग, और चारि चारि भाग पृथक् भये चारि चारि भागनमेंसे एक एक भाग इक्कीस२भागनमें मिले, अपने इक्कीस भागनकूं छोडिके, इस रीतिसे दोप्रकारका पंचीकरण कह्या है. एक एक भूतमें पांच पांच भूत मिलायके करनेका नाम पंचीकरण है. जिन भूतनका पंचीकरण किया है तिनकूं पंचीकृत कहैं हैं.

तिन पंचीकृत भूतनते १—इंद्रियनका विषय स्थूल ब्रह्मांड होता भया. २—ता ब्रह्मांडके अंतर, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक ये सात भुवन ऊपरके होते भये. ३—अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल, महातल ये सात लोक नीचेके होते भये. ४—तिन चतुर्दशलोकनमें जीवनके भोग्य अन्नादिक और भोगका स्थान देव मनुष्य पशु आदि स्थूलशरीर होते भये. यह संक्षेपते सृष्टिका

निरूपण किया और मायाके कार्यका विस्तारसे निरूपण कियेते कोटिब्रह्माकी उमरते भी मायाकृतपदार्थनिरूपणका अंत होवे नहीं, यह वाल्मीकिने अनेक इतिहासनते वाशिष्ठमें निरूपण किया है. यह सवैयाके दो पादनका अर्थ है.

तृतीयपादका अर्थ यह हैः—इनहीमें कहिये माया और ताके कार्यमें तीन शरीर और पंचकोश हैं. १—शुद्ध सत्त्वगुणसहित माया ईश्वरका कारणशरीर है और मलिनसत्त्वगुणसहित अविद्या अंश जीवका कारणशरीर है. २—उत्तर शरीरके आरंभके पंच सूक्ष्मभूत, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंचप्राण, पंचकर्मइंद्रिय, पंचज्ञानइन्द्रिय जीवका सूक्ष्मशरीर है और सर्वजीवके सूक्ष्म शरीरही मिलके ईश्वरका सूक्ष्मशरीर है. ३—संपूर्ण स्थूल ब्रह्मांड ईश्वरका स्थूलशरीरहै.और जीवनके व्यष्टिस्थूलशरीर प्रसिद्ध है. इन तीनि शरीरनमेंही पंचकोश हैं. १—कारणशरीरकूं आनंदमयकोश कहै है. विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, तीनि कोश सूक्ष्मशरीरमें हैं. पंचज्ञानेंद्रिय और निश्चयरूपअंतःकरणकी वृत्ति बुद्धि विज्ञानमयकोश कहिये हैं. पंचज्ञानइंद्रिय और संकल्प विकल्प अंतःकरणकी वृत्ति मन, मनोमयकोश कहिये है. पंचप्राण और पंचकर्मेन्द्रिय प्राणमयकोश है.५—स्थूल

शरीरको अन्नमयकोश कहै हैं.इस रीतिसे तीनि शरीरनमें ही पांच कोश हैं.--ईश्वरके शरीरमें ईश्वरके कोश हैं. २--जीवके शरीरनमें जीवके कोश हैं. कोश नाम म्यानका है. म्यानकी न्याई पंचकोश आत्माके स्वरूपकूं आच्छादन करै हैं याते अन्नमयादिक कोश कहिये हैं. अनेक मंदमति पुरुष पंचकोशनमें जो अनात्मपदार्थ है, तिनमें किसी एककूं आत्मा मानिके मुख्यसाक्षी आत्मस्वरूपते विमुखही रहै है. याते अन्नमयादिक आत्मस्वरूपको आच्छादान करै हैं.

तहां कितने पामर विरोचनमतके अनुसारी स्थूलशरीररूप अन्नमय कोशको ही आत्मा कहैं हैं, और यह युक्ति कहैहैं. १--जामें अहंबुद्धि होवे सो आत्माहै सो अहंबुद्धि स्थूलशरीरमें होवे है. मैं मनुष्य हूं. मैं ब्राह्मण हूँ ऐसी प्रतीति सर्वको होवे है, औरमनुष्यपना,ब्राह्मणपना स्थूलशरीरमेंही है याते स्थूलशरीर ही अहंबुद्धिका विषय होनेते आत्मा है. २--किंवा जामें मुख्य प्रीति होवे सो आत्मा है. स्त्री, पुत्र, धन, पशुआदिक स्थूलशरीरके उपकारक होवे तो तिनमें प्रीति होवे है और स्थूलशरीरके उपकारक नहीं होवे तो प्रीति होवे नहीं जाके निमित्त अन्य पदार्थनमें प्रीति होवे ता स्थूल शरीरमेंही मुख्य प्रीति है याते स्थूलशरीरही आत्मा है ता स्थूलशरीरका वस्त्र, भूषण, अंजन, मंजन, नानाविध

भोजनसे शृंगार पोषणही परमपुरुषार्थ है यह असुर-स्वामी विरोचनका सिद्धांत है.

कोऊ ऐसे कहै हैं:-स्थूल शरीरही आत्मा नहीं किंतु १-स्थूल शरीरमें जाके होनेते जीवनव्यवहार होवे है और जाके नहीं होनेते मरणव्यवहार होवे है तो आत्मा स्थूलशरीरसे भिन्न है जीवन मरण इंद्रियके अधीन है, जितने काल शरीरमें इंद्रिय होवें उतने काल जीवन है और कोऊ इंद्रिय न होवे तब मरण कहिये है और "मैं देखूं हूँ" "मैं सुनूं हूँ" "मैं बोलूं हूँ" इसरीतिसें अहं-बुद्धि भी इंद्रियनमें होवे है. याते इंद्रिय ही आत्मा है.

हिरण्यगर्भके उपासक प्राणकूं आत्मा कहै हैं तामें यह युक्ति कहै हैं:-जब मरणसमय मूर्छा होवे है तब ताके सम्बंधी पुत्रादिक प्राण शेष होवे तो जीवन जानैं हैं और प्राण शेष न होवें तो मरण जानैं हैं२--किंवा शरीरमें नेत्रइंद्रिय नहीं होवे तो अंधाशरीर रहै है. श्रो-त्रसे विना बधिर रहै है. वाक्‌बिना मूक रहै है, ऐसे जो इंद्रिय नहीं होवे ताके व्यापारसे बिनाभी शरीर स्थितही रहै और प्राणसे बिना तिसी क्षणमें श्मशानके समान अमंगल भयंकर होयके गिरै है. ३--"मैं देखूं हूं" "सुनूँ हूँ" या प्रतीतिसे भी इंद्रियनते भिन्नही आत्मा सिद्ध होवै है. काहेते ? नेत्रस्वरूप "मैं देखूं हूँ" श्रवण-स्वरूप "मैं सुनूं हूँ" जो ऐसी प्रतीति होवे तो इंद्रिय-

रूप आत्मा सिद्ध होवे किंतु "मैं नेत्रवाला देखूँ हूँ, श्रोत्रवाला मैं सुनूँ हूँ" ऐसी प्रतीति होवे है. याते इंद्रिय-यनते भिन्नही आत्मा है. ४—सुषुप्तिमें सर्वइंद्रियनका अभाव है तौ भी प्राणके होनेते जीवनव्यवहार होवे है. याते जीवन मरण भी इंद्रियनके अधीन नहीं किंतु स्थूलशरीर और प्राणके वियोगको मरण कहै हैं. याते जीवन मरण प्राणके ही अधीन हैं, सोई आत्मा है.

कोई ऐसे कहै हैं:—१—प्राण जड है, याते घटकी न्याई अनात्मा है. २—बंध मोक्ष मनके अधीन है विषयमें आसक्त जो मन सो बंधनका हेतु है. विषय वासनारहित मन मोक्षका हेतु है. ३—मनके सम्बंधतेंही इंद्रियज्ञानके हेतु हैं. मनके सम्बंध विना इंद्रियनतें ज्ञान होवै नहीं याते सर्व व्यवहारका हेतु मन है सोई आत्मा है.

क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध यह कहैं हैं:—मनका व्यापार बुद्धिके अधीन है, काहेते ? बुद्धिकाही आकार मन होवै है, याते क्षणिक विज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है मन नहीं. यह तिनका अभिप्राय है:—१—संपूर्णपदार्थ विज्ञानकेही आकार हैं. २—सो विज्ञानप्रकाशरूप है ३—क्षणक्षणमें विज्ञानके उत्पत्ति नाश होवे हैं,पूर्वविज्ञानके समान अन्य विज्ञानकी उत्पत्ति हुयेते पूर्वविज्ञानका नाश होवै है. तैसे तृतीयविज्ञानकी उत्पत्ति और द्वितीयविज्ञानका नाश, चतुर्थकी उत्पत्ति, तृतीयका नाश होवै है. या

रीतिसे नदीके प्रवाहकी न्याई विज्ञानकी धारा बनी रहै है. सो विज्ञानकी धारा दो प्रकारकी है. १–एक तो आलयविज्ञानधारा है और दूसरी प्रवृत्ति विज्ञानधारा है. १–"अहं अहं" ऐसी विज्ञानधाराकूं आलस्यविज्ञानधारा कहैं हैं ताहीकूं बुद्धि कहै हैं २-" यह घट है, यह शरीर है " ऐसी विज्ञानधाराकूं प्रवृत्तिज्ञानधारा कहै हैं, आलयविज्ञान धारासे प्रवृत्तिविज्ञानधाराकी उत्पत्ति होवे है, मनका स्वरूपभी प्रवृत्तिविज्ञानधारामें है याते आलयविज्ञानधारारूप बुद्धिका कार्य है सो बुद्धि ही आत्मा है आलयविज्ञानधाराविषे प्रवृत्तिविज्ञानधाराका बाधचिंतनते निर्विशेषक्षणिकविज्ञानधाराकी स्थितिही तिनके मतमें मोक्ष है.इस रीतिसे विज्ञानवादी बुद्धिकूंही क्षणिकरूप और स्वयंप्रकाशरूप कल्पना करिके आत्मा कहै हैं और पूर्वमीमांसाका वार्त्तिककार भट्ट यह कहै हैं -विद्युत्की न्याई क्षणिकरूप आत्मा नहीं किंतु स्थिरस्वरूप आत्मा है. १-जडस्वरूप२ चेतनरूप है, यह ताका अभिप्राय है, १-सुषुप्तिसे जागिके पुरुष यह कहै है- " मैं जड होयके सोवता भया" याते आत्मा जडरूप है. २-ज्ञानकी स्मृति होवै है, अज्ञातकी स्मृति होवै नहीं आत्मस्वरूपसे भिन्न ज्ञानके सुषुप्तिमें और साधन नहीं. याते स्मृतिका हेतु सुषुप्तिमें ज्ञान है सो आत्माका स्वरूपही है इस रीतिसे खद्यो-

तकी न्याई आत्मा प्रकाश और अप्रकाशरूप है. १-ज्ञानरूप है, याते प्रकाशरूप है २-जड है, याते अप्रकाश रूप है सो प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप आनन्दमयकोश है. काहेते? सुषुप्तिमें चेतनके आभास सहित जो अज्ञान ताकूं आनंदमयकोश कहै है. तहां आभास तौ प्रकाशरूप और अज्ञान अप्रकाशरूप है. याते भट्टके मतमें आनन्दमयकोशही आत्मा है.

शून्यवादी बौद्ध यह कहैं हैं आत्मा निरंश है, याते एक आत्माको प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप कहना बनै नहीं और खद्योतका तो एक अंश प्रकाशरूप है और दूसरा अंश अप्रकाशरूप है. ताकी न्याई अंश रहित आत्माविषे उभयरूप कहना असंगत है. याते १-उभयरूपकी सिद्धिवास्ते आत्मा अंशसहितही मानना होवैगा. २-अंशवाले पदार्थ घटादिक हैं सो उत्पत्ति और नाशवाले होवैं हैं तैसे आत्मा भी अंशसहित होनेते उत्पत्ति नाशवालाही मानना होवैगा. १-जो उत्पत्तिनाशवाला पदार्थ होवै सो उत्पत्तिसे पूर्व और नाशते अनंतर असत होवै है. जो आदि अंतमें असत् होवे सो मध्यमें भी सत् होवै नहीं, किंतु मध्यमें भी असतही होवे है. याते आत्मा असद्रूप है २ तैसे आत्मासे भिन्न भी संपूर्ण पदार्थ उत्पत्तिनाशवाले हैं, याते असद्रूप हैं इस रीतिसे आत्मा और अनात्मा

समग्र वस्तु असद्रूप होनेते शून्यही परमतत्त्व है, यह शून्यवादी माध्यमिकबौद्धका मत है सो भी अज्ञानरूप आनंदमयकोशको प्रतिपादन करे है. काहेतैं ? अज्ञान तीनिरूपसे प्रतीत होवै है. १-अद्वैतशास्त्रके संस्काररहित जो मूढ, तिनको तौ जगत्रूप परिणामकूं प्राप्त अज्ञान सत्य प्रतीत होवै है. २-अद्वैतशास्त्रके अनुसार युक्तिनिपुण पंडितनकूं सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीयरूप अज्ञान और ताका कार्य जगत् प्रतीत होवै है. ३-ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त जो जीवन्मुक्त विद्वान् तिनकूं कार्यसहित अज्ञान तुच्छरूप प्रतीत होवै है. तुच्छ, असत्, शून्य ये तीन शब्द एकही अर्थकूं कहे हैं इस रीतिसे जीवन्मुक्तनकूं तुच्छ रूप जो प्रतीति होवै अज्ञान ताके विषे मोहित शून्यवादी परम पुरुषार्थकूं नहीं जानैं हैं, किन्तु तुच्छरूप आनंदमय कोशकूं ही आत्मा कहैं हैं.

पूर्वमीमांसाका एकदेशी प्रभाकर और नैयायिक यह कहैं हैं—आत्मा शून्यरूप नहीं. काहेते ? जो शून्यरूप आत्मा मानैं ताकूं यह पूछे हैं १-शून्यरूपका तैंने अनुभव किया है. २-अथवा नहीं ? १-जो कहै शून्यका अनुभव किया है तौ जाने शून्यका अनुभव किया है सो आत्मा शून्यसे विलक्षण सिद्ध होवै है. २-जो ऐसे कहै-शून्यरूपका अनुभव नहीं किया तौ शून्य

नहीं है, यह सिद्ध हुवा और इसरीतिसे शून्यते विलक्षण आत्मा है. १-ताकेविषे मनके संयोगते ज्ञान होवे है. २-ता ज्ञानगुणतें आत्मा चेतन कहिये है. ३--स्वरूपसे आत्मा जड है. ४ तैसे सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदिक गुण आत्माविषे है. तिनके मतमें भी आनंदमयकोशही आत्मा है ज्ञानगुण कहे है, काहेते ? आनंदमयकोशमें चेतनगूढ है, विवेकहीनकूं प्रतीत होवे नहीं और प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकूं सुषुप्तिमें ज्ञानहीन मानिके स्वरूपसे जड कहे हैं याते गूढचेतन आनंदमयकोशमें ही तिनकूं आत्मभ्रांति है और आत्मस्वरूप नित्यज्ञानकूं तो जीवमें मानैं नहीं किंतु अनित्यज्ञान मानैं हैं. अनित्य ज्ञानसिद्धांतमें अंतःकरण की वृत्ति बुद्धिरूप है. सो या रीतिसे प्रभाकर नैयायिक मतमें आनंदमयकोश आत्मा है और बुद्धि ताका गुण है; तिनका मत भी समीचीन नहीं. काहेते ? १--ज्ञानसे भिन्न जो जडवस्तु घटादिक हैं सो अनित्य हैं तैसे आत्मा भी ज्ञानस्वरूप नहीं होवैं तो घटादिकनकी न्याईं जड होनेतें अनित्य होवगा २--जो आत्मा अनित्य होवे तौ मोक्षके अर्थ साधन निष्फल होवेगा इस रीतिसे वेदांतवाक्यनमें विश्वासहीन अनेक बहिर्मुख पंचकोशनमें ही किसी पदार्थकूं आत्मा मानैं हैं और

यथार्थ

मुख्य आत्मास्वरूप साक्षीकूं नहीं जानैं हैं याते अन्नमयादिक आत्माके आच्छादक होनेते कोश कहिये हैं.

जैसे जीवके पंचकोश जीवके यथार्थस्वरूप साक्षीकूं आच्छादान करैहै. तैसे ईश्वरके समष्टिपंचकोश ईश्वरके यथार्थ स्वरूपकूं आच्छादान करै हैं, काहेते? ईश्वरका यथार्थ स्वरूप तौ तत्पदका लक्ष्य है ताकूं त्यागिके १-कोई तो मायारूप आनंदमयकोशविशिष्ट जो अंतर्यामीतत्पदका वाच्य ताकूंही परमतत्त्व कहे हैं, २--तैसे हिरण्यगर्भ, वैश्वानर. विष्णु. ब्रह्मा, शिव, गणेश, देवी, सूर्यसे आदिलेके अग्नि, कुदाल, पींपल, अर्क, वंश पर्यंत पदार्थनमें परमात्मा भ्रांति करै है. यद्यपि सब पदार्थनमैं लक्ष्यभाग परमात्मासे भिन्न नहीं, तथापि तिस तिस उपाधिसहितकूं जो परमात्मा मानै हैं सो तिनकूं भ्रांति है. या रीतिसे १-पंचकोशनते आवृत जो जीव ईश्वरका परमार्थस्वरूप तासे विमुख होयके देहादिकनमें आत्मभ्रांति करिके पुण्य पापकर्म करै है. २--अन्तर्यामीसे आदिलेके वंशपर्यंतकूं ईश्वरस्वरूप मानिके आराधन करिके सुख चाहै हैं. जैसी उपाधिका आराधन करैं हैं ताके अनुसारही तिनकूं फल होवै है. काहेते? कारण सूक्ष्म स्थूलप्रपंच सारा ईश्वरके तीनि शरीरनके अंतर्भूत है तामें उपासनाके अनुसार फलभी सर्वसे ही होवै है परंतु ब्रह्मज्ञान विना मोक्ष होवै नहीं.

जो मोक्षकी इच्छा होवे तो विवेकते जीवईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशते पृथक् करै. दृष्टांतः–जैसे मुंज और इषीका कहिये तूली मिली होवै है, तिनकूं तोरिके पृथक् करै हैं, तैसे विवेकते जीव ईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनते पृथक् जानै यह सवैयाका अर्थ है.सो विवेकका प्रकार दिखावै हैं॥ १६७॥

सवैया।

स्थूलदेहको भान न होवे,स्वप्नमाहिं लखि आतमज्ञान।
सूक्ष्मज्ञान सुषुप्ति समै नहिं,सुखस्वरूप है आतम भान॥
भासै भये समाधि अवस्था,निरावरण आतम न अज्ञान।
ऐसे तीनिदेहव्यभिचारी,आतम अनुगतन्यारोजान१६८

१–स्वप्न अवस्थामाहीं स्थूलदेहका भान होवे नहीं और आत्माका भान होवै है.२–तैसे सुषुप्ति अवस्थामें सूक्ष्मशरीरका ज्ञान होवे नहीं और सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपते भान कहिये प्रतीति होवे है. सुखका ज्ञान सुषुप्तिमें नहीं होवे तौ"मैं सुखसे सोता भया"ऐसी स्मृति जागिके नहीं हुई चाहिये, याते सुखका ज्ञान सुषुप्तिमें होवै है सो सुख विषयजन्य तौ सुषुप्तिमें है नहीं,किंतु आत्मस्वरूपही है सोआत्मा स्वयंप्रकाश है.याते सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपते सुषुप्तिमें भासे है. ३–निदिध्यासनका फल निर्विकल्पसमाधि अवस्थामें निरावरणकहिये अज्ञानकृत आवरणरहित आत्मा भासैहै

और न अज्ञान कहिये,कारणशरीर अज्ञान नहीं भासैहै. १—ऐसे तीनि देह व्यभिचारी हैं,एक अवस्थाकूं छोडिके दूसरी अवस्थामें भासैं नहीं. २—आत्मा अनुगत है. सर्व अवस्थामें भासै है, याते व्यापक है, या विवेकते तीनि शरीरनते आत्माकूं न्यारो जान.१—स्थूलशरीर तौ अन्नमयकोश है,२—कारणशरीर आनंदमय कोश है, ३—५ सूक्ष्मशरीरमें प्राणमय, मनोमय,विज्ञानमय,तीनि कोश हैं, याते तीनि शरीरनके विवेकते पंचकोशकाही विवेक होवे है, जैसे जीवका स्वरूप पंचकोशनते पृथक् है. तैसे ईश्वरका स्वरूप भी समष्टिपंचकोशनते पृथक् है और चतुर्थतरंगमें चतुर्विध आकाशके दृष्टांतसे जीव ईश्वरके लक्ष्यस्वरूपका विवेक विस्तारसे करि आये हैं और उत्तर तरंगमें अस्ति भाति प्रिय रूपके निरूपणमें तथा महावाक्यनके अर्थनिरूपणमें आत्माका परमार्थ स्वरूप प्रतिपादन करैंगे. याते इहां संक्षेपतेही आत्मविवेक कहा है. इस रीतिसे पंचकोशनते आत्माको न्यारा जाननेसे भी कृतकृत्य होवे नहीं किंतु जीव ब्रह्मके अभेद निश्चयवास्ते फेरि भी विचार कर्त्तव्य रहै है याते कर्त्तव्यका अभावरूप कृतकृत्यताकी सिद्धिवास्ते महावाक्यका अर्थ उपदेश करैं हैं ॥१५८॥

सवैया।

पंचकोशते आतम न्यारो, जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप ।

तातै भिन्न जु दीखैं सुनिये, सो मनहु मिथ्या भ्रमकूप ॥
मिथ्या अधिष्ठान न बिगारै, स्वप्नभीख न दरिद्री भूप ।
सबकछुकर्त्ता तऊ अकर्त्ता,तव असअद्भुत रूपअनूप १६९

हे शिष्य ! पंचकोशते आत्माकूं न्यारा जानिके सु कहिये सो आत्मा ब्रह्मस्वरूप है यह जानों, याकेविषे ऐसी शंका होवे हैः–आत्मा पुण्य पाप करै है तातै स्वर्ग नरक और मृत्युलोकमें नानाप्रकारके सुखदुःख भोगै है, ताकी ब्रह्मसे एकता बनै नहीं.

ताका समाधानः“तातै भिन्न जु दीखैं” इत्यादि तीनि पादनतें कहैहैं-ता ब्रह्मरूप आत्मासे भिन्न जो दीखै है और सुनिये है शास्त्रसे, स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप सो संपूर्ण मिथ्याभ्रम है, ऐसे मानो और मिथ्यावस्तु अधिष्ठानकूं बिगारै नहीं. जैसे १–स्वप्नकी मिथ्या भीख कहिये भिक्षा माँगनेतें भूप दरिद्री नहीं होवे है और मरुस्थलके मिथ्याजलतें भूमि गीली होवे नहीं, मिथ्या सर्पतें रज्जु विषसहित होवे नहीं याते सब कछु कर्त्ता कहिये संपूर्ण मिथ्या शुभअशुभ क्रियाका कर्त्ता है. तऊ कहिये तौ भी अकर्त्ता कहिये परमार्थसें कर्त्ता नहीं ऐसा तव कहिये तेरा अद्भुत आश्चर्यरूप अनूप कहिये उपमा रहित स्वरूप है. याका भाव यह हैः–१–ब्रह्मसे अभिन्न तेरे स्वरूपविषे स्थूलसूक्ष्मशरीर और तिनकी

शुभअशुभक्रिया और ताका फल जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख संपूर्ण अविद्यासे कल्पित है. २—ताके कल्पित सामग्रीसे ब्रह्मभाव बिगरे नहीं. याते ज्ञानते प्रथम भी आत्मा ब्रह्मस्वरूप ही है. ३—ताके विषे तीनि कालमें शरीर और ताके धर्मनका सम्बन्ध नहीं. किंतु आत्मा सदाही नित्यमुक्त है ताका ब्रह्मसे कभी भी भेद नहीं ॥ १६९ ॥

जो ऐसे कहैं: आत्मा सदाही नित्यमुक्तब्रह्मस्वरूप होवे तो श्रवणादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवेंगे.

ताका समाधान—इंदव छन्द। उत्तम सिद्धान्त

नाहिं खपुष्पसमान प्रपंच तु, ईश कहा करता जु कहावै,
साक्ष्य नहीं इमसाक्षिस्वरूप न, दृश्यनहोंदृककाहिजनावै
बन्धहु होय तु मोक्षबनैंअरु, होय अज्ञान तुज्ञान नशावै
जानियहीकरतव्यतजैंसब, निश्चलहोतहिनिश्चलपावै१६०

जीवन्मुक्तविद्वानकी दृष्टिमें अज्ञान और ताका कार्य तुच्छ है सो जीवन्मुक्तका निश्चय बतावैं हैं—हे शिष्य ! १—यह प्रपंच खपुष्पसमान कहिये आकाशके फूलकी न्याईं हानेते है नहीं, याते ताका कर्त्ता ईश्वर भी नहीं है. २—साक्षीका विषय अज्ञानादिक साक्ष्य कहिये है सो साक्ष्य नहीं. याते साक्षी भी नहीं, ३—तैसे दृश्यका प्रकाशक दृक् कहिये है और प्रकाशने योग्य देहादिक दृश्य कहिये है सो देहादिक दृश्य है नहीं याते दृक् भी

नहीं. यद्यपि; केवल कूटस्थ चैतन्यकूं साक्षी और दृक् कहे हैं ताका निषेध बनै नहीं. तथापि साक्ष्यकी अपेक्षाते साक्षी नाम और दृश्यकी अपेक्षाते दृक् नाम है. साक्ष्य और दृश्यका अभाव है, याते साक्षी और दृक् नामका निषेध करैं हैं, स्वरूपका नहीं, ४-बंध होवै तौ बंधकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै बंध नहीं याते मोक्षभी नहीं, ५-अज्ञान होवै तौ ताका ज्ञानसे नाश होवै अज्ञान है नहीं, याते ताका नाशक ज्ञान भी नहीं. यह जानिके कर्त्तव्य तजै कहिये-"मेरेकूं यह करनेयोग्य है" या बुद्धिकूं त्यागै, काहेते? १-यह लोक तथा परलोक तौ तुच्छ हैं तिनके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं. २--आत्मामें बंध नहीं याते मोक्षके निमित्तभी कर्तव्य नहीं. या रीतिसे आत्माकूं नित्यमुक्त ब्रह्मरूप जानिके जब निश्चल होवै, सब कर्तव्य त्यागै तब निश्चल कहिये अक्रियब्रह्म स्वरूप विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवै.

याका अभिप्राय यह है--यद्यपि आत्मा ज्ञानसे प्रथम भी नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूपही है, परंतु ज्ञानसे पूर्व आत्माकूं कर्त्ता भोक्ता मिथ्या मानिके सुखप्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिवास्ते अनेक साधन करैं हैं. तासे क्लेशकूं ही प्राप्त होवै है. जब उत्तम आचार्य मिलैं तौ वेदांत वाक्यनका उपदेश करै है. तिन वेदांतवाक्यनके श्रवणते ऐसा ज्ञान होवै है "मैं कर्त्ता भोक्ता नहीं, किंतु मैं ब्रह्म-

स्वरूप हूं, याते मेरेको किंचित् भी कर्त्तव्य नहीं" ऐसा जाननाही श्रवणादिकनका फल है और ब्रह्मकी प्राप्ति वेदांतश्रवणका फल नहीं; काहेते ? ब्रह्म अपना स्वरूपहै याते नित्यप्राप्त है ॥ १६० ॥

दोहा।

यही चिह्न अज्ञानको, जो मानै कर्त्तव्य।
सोई ज्ञानी सुघर नर, नहिं जाकूं भवितव्य ॥ १६१ ॥

जो कर्त्तव्य माने सो अज्ञानका चिह्न है और जाकूं भवितव्य नहीं कहिये अन्यरूप हुआ नहीं चाहे है सो नर ज्ञानी कहिये है ॥ १६१ ॥

इंदव-छन्द।

एक अखंडित ब्रह्म असंग, अजन्य अदृश्य अरूप अनामैं। मूल अज्ञान न सूक्ष्म स्थूल, समष्टि न व्यष्टिप-नोनहिं तामैं ॥ ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ, न तैजस विश्वस्वरूप न जामैं। भोग न योग न बंध न मोक्ष, नहीं कछु यामैं रु है सबयामैं ॥ १६२ ॥ जाग्रतमें जु प्रपंच प्रभासत, सो सब बुद्धिविलास बन्यो है। ज्यों सपने महिं भोग्य न भोग, तऊ इक चित्रविचित्र जन्यो है ॥ लीन सुषुप्तिमैं मति होलहि, भेद भंग इकरूप सुन्यो है। शुद्धि रच्यो जु मनोरथ मात्रहु, निश्चल शुद्धि प्रकाश भन्यो है ॥१६३॥

सवैया-छन्द ।

जाके हिये ज्ञान उजियारो, तम अँधियारो खरो विनाश।
सदा असंग एकरस आतम, ब्रह्मरूप सो स्वयंप्रकाश ॥
ना कछु भयो न है नहिं है है,जगत मनोरथ मात्र विलास
ताकी प्राप्तिनिवृत्तिन चाहत, ज्योंज्ञानीके कोउ न आस॥
देखै सुनै न सुनै न देखै, सब रस गहे रु लेत न स्वाद।
सूंघि परशि परशै न न सूंघै, बैनन बोलैं करै विवाद॥
ग्रहि न ग्रहैमलतजै न त्यागै,चलै नहीं अरु धावतपाद।
भोगै युवति सदा सन्यासी,शिषलखि यह अद्भुतसंवाद॥
॥ १६४ ॥ १६५ ॥ याका अभिप्राय कहैं हैं:--

सवैया-छन्द ।

निज विषयनमें इंद्रिय बर्तैं,तिनतें मेरो नाहीं संग ।
मैं इंद्रिय नहिं मम इंद्रिय नहिं,मैं साक्षीकूटस्थ असंग ॥
त्यागहु विषय कि भोगहुइंद्रिय,मोकूं लगै न रंचक रङ्ग।
यह निश्चय ज्ञानीको जातें, कर्त्ता दीखे करे न अङ्ग१६६

हे अंग ! प्रिय ! अन्य अर्थ स्पष्ट ॥ १६६ ॥

इस रीतिसे आचार्यनें शिष्यकूं गोप्यतत्त्वका उपदेश किया तौ भी शिष्यका मुख अत्यंत प्रसन्न नहीं देखिके यह जान्या शिष्य कृतार्थ नहीं हुवा जो कृतार्थ होता तौ याका मुख प्रसन्न होता यातें फेरि स्थूलरीतिसे उपदेश करनेकूं लय चिंतन करै हैं:-

इन्द्र करते का सोना मकुटे + भूत दूर करते

सवैया छन्द।

माटीको कारज घट जैसे, माटी ताके बाहर माहिं।
जलते फेन तरंग बुदबुदा, उपजत जलते जुदे सुनाहिं॥
ऐसे जो जाको है कारज, कारणरूप पिछानहु ताहि।
कारणईशसकलको'सोमैं' लयचिंतनजानहुविधि यौं॥

जैसे माटीके कार्यके बाहिर भीतरि माटी है, याते माटीका कार्य माटी स्वरूपही है. फेन आदिक जलके कार्य जल स्वरूप हैं. ऐसे जो जाका कार्य है सो ताका कारण स्वरूपसे भिन्न नहीं, किंतु कार्य कारण स्वरूप ही है और सकल प्रपंचका मूलकारण ईश्वरही है. याते सर्व कार्य प्रपंच ईश्वररूपसे भिन्न नहीं. किन्तु सर्वप्रपंचका स्वरूप ईश्वरही है "सो ईश्वर मैं हूँ" या रीतिसे लय चिंतन जानिके तू कर.

लय चिंतनका संक्षेपते यह क्रम हैः—१--स्थूलब्रह्मांडसारा पंचीकृत भूतनका कार्य है, तहां जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वीस्वरूप और जलका कार्य जलस्वरूप या रीतिसे जा भूतनका जो कार्य सो ताका ही स्वरूप है. इसरीतिसे सारा स्थूल ब्रह्मांड पंचीकृतभूतस्वरूप है २--तैसे पंचीकृतभूत भी अपंचीकृतभूतनके कार्य हैं यातेअपंचीकृत स्वरूपही पंचीकृतभूतहैं भिन्न नहीं ३--अन्तःकरण आदिक सूक्ष्मसृष्टि भी अपंचीकृत भूतनका कार्य होनेते अपंचीकृत भूतस्वरूप हैं तामें अंतःकरण

सारे भूतनके सत्त्वगुणके कार्य हैं-याते सत्त्वगुण स्वरूप हैं और भूतनके रजोगुण अंशके कार्य प्राण रजोगुण स्वरूप हैं; गुदाइंद्रिय पृथ्वीके रजोगुण अंशका कार्य सो पृथ्वीका रजोगुण स्वरूप घ्राण इन्द्रिय पृथ्वीकेसत्त्वगुण का कार्य सो सत्त्वगुणस्वरूप, ऐसे रसना औ उपस्थ जलके सत्त्वगुण रजोगुणस्वरूप नेत्र और पाद तेजके सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप त्वक् और पाणि वायुके सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप, श्रोत्र और वाक् आकाशके सत्त्वगुण रजोगुणस्वरूप, या रीतिसे सारी सूक्ष्मसृष्टि अपंचीकृतभूतस्वरूप है.

यह चिंतनकरिके अपंचीकृतभूतनका भी लय चिंतन करे. १-पृथ्वी जलका कार्य है याते जलस्वरूप है.२-तेजका कार्य जल, तेजस्व प है, ३-तेज वायुका कार्य होनेते वायुस्वरूप है.४-आकाशका कार्य वायु आकाशस्वरूप है. ५ तमोगुणप्रधान प्रकृतिका कार्य आकाश प्रकृतिरूप है, ६-मायाकी अवस्थाविशेही प्रकृति है याते प्रकृति माया स्वरूप है. एक वस्तुके प्रधान प्रकृति माया ,अविद्या, अज्ञान, शक्ति ये नाम हैं. सर्वकार्यकूं अपनेमें लीन करिके प्रलयमें उदासीन स्वरूपकूं प्रधान कहैहैं और सृष्टिके उपादान योग्य तमोगुण प्रधान स्वरूपकूं प्रकृति कहैं हैं. जैसे-देशकालादिक सामग्री

विना दुर्घट पदार्थकी इंद्रजालसे उत्पत्ति होवे है. तहां इंद्रजालकूं माया कहैं हैं. तैसे असंग अद्वितीय ब्रह्ममें इच्छादिक दुर्घट हैं, तिनकूं करे है याते माया कहैं हैं. स्वरूपकूं आच्छादन करे है, याते अज्ञान कहैं हैं ब्रह्मविद्याते नाश होवे है, याते अविद्या कहैं हैं और स्वतंत्र कभी भी रहै नहीं, किंतु चेतनके आश्रितही रहै है, याते शक्तिभी कहैं हैं. इस रीतिसे प्रकृति आदिक प्रधानकेही भेद हैं. याते प्रधानरूप हैं. ७—सो प्रधान ब्रह्मचेतनकी शक्ति है. जैसे पुरुषमें सामर्थ्यरूप शक्ति पुरुषसे भिन्न नहीं तैसे चेतनमें प्रधानरूप शक्ति ब्रह्मचेतनसे भिन्न नहीं. या प्रकारते सर्व अनात्म पदार्थनका ब्रह्मविषे लय चिंतन करिके "सो अद्वयब्रह्म मैं हूं" यह चिंतन करै.

जाकूं महावाक्यविचार कियेते भी बुद्धिकी मंदतादिक किसी प्रतिबंधकते अपरोक्षज्ञान होवे नहीं ताकूं यह लयचिंतनरूप ध्यान कह्या है. ध्यान और ज्ञानका इतना भेद है:—ज्ञान तौ प्रमाण और प्रमेयके अधीन है विधि और पुरुषकी इच्छाके अधीन नहीं. २—ध्यान, विधिके तथा पुरुषकी इच्छा और विश्वास तथा हठके अधीन है. १—जैसे प्रत्यक्ष ज्ञानमें प्रमाण नेत्र और प्रमेय घटादिक तहां नेत्रका और घटका संबंध हुयेते पुरुषकी इच्छा बिना भी घटका प्रत्यक्षज्ञान होवे है भाद्रपदचतुर्थीके दिन चंद्रदर्शनका निषेध है विधि

नहीं और पुरुषकूं यह इच्छा होवे है:—"मेरेकूं आज चंद्र-दर्शन नहीं होवे" तौभी किसी रीतिसे नेत्रप्रमाणका जो प्रमेय चंद्रसे संबंध होय जावे तौ चंद्रका प्रत्यक्षज्ञान अवश्यही होवे है.इस रीतिसे प्रमाण प्रमेयके अधीन ज्ञान है. विधि और इच्छाके अधीन नहीं.२--शालग्राम विष्णुरूप है यह ध्यान करै ताकूं उत्तमफल प्राप्त होवै है.तहां शास्त्र प्रमाणसे विष्णुकूं तौ चतुर्भुजमूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मीसहित जाने है और नेत्रप्रमाणते शालग्रामकूं शिला जानै है तथापि विधि विश्वास इच्छाते" शालग्राम विष्णु है" यह ध्यान होवे है परंतु सो ध्यान नानाप्रकारका है, कहूँ तो अन्यवस्तुका अन्यरूपसे ध्यान, जैसे-शालग्रामका विष्णुरूपसे ध्यान याकूं प्रतीकध्यान कहै हैं और वैकुंठलोकवासी विष्णुका शंखचक्रादिक सहित चतुर्भुजमूर्तिरूपसे ध्यान है तहां अन्यका अन्यरूपसे ध्यान नहीं किंतु ध्येयरूपके अनुसार यह ध्यान है. वैकुंठवासी विष्णुका स्वरूप प्रत्यक्ष तौ है नहीं केवल शास्त्रते जानिये है और शास्त्रने शंखचक्रादिकसहित विष्णुका स्वरूप कह्या है याते ध्येयस्वरूपके अनुसारही यह ध्यान है. विधि विश्वास इच्छा विना ध्यान होवे नहीं—"यह उपासना करे" ऐसा पुरुषका प्रेरकवचन विधि कहिये है ता वचनमें श्रद्धाकूं विश्वास कहै है और अंतःकरणकी कामनारूप रजोगुणकी वृत्ति इच्छा कहिये है.

ध्यानके हेतु यह तीनि हैं ज्ञानके नहीं और ध्यान हठसे होवे है ज्ञानमें हठकी अपेक्षा नहीं. काहेते, निरंतर ध्येयाकार चित्तकी वृत्तिकूं ध्यान कहैं हैं. तहां वृत्तिमें विक्षेप होवे तो हठसे वृत्तिकी स्थिति करे और ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्तिसे तत्काल आवरणभंग हुयेते वृत्तिकी स्थितिका उपयोग नहीं, याते हठकी अपेक्षा नहीं. वैकुण्ठवासी चतुर्भुज विष्णुकेध्यानकीन्याई "मैं ब्रह्म हूं" यह ध्यान भी ध्येयके अनुसार है प्रतीत नहीं. परंतु यह अहंग्रह ध्यान है ध्येयस्वरूपका अपनेसे अभेद करिके चिंतन, अहंग्रहध्यान कहिये है. जा पुरुषकूं अपरोक्षज्ञान नहीं होवे और वेदकी आज्ञारूप विधिमें विश्वासकरिके हठते निरंतर "मैं ब्रह्म हूं" या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रहध्यान करै ताकूं भी ज्ञान प्राप्त होयके मोक्षकी प्राप्ति होवे है ॥ १६७ ॥

दूसरी रीतिसे अहंग्रह उपासना कहैं हैं:—

सवैयाछंद.

ध्यान अहंग्रह प्रणवरूपका, कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार।
अक्षरप्रणवब्रह्ममयरूपसु,योअनुलवनिजमतिगतिधार ॥
ध्यानसमान आन नहिं याके, पंचीकरणप्रकार विचार।
जोयहकरतउपासनसोमुनि, तुरितनशैसंसारअपार १६८

हे शिष्य ! प्रणवरूपका कहिये ओंकारस्वरूपका अहंग्रहध्यान मांडूक्यप्रश्नआदिक श्रुतिके अनुसार

सुरेश्वराचार्यने कह्या है सो तूं कर, ताका संक्षेपते प्रकार यह है--प्रणवअक्षर ब्रह्मस्वरूप है. "सो प्रणवरूप ब्रह्म मैं हूं" या रीतिसे अनुलव कहिये क्षणमात्र अंत-प्रगट, राय रहित निजमतिकी गति कहिये वृत्ति, धार कहिये नजदीक स्थित कर. याके समान आन ध्यान नहीं है, और या ध्यानका प्रकार कहिये विशेषरीति, सुरेश्वरकृतपंचीक-रण नाम ग्रन्थसे विचार, चतुर्थपाद स्पष्ट। यद्यपि प्रणव उपासना बहुत उपनिषदनमें है, तथापि मांडूक्यउपनि-षद्में विशेष है. ताके व्याख्यानमें भाष्यकार और आनंदगिरिने ताकी रीति स्पष्ट लिखीहै सोई रीति वार्ति-ककारने पंचीकरणमें लिखी है तथापि तिनग्रंथनके विचारनमें जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है तिनके अर्थ प्रणवउपासनाकी रीति हम लिखें हैं--दो प्रकारसे प्रण-वका चिंतन उपनिषदमें कह्या है. एक तो परब्रह्म रूपते कह्या है. १--निर्गुणब्रह्मकूं परब्रह्म कहैं हैं २-सगुणब्रह्मको अपरब्रह्म कहैं, १-परब्रह्मरूपते प्रण-वका चिंन करै सो मोक्षकूं प्राप्त होवे है. २-अपरब्रह्म रूपते प्रणवका चिंतन करै सो ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे है. ऐसे निर्गुणसगुणभेदते प्रणवउपासना दो प्रकारकी है, तामें निर्गुण उपासनाकी रीति लिखें हैं, सगुणकी नहीं. काहेते ? १-जाकूं ब्रह्मलोककीकामना होवे ताकूं

निर्गुणउपासनाते भी कामनारूप प्रतिबंधकते ज्ञानद्वारा तत्काल मोक्ष होवे नहीं. किंतु ब्रह्मलोककीही प्राप्ति होवे है तहां,हिरण्यगर्भके समान भोगनकूं भोगिके ज्ञान होवे तब मोक्ष होवे. २—जाकूं ब्रह्मलोककी कामना नहीं होवे ताकूं इस लोकमेंही ज्ञान होयके मोक्ष होवे है, इस रीतिसे सगुण उपासनाका फल भी निर्गुण उपासनाके अंतर्भूत है याते निर्गुण प्रकार कहैं हैं—जो कछु कारण कार्यवस्तु है, सो ओंकारस्वरूप है. याते सर्वरूप ओंकार है. १—सर्वपदार्थनमें नाम और रूप दो भाग हैं तहां रूपभाग अपने अपने नामभागसे न्यारा नहीं, किन्तु नामस्वरूपही रूपभाग है- काहेते ? पदार्थका रूप कहिये आकार ताका नामसे निरूपण करिके ग्रहण वा त्यागहोवे है, नाम जाने विना केवल आकारते व्यवहार सिद्ध होवे नहीं, याते नामही सार है और आकारके नाश हुयेते भी नाम शेष रहै है. जैसे घटका नाश हुयेते मृत्तिका शेष रहे है. तहां घट मृत्तिकासे पृथक् वस्तु नहीं, मृत्तिकास्वरूप है, तैसे आकारका नाश हुयेते मृत्तिकाकी न्याई शेष रहै जो नाम तासे आकार पृथक् नहीं, नामस्वरूप ही आकार है. किंवा जैसे घट शरावादिकनमें मृत्तिका अनुगत है और घटशरावादिक परस्पर व्यभिचारी हैं याते घटशरावादिक मिथ्या तिनमें अनुगत मृत्तिका सत्य है. तैसे घट आकार

अनेक हैं; तिन सबका "घट" यह दो अक्षर नाम एक हैं सो आकार परस्परव्यभिचारी और सर्व घटके आकारमें नाम एक अनुगत है याते मिथ्याआकार सत्यनामते पृथक् नहीं इस रीतिसे सर्वपदार्थनके आकार अपने अपने नामसे भिन्न नहीं, किन्तु नामस्वरूपही आकार है२-सो सारे नाम ओंकारसे भिन्न नहीं किन्तु ओंकारस्वरूपही नाम हैं. काहेते ? वाचकशब्दकूं नाम कहें हैं और लोकवेदके सारे शब्द ओंकारसे उत्पन्न हुये हैं, यह श्रुतिमें प्रसिद्ध है. संपूर्ण कार्य कारणरूप होवे हैं; याते ओंकारके कार्य जो वाचक शब्द रूप नाम, सो ओंकारस्वरूप है. इस रीतिसे रूपभाग जो पदार्थनका आकार सो तौ नामस्वरूप है और सर्वनाम ओंकार स्वरूपहै. याते सर्वस्वरूप ओंकार है.३-जैसे सर्वस्वरूप ओंकार है, तैसे सर्वस्वरूप ब्रह्म है; याते ओंकार ब्रह्मरूप है. किंवा ओंकार ब्रह्मका वाचक है, ब्रह्म वाच्य है. वाच्यका और वाचकका अभेद होवे है. याते भी ओंकार ब्रह्मरूप है और विचारदृष्टिते तौ ओम् अक्षर ब्रह्मविषे अध्यस्थ है,ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है. अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानते न्यारा होवे नहीं, याते भी ओंकारब्रह्मस्वरूप है. ओंकारकूं ब्रह्म रूप करिके चिंतन करै.

४–ब्रह्मरूप ओंकारका आत्मासे भी अभेद चिंतन करै. काहेते ? आत्माका ब्रह्मसे मुख्य अभेद है और ब्रह्मके चारिपाद हैं तैसे आत्माके भी चारिपाद हैं. पाद नाम भागका है ताहीकूं अंश भी कहैं हैं, विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और तत्पदका लक्ष्य ईश्वर साक्षी ये चारि पाद ब्रह्मके हैं. विश्व, तैजस, प्राज्ञ और त्वंपदका लक्ष्य जीवसाक्षी, ये चारिपाद आत्माके हैं, जीवसाक्षीकूं ही तुरीय कहैं हैं.

समष्टिस्थूलप्रपंचसहित चेतन विराट् कहिये है. व्यष्टि स्थूल अभिमानी विश्व कहिये है विराट्की और विश्वकी उपाधि स्थूल है याते विराट् रूपही विश्व है. विराट्ते न्यारा नहीं. विराट्रूप विश्वके सात अंग हैं. स्वर्गलोक मूर्धा है. सूर्य नेत्र हैं, वायु, प्राण, आकाश धड़ है, समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान है, पृथ्वी पाद है जा अग्निमें होम करिये सो अग्नि मुख है; ये सात अंग विश्वके कहैहैं मांडूक्यमें यद्यपि स्वर्गलोकादिक विश्वके अंग बने नहीं, तथापि विराट्के अंग हैं ता विराट्से विश्वका अभेद है यातैं विश्वके अंग कहे हैं.

तैसे विराट् विश्वके उन्नीस मुख हैं:–पंच प्राण, पंच कर्म इंद्रिय, पंच ज्ञानइंद्रिय, चारि अंतःकरण ये उन्नीस मुखकी न्याईं भोगके साधन हैं याते मुख कहिये हैं इन उन्नीसते स्थूल शब्दादिकनको बाह्यवृत्ति करिके जाग्रत

अवस्थाविषे भोगै हैं, याते विराट्रूप विश्व स्थूलका भोक्ता और बाह्यवृत्ति कहिये है और जाग्रतअवस्था-वाला कहिये हैं.

प्राणादिक उन्नीस जो भोगके साधन हैं तिनविषे ये श्रोत्रादिक इंद्रिय और अंतःकरण चारि, ये चतुर्दश अपने अपने विषय और अपने अपने देवताकी सहाय चाहैं हैं, देवताविषयकी सहाय विना केवल इनते भोग होवे नहीं याते पंच प्राण और चतुर्दश त्रिपुटी विराट्रूप विश्वके मुख कहिये हैं तिनके समुदायके नाम त्रिपुटी है. सो त्रिपुटी इस रीतिसे कही है:--श्रोत्रइंद्रिय अध्यात्म है और ताका विषय शब्द अधिभूत है, दिशाका अभि-मानी देवता अधिदेव है या प्रकरणमें क्रियाशक्तिवाले और ज्ञानशक्तिवाले इंद्रिय और अंतःकरण अध्यात्म कहिये है तिनके विषय अधिभूत कहिये है और तिनके सहायक देवता अधिदेव कहिये है, त्वचाइंद्रिय अध्यात्म है ताका विषय स्पर्श अधिभूत है, वायु तत्त्वका अभि-मानी देवता अधिदेव है. नेत्रइन्द्रिय अध्यात्म है, रूप अधिभूत है सूर्य अधिदेव है, रसना इन्द्रिय अध्यात्म है रस अधिभूत है, वरुण अधिदेव है, घ्राणइंद्रिय अध्यात्म है, गंध अधिभूत है, अश्विनीकुमार अधिदेव हैं और वार्तिककार सुरेश्वराचार्यने पृथिवीको अभिमानी देवता घ्राणका अधिदेव कह्याहै सो भी बनै है. काहेते ? पृथिवीसे

घ्राणकी उत्पत्ति है याते पृथिवी अधिदैव कह्या है और सूर्यकी स्त्री वडवाकी नासिकाते अश्विनीकुमारकी उत्पत्ति कही है, याते नासिकाका अधिदेवकहूँ अश्विनीकुमारही कहे हैं, वाक् इंद्रिय अध्यात्म है, वक्तव्य अधिभूत है. अग्निदेवता अधिदेव है. हस्तइंद्रिय अध्यात्म है. पदार्थका ग्रहण अधिभूत है,इंद्र अधिदेव है, पाद इंद्रिय अध्यात्म, गमन अधिभूत, विष्णु अधिदेव है. गुदाइंद्रिय अध्यात्म.मलका त्याग अधिभूत,यम अधिदेव हैं.उपस्थ इंद्रिय अध्यात्म. ग्राम्यधर्मके सुखकी उत्पत्ति अधिभूत है,प्रजापति अधिदेव है,मन अध्यात्म है,मननका विषय अधिभूत है,चंद्रमा अधिदेव है,बुद्धि अध्यात्म है,बोद्धव्य अधिभूत है, बृहस्पति अधिदेव है. ज्ञानका विषय बोद्धव्य कहिये है, अहंकार अध्यात्म है, अहंकारका विषय अधिभूत है,रुद्र अधिदेव है, चित्त अध्यात्म है, चिंतनका विषय अधिभूत है,क्षेत्रज्ञ जो साक्षी सो अधिदेव है.ये चतुर्दशत्रिपुटी और पंचप्राण ये १९ विराट्रूप विश्वमुखहैं.

१-जैसे विराट्ते विश्वका अभेद है तैसे ओंकारकी प्रथममात्रा जो अकार ताका भी विराट्रूप विश्वते अभेद है. काहेते? ब्रह्मके चारिपादनमें प्रथमपाद विराट् है और आत्माके चारि पादनमें प्रथम विश्व है, तैसे ओंकारकी चारिमात्रारूप पादनमें प्रथमपाद अकार है. याते प्रथम ता तीनोंमें समानधर्म होनेते विश्वविराट्

अकारका अभेदचिंतन करे जो सात अंग उन्नीस मुख विश्वके कहे सोई सात अंग और उन्नीसमुख तैजसके भी जाननेकूं योग्य हैं. परंतु इतना भेद है:–विश्वके जो अंग और मुख हैं सो तौ ईश्वररचित है और तैजसके जो इंद्रिय देवता विषयरूप त्रिपुटी और मूर्धादिक अंग सो मनोमय है, तैजसका भोग सूक्ष्म है. यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दुःखके ज्ञानका है ताके विषे स्थूलता और सूक्ष्मता कहना बनै नहीं; तथापि बाह्य जो शब्दादिक विषय हैं तिनके संबंधते जो सुख अथवा दुःखका साक्षात्कार सो स्थूल कहिये है और मानस जो शब्दादिक तिनके संबंधते जो भोग होवे सो सूक्ष्म कहिये है. इसी कारणतें विश्व तो स्थूलका भोक्ता श्रुतिविषे कह्या है और तैजस सूक्ष्मका भोक्ता है. काहेते ? तैजसके भोग्य जो शब्दादिक हैं सो तौ मानस हैं; याते सूक्ष्म है और तिनकी अपेक्षा करिके विश्वके भोग्य बाह्यशब्दादिक हैं सो स्थूल हैं. और विश्वबहिरप्रज्ञ है, तैजस अंतरप्रज्ञ है. काहेते ? जो विश्वकी अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है सो बाहिर जावे है और तैजसकी नहीं जावे है.

२–जैसे विश्वका और विराट्का अभेद है तैसे तैजसकूं भी हिरण्यगर्भरूप जानै. काहेते ? सूक्ष्मउपाधि तैजसकी है और सूक्ष्म ही हिरण्यगर्भकी है. याते दोनोंकी एकता जाने तैजस हिरण्यगर्भकी एकता जानिके

ओंकारकी द्वितीय मात्रा उकारसे तिनका अभेदचिंतन करे. काहेते? आत्माके चारि पादनमें द्वितीयपाद तैजस है, ब्रह्मके पादन्में हिरण्यगर्भ दूसरा पाद है, ओंकारकी मात्रामें द्वितीयमात्रा उकार है, द्वितीयता तीनोंमें समानधर्म है, याते तीनोंकी एकता चिन्तन करै.

३—प्राज्ञकूं ईश्वररूप जानै. काहेते ? प्राज्ञकी कारण उपाधि है और ईश्वरकी भी कारणउपाधि है ईश्वर और प्राज्ञ पादनमें तृतीय हैं. ओंकारकी तृतीय मात्रा मकार है. तीसरापना तीनोंमें समानधर्म है. याते तीनोंकी एकता जाने और यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है. काहेते ? जाग्रत और स्वप्नके जितने ज्ञान है सो सुषुप्तिविषे घन कहिये एक अविद्यारूप होयं जावैं हैं, याते प्रज्ञानघन कहिये है और आनंदभुक् भी यह प्राज्ञ श्रुतिने कहा है. काहेते ? अविद्यासे आवृत जो आनंद है ताकूं यह प्राज्ञ भोगै है. याते आनंदभुक् कहिये है. आनन्द का भोगने वाला

जैसे तैजस और विश्वका भोग त्रिपुटीसे होवैहै. तैसे प्राज्ञके भोगकी भी त्रिपुटी कहिये है:—चेतनके प्रतिबिंब सहित जो अविद्याकी वृत्ति है सो अध्यात्म है, अज्ञानसे आवृत जो स्वरूप आनंद सो अधिभूत है और ईश्वर अधिदैव है. इसरीतिसे विश्वतो बहिरप्रज्ञ है और तैजस अंतरप्रज्ञ है और प्राज्ञ प्रज्ञानघन है.

४--ऐसा जो तीनोंका भेद है, सो उपाधि करिके है विश्वकी स्थूल सूक्ष्म अज्ञान तीनि उपाधि हैं और तैजसकी सूक्ष्म अज्ञान दो उपाधि हैं और प्राज्ञकी एक अज्ञान उपाधि है इस रीतिसे उपाधिकी न्यूनता अधिकतासे तीनोंका भेद है,परमार्थकरिके स्वरूपसे भेद नहीं. विश्व,तैजस,प्राज्ञ इन तीनों विषे अनुगत जो चेतन है सो परमार्थसे तीनों उपाधिके संबंधसे रहित है. तीनों उपाधिका अधिष्ठान तुरीय है सो बहिरप्रज्ञ नहीं और अंतरप्रज्ञ नहीं और प्रज्ञानघन भी नहीं कर्म इंद्रियका और ज्ञान इंद्रियका विषय नहीं और बुद्धिका विषय नहीं, किसी शब्दका विषय नहीं ऐसा जो तुरीय है ताकूं परमात्माका चतुर्थपाद ईश्वर साक्षी शुद्ध ब्रह्मरूप जानै.

१--इस रीतिसे दो प्रकारका आत्माका स्वरूप कह्या एक तो परमार्थ रूप है और एक अपरमार्थरूप है.तीनि पाद तो अपरमार्थरूप हैं और एक पाद तुरीय परमार्थरूप है. २--जैसे आत्माके दो स्वरूप हैं तैसे ओंकारकेभी दो स्वरूप हैं. अकार,उकार मकार ये तीनि मात्रारूप जो वर्ण हैं सो तो अपरमार्थरूप है और तीनों मात्राविषे व्यापक जो अस्ति भाति प्रियरूप अधिष्ठान चेतन है सो परमार्थरूप है जो ओंकारका परमार्थरूप है ताको श्रुति विषे अमात्रशब्दकरिके कह्या है काहेते ? ता परमा-

र्थस्वरूप विषे मात्रा विभाग है नहीं याते अमात्र कहिये है, इस रीतिसे दो स्वरूपवाला जो ओंकार है ताका दो स्वरूपवाले आत्मासे अभेद जाने.

१--व्यष्टि और समष्टि जो स्थूल प्रपंच तासहित विश्व और विराट्का आकारसे अभेद जाने-आत्माके जो पाद हैं तिनविषे विश्व आदि हैं और ओंकारकी मात्रा विषे अकार आदि हैं; याते दोनोंकूं एक जाने, २--सूक्ष्मप्रपंच सहित जो हिरण्यगर्भरूप तैजस है ताकूं उकार रूप जाने तैजस भी दूसरा है और उकार भी दूसरा है याते दोनोंकूं एक जाने. ३--कारणउपाधि सहित जो ईश्वररूप प्राज्ञ है ताकूं मकाररूप जाने. जैसे-ईश्वररूप प्राज्ञ तीसरा है तैसे मकार भी तीसरा है, यातैं ईश्वररूप प्राज्ञ और मकारकूं एक जाने, ४--तीनोंविषे अनुगत जो परमार्थरूप तुरीय है ताकूं ओंकार वर्णकी तीनि मात्राविषे अनुगत जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है तासे अभिन्न जाने, जैसे--विश्वादिक विषे तुरीय अनुगत है, तैसे अकारादिक तीनि मात्राविषे अमात्र अनुगत है, याते ओंकारके अमात्ररूपकूं और तुरीयकूं एक जाने. इस रीतिसे आत्माके पाद और ओंकारकी जो मात्रा हैं तिनकी एकता जानिके लयचिंतन करे सो लयचिंतन कहिये है.

१--विश्वरूप जो अकार है, सो तैजसरूप उकारसे न्यारा नहीं, किंतु उकाररूप है; ऐसा जो चिंतन करना

सो या स्थानमें लय कहिये है. ऐसा ही और मात्राविषे भी जानि लेना. २—जा उकारविषे अकारका लय किया है. ता तैजसस्वरूप उकारका प्राज्ञरूप जो मकार है ताके विषे लय करे. ३—प्राज्ञरूप जो मकार है ताकूं तुरीय रूप जो ओंकारका परमार्थ रूप अमात्र है, ताकेविषे लीन करे. काहेते? स्थूलकी उत्पत्ति और लय सूक्ष्मविषे होवे है. याते १—विश्वरूप जो अकार है, ताका तैजस-स्वरूप उकारमें लय बनै है, २—सूक्ष्मकी उत्पत्ति और लय कारणमें होवे है. याते तैजसरूप जो उकार है, ताका कारण प्राज्ञरूप जो मकार है ताकेविषे लय बनै है या स्थानविषे विश्व आदिकनके ग्रहणते समष्टि जो विराट् आदिक हैं तिनका और अपनी अपनी जो त्रिपुटी हैं तिन सर्वका ग्रहण जानना, ३—जा प्राज्ञरूप मकार विषे उकार लय किया है ता मकारको तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है ताकेविषे लीन करे. काहेते ओंका-रके परमार्थस्वरूपका तुरीयसे अभेद है. सो तुरीय ब्रह्मरूप है, और शुद्धविषे ईश्वर प्राज्ञ दोनों कल्पित हैं जो जाके विषे कल्पित होवे है सो ताका स्वरूप होवे है, याते ईश्वरसहित प्राज्ञरूप मकारका लय बनै है. इस रीतिसे जो ओंकारके परमार्थस्वरूप अमात्र विषे सर्वका लय किया है "सो मैं हूं" ऐसा एकाग्र-चित्त होयकै चिंतन करे, स्थावर,जंगमरूप और असंग, अद्वय

असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय, ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थस्वरूप "सो मैं हूँ" ऐसा चिंतन करनेसे ज्ञान उदय होवे है, याते ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप फलका देनेवाला यह ओंकारका निर्गुण उपासना है सो सबसे उत्तम है।

जो पूर्व रीतिसे ओंकारके स्वरूपकूं जानै है सो मुनि है. जो नहीं जानै है सो मुनि नहीं, काहेते ? मुनि नाम मनन करनेवालेका है. यह ओंकारका चिंतन मननरूप है. जाके ओंकारका चिंतनरूप मनन नहीं सो मुनि नहीं यह मांडूक्यउपनिषदकी रीतिसे संक्षेपते ओंकारका चिंतन कह्या है और भी नृसिंहतापिनी आदिक उपनिषदनमें याका प्रकार है, यह ओंकारका चिंतन परमहंसोंका गोप्यधन है, बहिर्मुख पुरुषका याविषे अधिकार नहीं, अत्यंत अन्तरमुखका अधिकार है, गृहस्थका यामें अधिकार नहीं, धन पुत्र स्त्रीसंगादिक रहित परमहंसका अधिकार है.

१—पूर्व प्रकारते ओंकारका ब्रह्मरूपते ध्यान कियेते ज्ञान द्वारा मोक्ष होवे है. २—परंतु जा पुरुषकी इसलोकके भोगनमें अथवा ब्रह्मलोकके भोगनमें कामना होवे तीव्र वैराग्य नहीं होवे और हठसे कामनाको रोकिके धन पुत्रादिकनको त्यागिके परमहंसगुरुके उपदेशते ओंकाररूप ब्रह्मका ध्यान करै ताकूं भोगकी कामना ज्ञानमें प्रतिबंध है, याते ज्ञान नहीं होवे है किंतु ध्यान करतेही

शरीर त्यागते अनंतर अन्यशरीरकी प्राप्ति होवे जो इसलोकके भोगनकी कामना रोकके ध्यानमें लगा होवे तो इसलोकमें अत्यंत विभूतिवाले पवित्रसत्संगीकुलमें जन्म होवे है तहां पूर्वकामनाके विषे सारे भोग प्राप्त होवे हैं और पूर्व जन्मके ध्यानके संस्कारनते फेरि विचारमें अथवा ध्यानमें प्रवृत्ति होवे है, तातें ज्ञान होयके मोक्ष होवे है.

ब्रह्मलोकके भोगनकी कामना रोकिके ओंकाररूप ब्रह्मके ध्यानमें लगा होवे तौ शरीर त्यागिके ब्रह्मलोककूं जावै हैं, तहां मनुष्यकूं, पितरनकूं, देवनकूं, दुर्लभ जो स्वतंत्रता है ताके आनंदको भोगे है, जितनी हिरण्यगर्भकी विभूति है सो सारी सत्यसंकल्पादिक विभूति इसको प्राप्त होवै. जा मार्गते ब्रह्मलोककूं जावै हैं सो मार्गका क्रम यह है:—जो पुरुष ब्रह्मकी उपासनामें तत्पर है ताके मरणसमय इन्द्रिय अन्तःकरण यद्यपि सारे मूर्छित हैं, कहीं जानेमें समर्थ नहीं और यमके दूत ताके समीप आवैं नहीं, जो ताके लिंगशरीरकूं लेजावें परंतु १—अग्निका अभिमानी देवता ताकूं मरणसमय शरीरसे निकासिके अपने लोकको लेजावे है, २—ता अग्निलोकते दिनका अभिमानी देवता ले जावे है ३—तिसते शुक्लपक्षका अभिमानी देवता अपने लोककूं लेजावे है, ४—तिसते आगे उत्तरायण जो षट्मास हैं, तिनका अभिमानी देवता लेजावे है.

५-तिससे आगे संवत्सरका अभिमानी देवता लेजावे है, ६-तिसते आगे देवलोकका अभिमानी देवता ले जावै है. ७-तिसते आगे वायुका अभिमानी देवता लेजावे है, ८-तिसते आगे सूर्यदेवता लेजावे है. ९-तिसते आगे चंद्र देवता लेजावे है, १०-तिसते आगे बिजलीका अभिमानी देवता अपने लोकमें लेजावे है, ११-तहां बिजलीके लोकमें तिस उपासकके सामने हिरण्यगर्भकी आज्ञाते दिव्यपुरुष हिरण्यगर्भलोकवासी हिरण्यगर्भसमानरूप ताके लेनेकूं आवै है, सो पुरुष बिजलीके लोकते वरुणलोकको ले जावै है, बिजलीका अभिमानी देवता साथि आवै है, वरुणलोकते इंद्रलोककूं ले जावै है, १२-वरुणदेवताभी इंद्रलोकतक हिरण्यगर्भलोकवासी पुरुष और उपासकके साथी रहै है. १३-तिसते आगे इंद्रदेवता प्रजापतिके लोकतक दोनोंके साथि रहे है, १४-तिसते आगे प्रजापति तिन दोनोंके साथ ब्रह्मलोक लेजानेविषे समर्थ नहीं याते ब्रह्मलोकमें ता दिव्यपुरुषके साथि सो उपासक प्राप्त होवे है. ब्रह्मलोकका अधिपति हिरण्यगर्भ है. सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी चेतन हिरण्यगर्भ कहिये है, ताहीकूं कार्यब्रह्म कहे हैं, कार्यब्रह्मके निवासस्थानकूं ब्रह्मलोक कहैं हैं.

यद्यपि पूर्वरीतिसे ओंकारकी उपासना शुद्ध ब्रह्मरूपकरिके कही है शुद्धब्रह्मके उपासककूं शुद्ध

प्राप्ति चाहिये तथापि शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति ज्ञानतेही होवै है और कामनारूप प्रतिबंधते जाकूं ज्ञान हुआ नहीं, ताकूं कार्यब्रह्मकी प्राप्तिरूप सायुज्यरूप मोक्ष होवे है. १–ब्रह्मलोकमें प्राप्त जो उपासक है ताकूं हिरण्यगर्भके समान विभूति प्राप्त होवै है. २–सत्यसंकल्प होवै है ३–जैसे शरीरकी इच्छा करे तैसाही उसका शरीर होवै है. ४–जिन भोगनकी वांछा करै, सो सारे भोग संकल्पते होवैं हैं. ५–जो एकसमय हजारशरीरनसे जुदे जुदे भोगनकी इच्छा करे तो ताही समय हजार शरीर और उनके भोगनकी जुदी जुदी सामग्री उपजै है और बहुत क्या कहैं ? जो कछु संकल्प करै सोई सिद्ध होवै है. परंतु जगत्की उत्पत्ति पालन संहार छोडिके और सारी विभूति ईश्वरके समान होवै है याहीकूं सायुज्य-मोक्ष कहैं हैं. ऐसे हिरण्यगर्भके समान हुआ.बहुतकाल संकल्पसिद्ध दिव्यपदार्थनको भोगिके प्रलयकालमें जब हिरण्यगर्भके लोकका नाश होवे तब ज्ञान होयके उपासककूं विदेहमोक्षकी प्राप्ति होवै है.

जैसे ओंकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनेवाला ब्रह्मलोककी प्राप्तिद्वारा मोक्षको प्राप्त होवे है तैसे और भी उपनिषदनमें ब्रह्मकी उपासना कही है तिनते यही फल होवे है. परंतु अहंग्रह उपासना बिना और उपासना

ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे नहीं यह वार्त्ता सूत्रकारने और भाष्यकारने चतुर्थ अध्यायमें प्रतिपादन करी है.

१-जैसे नर्मदेश्वरका शिवरूपते और शालग्रामका विष्णुरूपते ध्यान कह्या है सो प्रतीकध्यान है अहंग्रह नहीं. २-मनका ब्रह्मरूपते आदित्यका ब्रह्मरूपते ध्यान कह्या है सो भी प्रतीकध्यान है अहंग्रह नहीं, तिनते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे नहीं. सगुण अथवा निर्गुणब्रह्मकूं अपनेते अभेदकरिके चिंतन करे ताकूं अहंग्रहध्यान कहैं हैं. ताहीते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे है.

पूर्व कह्या जो मार्ग है ताकूं उत्तरायणमार्ग कहैं हैं और देवमार्ग भी कहैं हैं ता देवमार्गते ब्रह्मलोककूं जो उपासक जावैं हैं तिनकूं फेरि संसार नहीं होता, किंतु ज्ञान होयके विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवे हैं. तहां ज्ञानके साधन जो गुरुउपदेशादिक हैं तिनकी भी अपेक्षा नहीं. किंतु ब्रह्मलोकमें गुरुउपदेशादिक साधन विनाही ज्ञान होवे है. काहेते ? ब्रह्मलोकमें तमोगुण रजोगुणका तौ लेशभी नहीं केवल सत्त्वगुणप्रधान वह लोक है. १-तमो गुण नहीं याते जडता आलस्यादिक नहीं. २-रजोगुण नहीं याते कामक्रोधादिरूप रजोगुणका कार्य विक्षेप नहीं. ३-केवल सत्त्वगुण है याते सत्त्वगुणका कार्य ज्ञानरूप प्रकाश ता लोकमें प्रधान है.

ओंकारकी ब्रह्मरूपते जो पूर्व उपासना करी है तब ओंकारकी मात्राका अर्थ इस रीतिसे चिंतन किया है:- १ स्थूल उपाधिसहित विराट्विश्वचेतनअकारका वाच्य है. २-सूक्ष्म उपाधिसहित चेतन [रण्यगर्भतैजस उकारका वाच्य है. ३-कारण उपाधिसहित चेतन ईश्वरप्राज्ञ मकारका वाच्य है; ऐसा अर्थ जो पूर्व चिंतन किया है ताकी ब्रह्मलोकमें स्मृति होवे है और सत्त्वगुणप्रभावते ऐसा विवेचन होवे है. १-स्थूलउपाधिकरके चेतनमें विराट्पना और विश्वपना प्रतीत होवे है. स्थूलसमष्टिकी दृष्टिते विराट्पना है और स्थूलव्यष्टिकी दृष्टिते विश्वपना है औरसमष्टिव्यष्टिस्थूलकी दृष्टिबिना विराट्भाव और विश्वभाव प्रतीत होवे नहीं. किंतु चेतनमात्रही प्रतीत होवे है. २-तैसे सूक्ष्मउपाधि सहित हिरण्यगर्भ तैजस चेतन उकारका वाच्य है तहां समष्टिसूक्ष्म उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें हिरण्यगर्भता प्रतीत होवे है और व्यष्टिसूक्ष्म उपाधिकी दृ ते तैजसता प्रतीत होवे है, सूक्ष्म उपाधिकी दृ विना हिरण्यगर्भता और तैजसता प्रतीत होवे नहीं. ३-तैसे मकारका वाच्य ईश्वरप्राज्ञ है तहां समष्टि अज्ञान उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें ईश्वरता प्रतीत होवे है और व्यष्टिअज्ञान उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें प्राज्ञता प्रतीत होवे है अज्ञान उपाधिकी दृष्टिविना ईश्वरता और प्राज्ञता प्रतीत होवे नहीं जो वस्तु

जाकेविषे अन्यकी दृष्टिते प्रतीत होवे सो ताकेविषे पर-मार्थसे होवे नहीं, जो जाका रूप अन्यकी दृष्टिविना प्रतीत होवे सो ताका परमार्थरूप होवे है. जैसे एक पुरुषमें पिताकी दृष्टिते पुत्रता ओर दादाकी दृष्टिते पौत्र-तादिकरूप भान होवे है सो परमार्थसे नहीं पुरुषका पिंड ही परमार्थ है, तैसे स्थूल सूक्ष्मकारण उपाधिकी दृष्टिते जो विराट्विश्वादिकरूपभान होवे है सो मिथ्या है, चेतनमात्रही सत्य है सो चेतन सर्वभेदरहित है. काहेते! १—विराट् और विश्वका जो भेद है सो उपाधि तौ दोनोंकी यद्यपि स्थूल हैं, तथापि समष्टिउपाधि विराट्की और व्यष्टिउपाधि विश्वकी सो समष्टिव्यष्टि उपाधिते तिनका भेद है, याते स्वरूपते भेद नहीं. तैसे तैजसका हिरण्यगर्भते भेद भी समष्टिव्यष्टि उपाधिते है. स्वरूपसे नहीं. तैसे ईश्वरते प्राज्ञका भेद भी समष्टिव्यष्टिउपाधिके भेदते है स्वरूपते नहीं. १—ऐसे प्राज्ञका ईश्वरते अभेद है. २—तैजसका हिरण्यगर्भते अभेद है ३—तथा विश्वका विराट्ते अभेद है या प्रकारते स्थूल उपाधिवालेका सूक्ष्मउपाधिवालेते वा कारणउपाधिवालेते भेद नहीं. काहेते? स्थूलसूक्ष्मकारण उपाधिकी दृष्टि त्यागेते चेतनस्वरूपमें किसी प्रकारका भेद प्रतीत होवे नहीं और आत्मासे भी चेतनका भेद नहीं. काहेते !

अनात्मदेहादिक अविद्याकालमें प्रतीत होवे हैं. परमार्थसे नहीं तिनका भी चेतनसे भेद बनै नहीं. ऐसे सर्वभेद रहित, असंग. निर्विकार, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा ओंकारका लक्ष्य स्वयंप्रकाशरूप तिस उपासककूं भान होवे है. ताते हिरण्यगर्भलोकवासीकूं संसार होवे नहीं.

यद्यपि महावाक्यके विवेक विना ज्ञान होवे नहीं. तथापि ओंकारका विवेक ही महावाक्यका विवेक है. १—स्थूलउपाधिसहित चेतन अकारका वाच्य है स्थूल उपाधिको त्यागिके चेतनमात्र अकारका लक्ष्य. २—जैसे सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन उकारका वाच्य है. तैसे सूक्ष्म उपाधिको त्यागिके चेतन मात्र उकारका लक्ष्य है. ३—कारणउपाधिसहित चेतन मकारका वाच्य है. कारण उपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र मकारका लक्ष्य है, इस रीतिसे १—उपाधिसहित विश्वादिक अकारादिमात्राके वाच्य हैं; २—उपाधिरहित चेतन सर्वमात्राके लक्ष्य हैं. १—तैसे नामरूप सकलउपाधिसहित चेतन ओंकार वर्णका वाच्य है. २—नामरूप सकलउपाधिरहित चेतन ओंकार वर्णका लक्ष्य है. ऐसे ओंकारका और महावाक्यका अर्थ एकही है. याते ओंकारके विवेकते अद्वैतज्ञान होवे है. ऐसे आचार्यके मुखते श्रवण करिके अदृष्टि नाम जो मध्यमशिष्य सो उपासनामें प्रवृत्त होयके ज्ञानद्वारा परमपुरुषार्थ मोक्षकूं प्राप्त हुआ ॥ १६८ ॥

निर्गुण उपासनामें जाका अधिकारी नहीं, ताको कर्तव्य कहैं हैं—

सवैया-छन्द।

जो यह निगुणध्यान न ह्वैतो,सगुणईश करि मनको धाम।
सगुणउपासनहू नहिं ह्वै तौ,करि निष्कामकर्म भजिराम॥
जो निष्कामकर्म हू नहिं ह्वै,तौ करिये शुभकर्म सकाम।
जो सकामकर्महुनहिंहोवै, तौशठ बारबार मरिजाम१६९

दोहा।

ओंकारको अर्थ लखि, भयो कृतार्थ अदृष्टि ।
पढैं जु याहि तरंग तिहिं; दादू करहु सुदृष्टि ॥ १७० ॥

इति श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादनमध्यमाधिकारी-
साधननिरूपणं नाम पंचमस्तरंगः समाप्तः ॥५॥

षष्ठस्तरंगः ६.

गुरु वेदादिसाधनमिथ्यावर्णन ।
कनिष्ठाधिकारीको उपदेशका प्रकार ।

दोहा।

चेतन भिन्न अनात्म सब, मिथ्यास्वप्नसमान ।
यों सुनि बोल्यो तीसरो, तर्कदृष्टि मति मान ॥१॥

१—चतुर्थ तरङ्गमें उत्तम अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कह्या. पंचमतरंगमें मध्यम अधिकारीकूं कह्या. या तरंगमें कनिष्ठ अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कहैं हैं.

जाकूं शंका बहुत उपजे ताकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवे है तथापि वह कनिष्ठ अधिकारी है. यह तरंग युक्तिप्रधान है, याते सुने अर्थमें जाकूं कुतर्क उपजे ताकूं इस तरंगका उपयोग है. कुतर्क दूषितबुद्धि कनिष्ठ अधिकारी होवे है. ताकूं उपदेशका प्रकार या तरंगमें है. पहले तरंगमें प्रणव उपासना और जगत्‌की उत्पत्तिनिरूपणसे पूर्व यह कह्याः—जो चेतनसे भिन्न अज्ञान और ताका कार्य अनात्म कहिये है सो अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याई मिथ्या है. इस बातकूं सुनिके दोनों भाइयोंकूं प्रश्नते उपराम देखिके तर्कदृष्टि प्रश्न करे है ॥ १ ॥

दोहा

पहली जानै वस्तुकी, स्मृति स्वप्नमें होय।
जाग्रतमैं अज्ञात अति, ताहि लखै नहिं कोय ॥२॥

पूर्व जो अत्यन्त अज्ञातपदार्थ है,ताका स्वप्नमें ज्ञान होवे नहीं. किंतु जाग्रतमें जाका अनुभव ज्ञान होवे ताकी स्वप्नमें स्मृति होवे है याते स्मृतिज्ञानके विषय जाग्रत्‌के पदार्थ सत्य होनेते तिनका स्वप्नमें स्मृतिरूप ज्ञान भी सत्य है,याते स्वप्नके दृष्टान्तसे जाग्रतके पदार्थनकूं मिथ्या कहना संभवे नहीं ॥२॥

अन्य प्रकारते स्वप्नज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करैं हैं—

दोहा।

अथवा स्थूलहिं लिंग तजि, बाहिर देखत जात।
गिरि समुद्रवनवाजिगज, सो मिथ्याकिहिं भाय॥३॥

अथवा कहिये और प्रकारते स्वप्नका ज्ञान और ताके विषय पदार्थ सत्य हैं मिथ्या नहीं, काहेते? स्वप्नावस्थामें स्थूलशरीरकूं त्यागिके लिंगशरीर बाहिर निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै है, याते स्वप्न मिथ्या नहीं॥३॥ २ प्रश्न

उत्तर दोहा।

यह हस्ती आगे खरो, ऐसो होवे ज्ञान।
स्वप्नमाहिं स्मृतिरूप सो, कैसे होय सुजान॥४॥

१–पूर्वकालसंबंधीपदार्थका ज्ञान स्मृति होवे है जैसे पूर्व देखे हस्तीकी "सो हस्ती" ऐसी स्मृति होवे है २–"यह हस्ती सन्मुख स्थित है" ऐसा ज्ञान स्मृति नहीं किंतु प्रत्यक्ष कहिये है और स्वप्नमें तो "यह हस्ती आगे-स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है" ऐसा ज्ञान होवे है याते जाग्रतमें देखे पदार्थनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं, किंतु हस्तिआदिकनका प्रत्यक्ष ज्ञान होवे है.

जो ऐसे कहैः–"जाग्रतमें जाने पदार्थनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवे है, अज्ञातपदार्थका ज्ञान नहीं होवे, याते जाग्रत पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनते स्वप्नके ज्ञानकी उत्पत्ति होवे है. संस्कारजन्य ज्ञान स्मृति कहिये है, याते

स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप है." सो शंका बने नहीं काहेते ? प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारका होवे है. १-एक अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवे है. २-दूसरा प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवे है. १-केवल इंद्रियसंबंधते जो ज्ञान होवे सो अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसे नेत्रके संबंधते हस्तीका "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञान अभिज्ञाप्रत्यक्ष है और पूर्व ज्ञानके संस्कारनते और इंद्रियसंबंधते जो ज्ञान होवे सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है . जैसे-पूर्व देखे हस्तीका "सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवे सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है, तहां पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार और हस्तीसे नेत्रका संबंध प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षका हेतु है. याते "संस्कारजन्य ज्ञान स्मृतिरूपही होवे है यह नियम नहीं. किंतु प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष भी संस्कारजन्य होवे है. परंतु इंद्रियसंबंध विना केवलसंस्कारजन्य ज्ञान होवे सो स्मृतिज्ञान कहिये है" १-स्वप्नमें हस्ती आदिकनका ज्ञान केवलसंस्कारजन्य नहीं. किंतु निद्रारूप दोषजन्य है और हस्ती आदिकनकी न्याई स्वप्नमें कल्पितइंद्रिय भी हैं, याते इंद्रियजन्य हैं, यद्यपि स्वप्नके पदार्थ साक्षीभास्य हैं, इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय नहीं, तथापि अविवेकीकी दृष्टिते स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य कहिये है. इस रीतिसे स्वप्नका ज्ञान जाग्रतके पदार्थनकी स्मृति नहीं. २-निद्रासे जागिके पुरुष ऐसे कहे हैः-"मैं स्वप्नमें हस्ति

आदिकनकूं देखता भया" जो हस्ति आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति होवे तो जागिके ऐसा कह्या चाहिये "मैं स्वप्नमें हस्तीआदिकनकूं स्मरण करता भया" ऐसे कोई नहीं कहता, याते जाग्रत्के पदार्थनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं. ३–"जाग्रतमें जो देखे सुने पदार्थ हैं तिनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवे है" यह नियम नहीं किंतु जाग्रत्में अज्ञातपदार्थनका भी स्वप्नमें ज्ञानहोवे है, कदाचित् स्वप्नमें ऐसे विलक्षणपदार्थ प्रतीत होवे हैं जो सारे जन्मविषे कभी देखे सुने होवे नहीं, याते तिनका ज्ञान स्मृति नहीं. ४–यद्यपि "इस जन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कार ही स्मृतिके हेतु हैं" यह नियम नहीं किंतु अन्यजन्मके ज्ञानके संस्कारनते भी स्मृति होवे, काहेते ? अनुकूलज्ञानते प्रवृत्ति होवे है, अनुकूलज्ञान विना प्रवृत्ति होवे नहीं, याते बालककी स्तनपानमें जो प्रथमप्रवृत्ति होवे है ताका हेतु बालककूं भी "स्तनपान मेरे अनुकूल है" ऐसा ज्ञान होवे है, तहां अन्यजन्मविषे जो स्तनपानमें अनुकूलता अनुभव करी है, ताके संस्कारनते बालककूं प्रथम अनुकूलताकी स्मृति होवे है, याते जन्मांतरके ज्ञानसंस्कारनते भी स्मृति होवे है, तैसे इस जन्म विषे अज्ञातपदार्थनकी भी अन्य जन्मके ज्ञानके संस्कारनते स्वप्नविषे स्मृति संभवे है, तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमें ऐसे प्रतीत होवे हैं, जिनका जाग्रतमें किसी जन्मविषे

ज्ञान संभवै नहीं. जैसे अपने मस्तक छेदनकूं आप नेत्र-नसे स्वप्नमें देखै है, तहां अपना मस्तकछेदन नेत्रसे जाग्रत्में देखे नहीं. याते जाग्रत् पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनते स्वप्नमें स्मृति नहीं. ९—ऐसे स्वप्नकूं स्मृतिरूप-खंडनमें अनेकयुक्ति ग्रंथकारोंने कही है, परंतु स्वप्नकूं स्मृति माननेमें पूर्वोक्त दूषण अतिप्रबल है. जो स्मृति ज्ञानका विषय सन्मुख प्रतीत होवे नहीं और स्वप्नके हस्ती आदिक संमुख प्रतीत स्वप्नकालमें होवे हैं यातें हस्ती आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं " लिंगशरीर बाहिर निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखे है ॥४॥

ताका उत्तर दोहा।

बाहिर लिंग जु नीकसे, देह अमंगल होय।
प्राणसहित सुन्दरलसै, याते लिंगहि जोय ॥ ९ ॥

जो स्थूलशरीरते निकसिके लिंगशरीर बाहिर साचे गिरिसमुद्रादिकनको देखै तौ लिंगशरीरके निकसनेते जैसे मरण अवस्थामें शरीर भयंकररूप प्रतीत होवे है, तैसे स्वप्नअवस्थाविषे भी लिंगके अभावते स्थूलशरीर अमंगल कहिये भयंकर हुआ चाहिये, तैसे प्राणरहित मृतकसमान हुआ चाहिये और स्वप्नअवस्थामें ऐसा होवे नहीं किंतु स्वप्न अवस्थामें स्थूलशरीर प्राणसहित होवे है और जाग्रत्की न्याईं सुंदर कहिये मंगलरूप होवे है याते स्थूलशरीरके बाहिर लिंगशरीर स्वप्नावस्थामें

निकसै नहीं. और जो ऐसे कहैं–स्वप्नअवस्थामें प्राण तो जावैं नहीं किन्तु अंतःकरण और इंद्रिय बाहिर पर्वतादिकनमें जायके तिनकूं देखैं हैं. बाहिर नहीं जावै यातें स्थूलशरीर मरणअवस्थाके समान भयंकर होवै नहीं. और प्राणका बाहिर जानेका कछु प्रयोजन भी नहीं. काहेतें? प्राणमें ज्ञानशक्ति नहीं किन्तु क्रियाशक्ति हैं, यातें बाहिरके पदार्थनके ज्ञानकी जिनमें सामर्थ्य है सोई जावै हैं, ज्ञानशक्ति अंतःकरण और इंद्रियनमें है प्राणकी न्याईं कर्मेन्द्रियनमें भी ज्ञानशक्ति नहीं, क्रियाशक्ति है. यातें प्राण और कर्मेन्द्रिय शरीरमें रहैं हैं यातें मरणनिमित्तते दाहादिकनकी रक्षा होवै है और बाहिर अंतःकरण ज्ञानेन्द्रिय जावै है, सांचे पर्वतादिकनकूं देखिके प्राण और कर्मेन्द्रियनके समीप आवै है सो भी बनै नहीं. काहेतें?

१–स्थूलसूक्ष्मसमाजमें सर्वका स्वामी प्राण है. प्राण बिना शरीरकूं देखिके क्षणमात्र भी रहने नहीं देते बाहिर लेजावैं हैं दाह करै हैं, स्पर्शते स्नान करै हैं. यातैंस्थूलशरीरका सार प्राण है. तैसे सूक्ष्मशरीरमें भी प्रधान प्राण है. ∴ प्राणइन्द्रियादिक परस्पर श्रेष्ठता विवाद करिके प्रजापतिके समीप जायके कह्या:हे भगवन्! हमारे विषे कौन श्रेष्ठ है? तब प्रजापतिने कह्या तुम सारे स्थूलशरीरमें प्रवेश करिके एक एक निकसतो जावो जिसके निक-

मानस में ब्रह्मज्ञान हो आवश्यक है

फिर मोक्षप्राप्ति

सेते शरीर अमंगलरूप होइके गिर पडे सो तुम्हारेमें श्रेष्ठ है, प्रजापतिके वचनतैं नेत्रादिकइन्द्रियनते एक एकके अभावते अंधादिरूप शरीरकी स्थिति देखी और प्राणके निकसनेका उद्योग करतेही शरीर गिरने लगा तब सर्वते यह निश्चय किया हमारा सर्वका स्वामी प्राण है. इस कारणतैं जितने शरीरमें प्राण रहैं उतने रहैं हैं शरीरतैं प्राणके निकसतेही सारे निकस जावे हैं. यातैं सूक्ष्मसमाजका राजाकी न्याईं प्राणही प्रधान है. ताके निकसे विना अंतःकरण ज्ञानइन्द्रिय कोई बाहिर निकसे नहीं.

२—किंवा अंतःकरण और ज्ञानइन्द्रिय भूतनके सत्त्व गुणनके कार्य हैं तिनमें ज्ञानशक्ति है क्रियाशक्ति नहीं. प्राणमें क्रियाशक्ति है ताके बलतैं मरणसमय लिंगशरीर इस स्थूलकूं त्यागिके लोकांतरकूं जावे है और प्राणकेही बलतैं इन्द्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर घटादिकनके समीप जावै है और प्राणके सहारे विना अंतःकरणादिकनका बाहिर गमन संभवै नहीं इसी कारणतैं योगशास्त्रमें कहा हैः—"प्राण निरोधविना मनका निरोध होवे नहीं, प्राणके संचारतैं मनका संचार होवे है, प्राणनिरोधतैं मनका निरोध होवे है,"यातैं मनका निरोधरूप जो राजयोग ताकी जिसकूं इच्छा होवे सो प्राणनिरोधरूप हठयोगका अनुष्ठान करै यातैं भी प्राणके अधीन अंतः-

करणका गमन है ताके निकसे विना अंतःकरण ज्ञान-इंद्रिय बाहिर निकसे नहीं.

३-स्वप्नअवस्थामें स्थूलशरीर प्राण समेत प्रतीत होवे है. यातैं "बाहिर जायके सांचे पदार्थनकूं स्वप्नमें देखे है" यह संभव नहीं.

४-किंवा कोई पुरुष अपने संबंधीसे स्वप्नमें मिलिके जो व्यवहार करे तौ जागिके वह संबंधी मिले तब ऐसे नहीं कहता कि, रात्रिको हम मिले थे.और अमुक व्यवहार किया था और पूर्वपक्षकी रीतिसे तो बाहर निकसिके ता संबंधीसे मिलिके व्यवहार सांचा किया है ता मिलनेका और व्यवहारका ज्ञान संबंधीकूं चाहिये और मिले जब संबंधीने कह्या चाहिये और सिद्धांतमें तो संबंधी और ताका मिलाप सब अंतरही कल्पित है.

५-किंवा जो बाहर जायके सांचे पदार्थनकूं देखे तो रात्रिमें सोया पुरुष हरिद्वारमें मध्याह्नके सूर्यते तपे महल गंगाते पूर्व और नील पर्वत गंगाते पश्चिम देखे है. तहां रात्रिमें मध्याह्नका सूर्य नहीं गंगाते पूर्वदिशामें हरिद्वारपुरी नहीं, गंगाते पश्चिम नील पर्वत नहीं. याते भी सांचे पदार्थनका देखना स्वप्नमें असंभव है और जाग्रत्की स्मृति अथवा ईश्वरकृत पर्वतादिकनका बाहिर निकसिके स्वप्नमें ज्ञान होवे है, "इन दोनों पक्षनका निराकरण किया है॥ ५॥

सिद्धांत कहे हैं। दोहा।

यातैं अंतर ऊपजै, त्रिपुटी सकल समाज।
वेद कहत या अर्थकूं, सब प्रमाण शिरताज ॥ ६ ॥

जाग्रत्के पदार्थनकी स्मृति और बाहिरी लिंगका निकसना तौ संभवै नहीं. तथापि जाग्रत्की न्याईं ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी स्वप्नमें प्रतीत होवे है. सब प्रमाणका शिरताज कहिये प्रधान जो वेद है ताने यह कह्या है:— उपनिषद्में यह प्रसंग है:—" जाग्रतके पदार्थ स्वप्नमें नहीं प्रतीत होवे किंतु रथ और घोडे तथा मार्ग, तैसे रथमें बैठनेवाले स्वप्नमें नवीन उत्पन्न होवे हैं" याते पर्वत समुद्र नदी वन ग्राम पुरी सूर्य चंद्र जो कुछ स्वप्नमें दीखै है सो नवीन उपजै है. जो स्वप्नमें पर्वतादिक नहीं होवैं तौ तिनका प्रत्यक्षज्ञान स्वप्नमें होवे है सो नहीं हुवा चाहिये, काहेते? विषयते इंद्रियका संबंध वा अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध प्रत्यक्षज्ञानका हेतु है याते पर्वतादिक विषय और तिनके ज्ञानके साधन इंद्रिय तथा अंतःकरण सारे अन्तर उत्पन्न होवे हैं.

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ शुक्तिरजतादिकनकी—न्याईं साक्षी भास्य हैं, अंतःकरण इंद्रियनका स्वप्नके ज्ञानमें उपयोगी नहीं याते ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं—तिनकीही

उत्पत्ति स्वप्नमें माननी योग्य है. ज्ञाता ज्ञान और इंद्रियनकी उत्पत्ति स्वप्नमें माननी योग्य नहीं. १-तथापि जैसे स्वप्नमें पर्वतादिक प्रतीत होवे हैं तैसे इंद्रिय अंतःकरण प्राणसहित स्थूलशरीर भी स्वप्नमें प्रतीत होवे है याते तिनकी भी उत्पत्ति माननी चाहिये. २-किंवा, स्वप्नके पदार्थनविषे नेत्रादिकनकी विषयता भान होवे है सो व्यावहारिक नेत्रादिकनकी विषयता तौ स्वप्नके प्रातिभासिक पदार्थनविषे बने नहीं. काहेते? समसत्तावाले पदार्थही आपसमें साधकबाधक होवैं हैं, यह पञ्चमतरंगमें प्रतिपादन करा है. याते व्यावहारिकनेत्रादिक शरीरमें हैं भी तिनतैं स्वप्नके पदार्थनकी विषमसत्ता होनेते तिनके ज्ञानकी विषयता स्वप्नके पर्वतादिकनकूं बने नहीं. ३-किंवा व्यावहारिक जो इंद्रिय हैं सो अपने अपने गोलकोंकूं त्यागिके कार्य करनेमें समर्थ होवें नहीं और स्वप्नअवस्थामें हस्तपाद वाक्के गोलक तौ निश्चल दूसरेकूं दीखे हैं और हस्तमें द्रव्य ग्रहण करिके पुकारता धावन करेहै याते स्वप्नमें इंद्रियनकी उत्पत्ति अवश्य माननी चाहिये. ४-तैसे सुख दुःख और तिनका ज्ञान तथा सुखदुःखज्ञानका आश्रय प्रमाता स्वप्नमें प्रतीत होवे है और बिनाहुये पदार्थकी प्रतीति होवे नहीं याते सारा त्रिपुटीसमाज स्वप्नमें उत्पन्न होवे है.

अनिर्वचनीयख्यातिकी यह रीति हैः—जितने भ्रमज्ञान हैं तिनके विषय सारे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवैं हैं. विषयबिना कोई ज्ञान होवे नहीं यह सिद्धांत है और शास्त्रनके मतमें तो अन्य पदार्थनका अन्यरूपते भान होवे सो भ्रम कहिये है. सिद्धांतमें तो जैसे—पदार्थ होवे तैसाही ज्ञान होवे हैं. याते भ्रमस्थलमें भी विषयकी उत्पत्ति अवश्य होवे है. विषयबिना ज्ञान होवे नहीं. इस रीति से स्वप्नमें त्रिपुटीकी प्रतीति होनेते सारा समाज उत्पन्न होवे है. स्वप्नके उत्पत्तिकी शंका करिके अन्तःकरण वा अविद्याके परिणाम और चेतनके विवर्त स्वप्नकी सिद्धि है।

याकेविषे ऐसी शंका होवे हैः—स्वप्नमें जो पदार्थ प्रतीत होवे हैं तिनकी उत्पत्ति अंगीकार होवे तो जैसे स्वप्नदृष्टांतसे जाग्रतके पदार्थ मिथ्या सिद्धांतमें कहे हैं तैसे जाग्रत्के पदार्थनकी न्याई उत्पत्तिवाले होनेते स्वप्नके पदार्थही सत्य हुये चाहिये और स्वप्नके माहिं पदार्थनकी उत्पत्ति नहीं माने तब यह दोष नहीं. काहेते? जाग्रत्के पदार्थ तो उत्पन्न हुये प्रतीत होवे हैं और स्वप्नमें पदार्थ बिनाहुए प्रतीत होवे हैं याते स्वप्नमें बिना हुए पदार्थनका ज्ञान भ्रमरूप होवे है. तिनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं ॥ ६ ॥

ता शंकाका समाधान-दोहा।

साधनसामग्री बिना, उपजै झूठ सो होय।
बिना सामग्री ऊपजे, यों तिहि मिथ्या जोय ॥७॥

१-जिस वस्तुकी उत्पत्तिमें जितना देशकालादि सामग्री, साधन कहिये कारण है उतनी सामग्री बिना उपजै सो मिथ्या कहिये है और स्वप्नके हस्ती आदिकनकी उत्पत्तिके योग्य देशकाल है नहीं बहुत कालमें और बहुतदेशमें उपजने योग्य हस्ती आदिक क्षणमात्र कालमें सूक्ष्मकंठदेशमें उपजै है याते मिथ्या हैं २-यद्यपि स्वप्नअवस्थामें कालदेश भी अधिक प्रतीत होवे है तथापि अन्यदार्थनकी न्याईं स्वप्नमें अधिक काल और अधिकदेश भी अनिर्वचनीय प्रातिभासिक उत्पन्न होवे है. काहेते? विषयविना प्रत्यक्षज्ञान होवे नहीं और स्वप्नमें अधिकदेशकालका ज्ञान होवे है, व्यावहारिकदेशकाल न्यून है याते प्रातिभासिक उत्पन्न होवे हैं परंतु स्वप्नअवस्थामें उपजै जो प्रातिभासिकदेशकाल सो स्वप्नअवस्थाके हस्ती आदिकनके कारण नहीं. काहेते? कारण होवे सो पहले उपजै है और कार्य पीछे उपजै है. स्वप्नके देशकाल और हस्ती आदिक एकही समयमें होवे हैं, याते तिनका कार्यकारणभाव बनै नहीं और व्यावहारिक देशकाल न्यून है; हस्ती आदिकनके योग्य नहीं, याते देशकालरूप सामग्री बिना

उपजे हैं. याते स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. ३—और भी मातासे आदिलेके हस्ती आदिकनकी सामग्री स्वप्नमें नहीं है. यद्यपि स्वप्नमें प्राणी पदार्थनके माता, पिता भी प्रतीत होवैं हैं तथापि स्वप्नके माता,पिता पुत्रकी उत्पत्तिके कारण नहीं. काहेते ? माता, पिता और पुत्र, एकक्षणमें साथ उपजैं हैं याते तिनका कार्यकारणभाव नहीं. जा निद्रासहित अविद्यासे स्वप्नके पदार्थ उपजैं हैं सोई अविद्या तिन पदार्थनविषे मातापना पितापना और पुत्रपना उपजावैं हैं. इस रीतिसे स्वप्नके पदार्थनकी उत्पत्तिमें और कोई सामग्री नहीं किन्तु अविद्याही निद्रारूप दोषसहित कारण है जो दोषसहित अविद्यासे जन्य होवे सो शुक्तिरजतकी न्याईं मिथ्या होवे है. याते स्वप्नके पदार्थ सत्य नहीं मिथ्या हैं. तिनका उपादानकारण अंतःकरण है अथवा साक्षात अविद्याही तिनका उपादानकारण है. १—पहले पक्षमें साक्षीचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है. २—दूसरे पक्षमें ब्रह्म चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है. इस रीतिसे अंतःकरणका अथवा अविद्याका परिणाम और चेतनका विवर्त स्वप्न है.

याके विषे ऐसी शंका होवे हैः—दूसरे पक्षमें ब्रह्म चेतनस्वप्नका अधिष्ठान कह्या और अविद्या उपादान कारण कही तहां: अधिष्ठानज्ञानसे कल्पितकी निवृत्ति होवे हैं और स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म है; याते ब्रह्मज्ञान बिना

अज्ञानीकूं जागरणमें स्वप्नकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये.

अन्य शंका–जैसे स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म और उपादानकारण अविद्या है, तैसे वेदांतसिद्धांतमें जाग्रत्के व्यावहारिक पदार्थनका भी अधिष्ठान ब्रह्म है और उपादानकरण अविद्या है; याते १–जाग्रत्के पदार्थनकूं व्यावहारिक कहैं हैं. २–स्वप्नकूं प्रातिभासिक कहैं हैं, ऐसा भेद नहीं हुवा चाहिये. काहेते ? दोनोंका अधिष्ठान ब्रह्म है और उपादानकारण अविद्या है. याते १–जाग्रत् स्वप्न दोनों व्यावहारिक हुए चाहिये. २–अथवा दोनूं प्रातिभासिक हुये चाहिये.

सो दोनों शंका बने नहीं. काहेतें ? प्रथमशंकाका यह समाधान है–निवृत्ति दो प्रकारकी होवे है, यह पूर्वख्याति निरूपणमें कही है. १–कारणसहित कार्यका विनाशरूप अत्यंतनिवृत्ति तो स्वप्नकी जाग्रतमें ब्रह्मज्ञानबिना बने नहीं २–परंतु दंडके प्रहारते जैसे घटका मृत्तिकामें लय होवे है, तैसे स्वप्नका हेतु जो निद्रादोष ताके नाशते वा स्वप्नकी विरोधी जाग्रत्की उत्पत्ति ते अविद्यामें लय रूप निवृत्ति स्वप्नकी ब्रह्मज्ञानबिना संभवै है.

और जो शंका करी–"जाग्रत् स्वप्न दोनों समान हुये चाहिये" सो बने नहीं. काहेते ? १–जाग्रतके देहादिक पदार्थका उत्पत्तिमें तो अन्य दोषरहित केवल अनादि अविद्याही उपादानकारण है. २–स्वप्नके पदा-

र्थनमें तो सादिनिद्रादोष भी अविद्याका सहायक है, १–यातें अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्यव्यावहारिक कहिये हैं. २–सादिदोषसहित अविद्याजन्य प्रातिभासिक कहिये हैं. १–स्वप्नके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्याजन्य होनेते प्रातिभासिक हैं. २–जाग्रत्के पदार्थ अन्य दोषरहित अविद्याजन्य होनेते व्यावहारिक कहिये हैं. इस रीतिसे स्वप्नके पदार्थनमें जाग्रत् पदार्थनते विलक्षणता है, परंतु यह संपूर्ण तीन प्रकारकी सत्ता मानिके स्थूलदृष्टिसे कही है. विचारदृष्टिसे तौ १–तीनिप्रकारकी सत्ता बने नहीं. २–जाग्रत स्वप्नकी परस्पर विलक्षणता भी बने नहीं.

यद्यपि वेदांतपरिभाषादिकग्रन्थनमें पूर्व प्रकारतें व्यावहारिक और प्रातिभासिकपदार्थनका भेद कह्या है. यातें तीनि सत्ता मानी हैं. तैसे विद्यारण्यस्वामीने भी तीनि सत्ता मानी हैं. काहेते? यह प्रसंग तिन्होंने लिखा है. दो प्रकारके देहादिक पदार्थ हैं. १–एक तो ईश्वररचित हैं सो बाह्य हैं और दूसरे जीवके संकल्परचित हैं सो मनोमय कहिये हैं, और अंतर हैं तिन दोनोंमें २–जीवसंकल्पते रचित अंतर मनोमय साक्षीभास्य हैं: और ईश्वररचित बाह्य हैं सो प्रमाता प्रमाणके विषय हैं: ३–अंतर मनोमय देहादिकही जीवकूं सुखदुःखके हेतु हैं और बाह्य जो ईश्वररचित हैं

सो सुखदुःखके हेतु नहीं. ४-याते मनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है और बाह्य प्रपंच सुख दुःखका हेतु नहीं याते ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं. जैसे दो पुरुषनके दो पुत्र विदेशमें गये होवे तिनमें एकका पुत्र मरिजावे, एकका जीवता होवे सो जीवता पुत्र बडी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसी पुरुषद्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूतिप्राप्तिका और द्वितीयके मरणका समाचार भेजे, तहां समाचार सुनावनेवाला दुष्ट होवे, याते जीवते पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र मरिगया और मरे पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र शरीरते निरोग है बडी विभूतिकूं प्राप्त हुआ है थोड़े कालमें हस्ति आरूढ़ बडे समाजते आवैगा. ता वंचकवचनकूं सुनिके १-जीवते पुत्रका पिता रोवै है. बडे दुःखको अनुभव करै है और मरे पुत्रका पिता बडे हर्षकूं प्राप्त होवे है. इस रीतिसे देशांतरविषे १-ईश्वररचित पुत्र जीवै है तो भी मनोमयपुत्र मरि गया याते दुःख होवे है. ईश्वररचित जीवतेका सुख होवे नहीं. २-तैसें दूसरेका ईश्वररचित पुत्र मरिगया है ताका दुःख होवे नहीं. मनोमय जीवै है ताका सुख होवे है. याते १-जीवसृष्टिही सुखदुःखकी हेतु है. २-ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी हेतु नहीं. इस रीतिसे विद्यारण्यस्वामीने जीवसृष्टिईश्वरसृष्टिदोप्रकारकी कहीहैं, तहां १-जीवसृष्टि प्रातिभासिक है. २-ईश्वरसृष्टि व्याव-

हारिक है, ऐसे और ग्रंथकारोंने भी सत्ता तीनि प्रकारकी कही है. १--चेतनकी परमार्थसत्ता है और चेतनसे भिन्न जड़ पदार्थनकी दो प्रकारकी सत्ता है. एक व्यावहारिक-सत्ता और दूसरी प्रातिभासिकसत्ता है. २--सृष्टिके आदिकालमें ईश्वर संकल्पतं उपजे जो केवल अविद्याके कार्य पंचभूत और तिनके कार्यकी व्यावहारिक सत्ता है. ३--दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्न शुक्तिरजतादिक-नकी प्रातिभासिकसत्ता है. इस रीतिसे १--जाग्रत्पदार्थ-नकी व्यावहारिकसत्ता. २--स्वप्नकी प्रातिभासिक सत्ता कही है. तथापि अनात्मपदार्थनकी सबकी प्रातिभासि-कही सत्ता है, याते दो प्रकारकीही सत्ता है. १--चेतनकी परमार्थ सत्ता है. २--चेतनसे भिन्न सकल अनात्माकी प्रातिभासिकही सत्ता है, जाग्रत् स्वप्नके पदार्थकी किंचित् मात्र भी विलक्षणता सिद्ध होवै नहीं. या उत्त-मसिद्धांतकूं प्रतिपादन करैं हैं ॥ ७ ॥

चौपाई ।

बिन सामग्री उपजत यातैं । स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं ॥
देशकालको लेश न जामैं । सर्व जगत्‌उपजत है तामैं ॥ ८ ॥
स्वप्न समान झूठ जग जानहु । लेशसत्य ताकूं मतिमानहु ॥
जाग्रतमाहिंस्वप्न नहिंजैसे । स्वप्नमाहिं जाग्रत नहिं तैसे ॥

देशकालसामग्री विना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिक उप-जैं याते मिथ्या कहिये हैं तैसे आकाशादिक प्रपंचकी

सृष्टि ब्रह्मते होवे है ता ब्रह्मविषे देशकालका लेश भी नहीं है. स्वप्नविषे हस्तीपर्वतादिकनके योग्य तौ देशकाल नहीं है, तथापि अल्पदेशकाल है,तैसे आकाशादिकनकी सृष्टिमें अल्पदेशकाल भी नहीं हैं काहेते? देशकालरहित परमात्मासे आकाशादिकनकी सृष्टि कही है. इस कारणते १–तैत्तिरीय श्रुतिमें आकाशादिकनकी क्रमते सृष्टि कही है, देशकालकी सृष्टि नहीं कही. २–सूत्रकार भाष्यकारने भी देशकालकी सृष्टि नहीं कही. सृष्टि नाम उत्पत्तिका है. तहां तैत्तिरीय–श्रुतिका और सूत्रकार भष्यकारका यही अभिप्राय हैः–आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देशकालसामग्री विना होवे है; याते आकाशादिक स्वप्नकी न्याईं मिथ्या है.

यद्यपि मधुसूदनस्वामीने देशकाल साक्षात् अविद्याके कार्य कहे हैं;याते मायाविशिष्टपरमात्मासे पहली मायाके परिणाम देश काल होवै हैं. तिसते अनंतर आकाशादिकनकी उत्पत्ति होवै है. याते योग्यदेशकालते आकाशादिकप्रपंचकी उत्पत्ति संभवै है.

तथापि मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय नहींः–जो देशकाल प्रथम होवे है और आकाशादिक उत्तर होवैं हैं काहेते? १–अतीतकालमें होवे सो प्रथम और पूर्व कहिये है. २–भविष्यकालमें होवे सो उत्तर कहिये है, जाकूं पाछे कहैं हैं. आकाशादिकनकी–उत्पत्तिते प्रथम

देशकाल उपजै हैं.या कहनेते आकाशादिकनकी उत्पत्तिकालते पूर्वकाल उपहितपरमात्मा देशकालका अधिष्ठान है; यह सिद्ध होवेगा. याते देशकालकी उत्पत्तिमें पूर्वकालकी अपेक्षा होवेगी और कालकी उत्पत्ति विना पूर्वकाल असिद्ध है. याते आकाशादिकनते पूर्वकालमें देशकालादिक होवे हैं; यह कहना बनै नहीं. किंतु, मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय है: -१-जैसे भूत भौतिक प्रपंच प्रतीत होवे है तैसे देशकाल भी प्रतीत होवे हैं और आत्मासे भिन्न कोई नित्य हैं नहीं. याते देशकाल नित्य नहीं और विनाहुयेकी प्रतीति होवे नहीं. याते आकाशादिकनकी न्याई देशकालकी भी उत्पत्ति होवे है. सो देशकाल मायाके परिणाम हैं और चेतनके विवर्त हैं, जो विवर्त होवे सो किसीका कारण होवे नहीं. याते आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्तिमें देशकालकूं कारणता बनै नहीं. २-किंवा कारण प्रथम होवे है, कार्य उत्तर होवे है. आकाशादिक प्रपंचते देशकाल प्रथम होवै है यह कहना बनै नहीं. यह वार्त्ता नजदीक कहि आये हैं. याते भी देशकालकूं आकाशादिक प्रपंचकी कारणता बनै नहीं, किन्तु स्वप्नके पिता पुत्रकी न्याई देशकालसहित आकाशादिक प्रपंच मायाविशिष्ट परमात्माते उत्पन्न होवै है और कोई पदार्थ किसी देशमें किसी काल उपजै है

अन्यदेशमें अन्यकालमें नहीं उपजै है. इस रीतिसे सारे पदार्थ प्रलयकालमें नहीं उपजैं हैं. सृष्टिकालमें उपजै हैं. याते देशकालकूं कारणता प्रतीति भी होवै है तो भी जा मायाते देशकालसहित प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है ता मायातेही देशकालमें कारणता, अन्यप्रपंचमें कार्यता प्रतीत होवै है और आकाशादि प्रपंचके देशकाल कारण नहीं याके विषे ऐसी शंका होवै है:-विनाहुये पदार्थनकी तौ प्रतीति होवै नहीं और सिद्धांतमें अंगीकार नहीं जो विनाहुयेकी प्रतीति मानै तो १-असत्ख्यातिका अंगीकार होवेगा और विनाहुए वंध्यापुत्र शशशृंगादिकनकी प्रतीति हुई चाहिये. याते विनाहुये की प्रतीति होवे नहीं. याते देशकालमें कारणता नहीं होवै तौ देशकालमें सर्व पदार्थनकी कारणता मायाके बलते भी प्रतीति नहीं हुई चाहिये और कारणता देशकालमें प्रतीति होवै है, याते देशकाल सर्व प्रपंचके कारण हैं और जो सिद्धांती ऐसे कहैं:-सर्वप्रपंचका कारण ब्रह्म है. ब्रह्मकी कारणता देश कालमें प्रतीत होवै है और देशकालमें कारणता नहीं सो भी बनै नहीं. काहेते? १-जैसे देशकालका अधिष्ठान ब्रह्म है, तैसे सर्व प्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है, देशकालमेंही ब्रह्मकी कारणता प्रतीत होवै, अन्यमें नहीं या कहनेमें कोई हेतु नहीं. याते अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमें प्रतीत होवे तो ब्रह्म

सर्व प्रपंचका अधिष्ठान है यातें सर्वप्रपंचमें कारणता प्रतीत हुई चाहिये. किसीमें कारणता, किसीमें कार्यता, ऐसा भेद नहीं चाहिये. २–किंवा देशकालमें कारणता नहीं है और ब्रह्ममें कारणता है सो ब्रह्मकी कारणता देश कालमें प्रतीत होवे या कहनेतें अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवेगा.काहेतें? अन्यवस्तुकी अन्यरूपतें प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैं हैं. देश काल कारण नहीं, यातें कारणतें अन्य अकारण है,तिनकी अन्यरूपतें कहिये कारणरूपतें प्रतीति माननेमें अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवेगा और सिद्धांतमें अन्यथाख्यातिका अंगीकार नहीं जो या स्थानमें अन्यथाख्याति मानैं तो शुक्तिमें अनिर्वचनीय रूपकी उत्पत्ति सिद्धांतमें मानी है सो निष्फल होवेगी. काहेतें ? अन्यथाख्यातिमें दो मत हैं:–एक तो अन्यदेशमें स्थित पदार्थकी अन्यदेशमें प्रतीति अन्यथाख्याति, जैसे कांताकरमें स्थित रजतकी सन्मुख शुक्तिदेशमें प्रतीति अन्यथाख्याति अथवा अन्य पदार्थकी अन्यरूपतें प्रतीति अन्यथाख्याति.जैसे शुक्तिकीही रजतरूपतें प्रतीति अन्यथाख्याति. ऐसे सारे भ्रमस्थलमें अन्यथाख्यातिसे निर्वाह संभवै है.अनिर्वचनीयरजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत होवेगा और जो सिद्धांती ऐसे कहैं:–विषयके समानाकार ज्ञान होवै है. अन्यवस्तुका अन्यरूपतें ज्ञान संभवै नहीं. यातें रजता-

कारज्ञानका विषय भी अनिर्वचनीयरजत उत्पन्न होवै है. या अद्वैत सिद्धांतमें कारणतें अन्य जो देश, काल, तिनविषे ब्रह्मकी कारणताका ज्ञान संभवै नहीं, यातें देश कालमें कारणता जो प्रतीत होवै है ताका विनाहुयेका अथवा ब्रह्ममें स्थितका भान संभवै नहीं. किंतु देश कालमेंही कारणता है ताका भान होवै है, इस रीतिसे " आकाशादिक प्रपंचके कारण देशकाल नहीं" यह कथन असंगत है, सो शंका बनै नहीं. काहेते ? ब्रह्मकी कारणता देशकालमें प्रतीत होवै है जैसे-जपापुष्प सम्बन्धी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है, अधिष्ठानकी सत्यता स्वप्नकालमें मिथ्या हस्तीपर्वतादिकनमें प्रतीत होवै है. तहां स्फटिकमें अनिर्वचनीयरक्तताकी उत्पत्तिका अंगीकार नहीं, किंतु पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. यातें श्वेतस्फटिककी रक्तरूपते प्रतीति होनेते रक्तताके ज्ञानमें अन्यथाख्यातिही मानी है, तैसे स्वप्नमें मिथ्यापदार्थनविषे सत्यता प्रतीत होवै. तहां अनिर्वचनीयसत्यता तिन पदार्थनविषे उत्पन्न होवै है, यह कथन तो "सत्य मिथ्या है" इस (व्याघातदोषवाले) वचनकी न्याई संभवै नहीं. और विनाहुयेकी प्रतीति होवै नहीं. किंतु स्वप्नके अधिष्ठान चेतनकी सत्यता मिथ्या पदार्थनमें प्रतीत होवै है. यातें मिथ्या पदार्थनकी सत्यरूपते

प्रतीति होनेते सत्यताके ज्ञानमें अन्यथाख्यातिही मानी है. तैसे अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमें अन्यथाख्यातिसे प्रतीत होवै है.

जो ऐसे कहैं:-इतने स्थानमें अन्यथाख्याति मानें तौ सारे भ्रममें अन्यथाख्यातिही माननी चाहिये. सो शंका बनै नहीं. कांहेते ? शुक्तिरजतादिकनमें अन्यथाख्याति माननेमें यह दोष कह्या है:-विषयते विलक्षण ज्ञान बनै नहीं और जहां स्फटिकमें रक्तताका ज्ञान होवै तहां रक्तपुष्पका स्फटिकते संबंध है, याते स्फटिकसंबन्धी पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवे है. कांहेते अन्तःकरणकी वृत्ति जब रक्तपुष्पाकार होवे ताही वृत्तिका विषय रक्तपुष्पसंबन्धी स्फटिक है, याते पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवे है और तैसे शुक्तिका तो रजतरूपते ज्ञान संभवै नहीं. कांहेते ? शुक्तिदेशमें अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिकरजत तौ अन्यमतमें है नहीं, किंतु शुक्ति है ता शुक्तिके संबंधसे शुक्तिके समानाकारही अन्तःकरणकी वृत्ति होवेगी, रजताकार अन्तःकरणकी वृत्ति होवे नहीं, याते अविद्याका परिणाम-चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत और ताका ज्ञान दोनों उत्पन्न होवैं हैं और स्फटिकमें रक्तता प्रतीत होवे तहां वृत्तिका संबंध स्फटिक और रक्तपुष्प दोनोंसे होवे है. रक्तपुष्पके संबंधते रक्ताकारवृत्ति होवे है, ता वृत्तिका स्फटिकतेभी

संबंध है और स्फटिकमें रक्तताकी छायाहै. याते पुष्पका धर्म रक्तता, स्फटिकमें ताही वृत्तिका विषय है. इस रीतिसे १–जहां दो पदार्थनका संबध है तहां एकके धर्मकी दूसरेमें प्रतीति संभवै है तहां अन्यथाख्यातिही संभवै है. २–जहां दोनों पदार्थनका संबंध नहीं तहां अन्यथाख्याति नहीं, किन्तु अनिर्वचनीयख्याति है, जैसे पुष्पसंबंधी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवे है तैसे स्वप्नके हस्तिपर्वतादिकनका भी अधिष्ठान चेतनते संबन्ध है याते चेतनकी धर्मसत्यता भी चेतनसंबन्धी हस्तीपर्वतादिकनमें प्रतीति होवे है सो अन्यथाख्याति है तैसे अधिष्ठानचेतनका धर्मकारणता अधिष्ठानचेतन संबंधी देशकालमें प्रतीत होवे है.

जो पूर्व शंका करी "अधिष्ठान चेतनका संबध सर्व प्रपंचते है जो संबंधीका धर्म अन्यथाख्यातिसे अन्यमें प्रतीत होवे तौ चेतनकी कारणता सर्वप्रपंचमें प्रतीत हुई चाहिये" सो शंका बने नहीं. काहेते १ १–जैसे स्वप्नमें दो शरीर उत्पन्न होवे हैं, एक शरीर पितारूप प्रतीत होवे है और दूसरा शरीर पुत्ररूप प्रतीत होवे तहां दोनों शरीरनका स्वप्नके अधिष्ठानचेतनतें संबध भी है तथापि पिताशरीरमें अधिष्ठानचेतनकी कारणता प्रतीत होवे है और पुत्रशरीरमें कारणता प्रतीत होवे नहीं; किन्तु पिताजन्य पुत्र है, इस रीतिसे पुत्रशरीरमें

कार्यता प्रतीत होवे है इस रीतिसे यद्यपि अधिष्ठानचेतनसे संबंध तो सर्वका है, तथापि देशकालमें चेतनधर्म कारणताकी प्रतीति होवे है औरनमें कार्यताकी प्रतीति होवे है. २–अथवा अधिष्ठानचेतन असंग है सो किसीका परमार्थते कारण नहीं. मायामें आभास यद्यपि कारण है तथापि आभासका स्वरूप मिथ्या होवे है. जो आप ही मिथ्या होवे सो दूसरेका कारण बने नहीं. याते परमात्माविषे प्रपंचकी कारणता होवे तो ताकी देशकालमें भ्रमते प्रतीत संभवै.सो परमात्माविषे कारणता है नहीं. परमात्मा कारणतादिक धर्मरहित असंग है. ताकी कारणता देशकालमें प्रतीत होवे है:यह कहना संभवै नहीं,किन्तु,मायाकृत अनिर्वचनीय देशकाल अनिर्वचनीय कारणतावाले होवैं हैं. और परमार्थसे देशकाल कारण नहीं. जैसे पुत्रहीन पुरुष स्वप्नमें पुत्र पौत्र दोनोंकूं देखें तहां पुत्र पौत्रशरीर अनिर्वचनीय होवै है और पुत्रशरीरमें पौत्रशरीरकी अनिर्वचनीयकारणता होवै है. तहां परमार्थसे पुत्रशरीर और पौत्रशरीरका परस्पर कार्यकारणभाव नहीं होवे है. तैसे अनिर्वचनीयकारण देश काल प्रतीत होवै है. परमार्थसे देश काल और आकाशादिकप्रपंचका कार्यकारणभाव है नहीं.इस रीतिसे देश काल सामग्रीविना जाग्रतप्रपंचकी उत्पत्ति होवे है. याते स्वप्नकी न्याईं जाग्रत भी मिथ्या है.

जैसे-स्वप्नके स्त्री पुत्रादिक स्वप्नमेंही सुखदुःखके हेतु हैं, जाग्रत्‌में तिनका अभाव है,तैसे-जाग्रत्‌के पदार्थनका स्वप्नमें अभाव होवै है दोनों सम हैं और जाग्रत्‌के पदार्थ ज्ञानके साथही होवै हैं, याते दूसरी जाग्रत्‌में रहैं नहीं.

जो ऐसे कहैं-जाग्रत्‌से स्वप्न होयके फिर जाग्रत् होवे तहां पहली जाग्रतके जो पदार्थ हैं, सोई स्वप्नव्यवहित दूसरी जाग्रतमें रहै हैं. और प्रथमस्वप्नके पदार्थ दूसरे स्वप्नमें नहीं रहैं हैं याते स्वप्नके पदार्थनते जाग्रत्‌के पदार्थ विलक्षण हैं.

सो शंका भी सिद्धांतके अज्ञानी मूढनकी दृष्टिते होवे है. काहेते ? ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है, संसारप्रवाहअनादि है तामें जीवनकूं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति होवे है. १-जाग्रत कालमें स्वप्न सुषुप्ति नष्ट होवे है. २-स्वप्नकालमें जाग्रत् सुषुप्ति नष्ट होवे है. ३-तैसे सुषुप्तिकालमें जाग्रत् स्वप्न नष्ट होवे है. परंतु स्वप्न सुषुप्ति होवे तब जाग्रत्‌कालके स्त्री पुत्र पशु धनादिक दूरि होवे नहीं. किन्तु बने रहैं तिनका ज्ञानहीं दूरि होवे है. फिर जाग्रत् होवे तब प्रथम जाग्रत्‌के विद्यमान पदार्थनका ज्ञान होवे है. यह अज्ञानी मूर्खनकी दृष्टि है.

सिद्धांत यह है:-१- सारे पदार्थ चेतनका विवर्त हैं, २- अविद्याका परिणाम है. याते शुक्तिरजतकी न्याई जिसकालमें जो पदार्थ प्रतीत होवे तिसकालमें अधिष्ठान

चेतन आश्रित अविद्याका द्विविधपरिणाम होवे है. १-अविद्याके तमोगुण अंशका घटादि विषयरूप परिणाम होवे है. २-अविद्याके सत्त्वगुणका ज्ञानरूप परिणाम होवे है. यद्यपि चेतनकूं ज्ञान कहैं हैं, याते सत्त्वगुणका परिणाम ज्ञान है. यह कहना बनै नहीं, तथापि सारे व्यापकचेतन ज्ञान नहीं,किन्तु साभासवृत्तिमें आरूढ चेतनकूं ज्ञान कहैं हैं. याते चेतनमें ज्ञानव्यहारकी संपादकवृत्ति है इस रीतिसे चेतनमें ज्ञानपनेकी संपादक वृत्ति है. इस रीतिसे चेतनमें ज्ञानपनेकी उपाधि वृत्ति है ताके विषेभी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवे है जैसे लोकमें कहैं हैं "घटका ज्ञान उत्पन्न हुआ पटका ज्ञान नष्ट हुआ" तहां वृत्तिमें आरूढ चेतनका तो उत्पत्ति नाश सम्भवै नहीं, वृत्तिके उत्पत्ति नाश होवै हैं और ज्ञानके उत्पत्ति नाश कहैं हैं. याते वृत्तिमें भी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवै है सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्त्वगुणका परिणाम है यह कहना संभव है. १-तावृत्तिरूप परिणाममें चेतनका आभास होवे है. २-घटादिक विषय प परिणाममें चेतनका आभास होवे नहीं, काहेते? विषय और वृत्ति यद्यपि दोनों अविद्याके परिणाम हैं तथापि १-घटादिक विषय तो अविद्याके तमोगुणका परिणाम है यातैं मलिन हैं तिनमें आभास होवे नहीं. २-वृत्ति, सत्त्वगुणका परिणाम स्वच्छ है तामें आभास होवे है इस रीतिसे १-वृत्तिको

चेतनके आभासग्रहणकी योग्यता होनेते वृत्तिअवच्छिन्न चेतनको ज्ञान कहैं हैं और साक्षी कहैं हैं. २-घटादिक विषयकूं आभास ग्रहणकी योग्यता नहीं. इस कारणते विषयअवच्छिन्न चेतन ज्ञान नहीं और साक्षी भी नहीं. इस रीतिसे जाग्रत्के पदार्थ और तिनका ज्ञान दोनों साथही उत्पन्न होवैं हैं और साथही नष्ट होवैं हैं. यह वेदका गूढ सिद्धांत है. याते जाग्रत्के पदार्थ दूसरी जाग्रत्में रहैं हैं; यह कहना संभवै नहीं.

यद्यपि स्वप्नते जागे पुरुषकूं ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवै है "जो पूर्वपदार्थ थे सोई यह पदार्थ हैं." याते जाग्रत्के पदार्थनका ज्ञानके समकाल उत्पत्ति नाश नहीं होवै है, किंतु ज्ञानसे प्रथमविद्यमान होवै है और नाशते अनंतर भी रहै है.

तथापि जैसे स्वप्नके पदार्थ तिस क्षणमें उत्पन्न होवै है और ऐसे प्रतीत होवै हैं:-"मेरे जन्मसे भी प्रथम उपजे ये पर्वतसमुद्रादिक है" तहां तत्काल उपजे पदार्थनमें बहुकाल स्थिरताकी भ्रांति होवै है याते जा अविद्याने मिथ्यापर्वत समुद्रादिक उपजाये हैं तिसी अविद्यासे बहुकालस्थिरता और स्थिरताकी प्रतीति अनिर्वचनीय उपजै है. तैसे जाग्रतके पदार्थनविषे भी अनेक दिन स्थिरता है नहीं, किंतु अविद्याबलसे मिथ्या स्थिरता भी तिन पदार्थनके साथ उपजिके प्रतीत होवै है.

जो ऐसे कहैं:–१–स्वप्नके पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम हैं. २–जाग्रत्के पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम नहीं. किन्तु घटकी उत्पत्ति दंडचक्र कुलालसे होवै है तैसे सर्व पदार्थनकी उत्पत्ति अपने अपने कारणते होवे है, साक्षात् अविद्यासे नहीं.जो साक्षात् अविद्याके परिणाम होवैं तो आकाशादिक क्रमते पंचभूतनकी उत्पत्ति और पंचीकरण तिनसे ब्रह्मांडकी उत्पत्ति श्रुतिमें कही है सो असंगत होवेगी याते ईश्वरसृष्टी जाग्रत्के पदार्थ अपने अपने उपादानके परिणाम हैं. अविद्याके साक्षात् परिणाम नहीं. १–स्वप्नके तो सारे पदार्थ अविद्याके परिणाम हैं. तिनका एक अविद्या उपादान होनेते तिन पदार्थनकी और तिनके ज्ञानकी एक अविद्यासे एक कालमें उत्पत्ति संभवै है. २–जाग्रत्केपदार्थ भिन्न भिन्न कारणसे उत्पन्न होवै हैं. कार्यते पहले कारण होवे है और कारणमें कार्यका लय होवै है,याते घटकी उत्पत्तिसे प्रथम और घटनाशते आगे मृत्पिंड रहै है; इस रीतिसे कोई पदार्थ अल्प काल स्थिर और कोई अधिककालस्थिर कार्यकारण हैं तैसे स्वप्नके नहीं.

सो शंका बनै नहीं. काहेते ? जाग्रत्के पदार्थनकी न्याईं स्वप्नके पदार्थनविषे भी कार्यकारणभाव प्रतीत होवे है, जैसे किसीकूं ऐसा स्वप्न होवे:–मेरी गऊके बच्छा हुवा है अथवा मेरी स्त्रीके पुत्र हुआ है. तहां गऊ

और स्त्रीविषे कारणताकी प्रतीति और बहुकालस्थायिताकी प्रतीति होवे है, वत्स और पुत्रविषे कार्यता और अल्पकालस्थिरता प्रतीति होवे है और सारे समकाल है, कोई किसीका कारण नहीं, किंतु गऊ वत्स स्त्री आदिकनका अविद्याही उपादान है. तैसे जाग्रतविषे भी कोई अधिककालस्थायी कारणस्वरूपते कोई न्यूनकालस्थायीकार्यरूपते स्वप्नकी न्याई प्रतीत होवे है कोई किसीका परस्पर कार्य कारण नहीं, किंतु साक्षात् अविद्याके कार्य हैं.

श्रुतिविषे जो क्रमते सृष्टि कहीहै तहां सृष्टिप्रतिपादनमें श्रुतिका अभिप्राय नहीं, किंतुअद्वैतबोधनमें अभिप्राय है. सारे पदार्थ परमात्मासे उपजें हैं, याते ताके विवर्त हैं, जो जाका विवर्त होवे सो ताकाही स्वरूप होवे है, याते सारा नामरूप ब्रह्मते पृथक् नहीं, ब्रह्मही है, इस अर्थबोधन करनेकूं सृष्टि कही है सृष्टिका और प्रयोजन नहीं. तहां क्रमका जो कथन है, सो स्थूलदृष्टिकूं विपरीत क्रमते लय चिंतनके निमित्त है ताका भी अद्वैत बोध ही प्रयोजन है याते क्रमकथनमें भी अभिप्राय नहीं सृष्टिमें क्रम नहीं है किंतु सारे पदार्थ एक अविद्यासे उपजैं हैं. तिसका परस्पर कार्यकारण भाव और पूर्व उत्तरभाव, अविद्याकृत स्वप्नकी न्याई मिथ्या प्रतीत होवै है, और श्रुतिने तिनकी आपसमें कार्यका

रणता और पूर्वउत्तरता कही है, सो लय चिंतनके निमित्त कही है ध्यानमें यह निय नहीं, जैसा स्वरूप होवे तैसा ही ध्यान होवे है, याते जाग्रतके पदार्थनका आपसमें कार्यकारणभाव नहीं.

किंतु सारे पदार्थ साक्षात् अविद्याके कार्य हैं, शुक्ति-रजतकी न्याईं वा स्वप्नकी न्याईं अविद्याकी वृत्ति उपहितसाक्षीते तिनका प्रकाश होवै है, याते सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं और ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार अविद्याका परिणाम एकही कालमें उपजै है, साथही नष्ट होवै है याते जब पदार्थकी प्रतीति होवे, तबही प्रतीतिका विषय पदार्थ होवे है अन्यकालमें नहीं होवे है याहीकूं दृष्टिसृष्टिवाद कहैं है.

या पक्षमें पदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं, ज्ञातसत्ता है. अद्वैतवादमें यह सिद्धांतपक्ष है, या पक्षमें दो सत्ता हैं तीनि नहीं, काहेते ? अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याईं प्रातिभासिक हैं प्रतीतिकालसे भिन्नकालमें अनात्माकी सत्ता नहीं, याते तीसरी व्यावहारिकसत्ता नहीं या पक्षमें सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं, प्रमाताप्रमाणका विषय कोई भी नहीं, काहेते? अंतःकरण और इंद्रिय तथा घटादिक, सारी त्रिपुटी और ज्ञान स्वप्नकी न्याईं एककालमें उपजैं हैं, तिनका विषयविषयीभाव बनै नहीं जो घटादिक विषय और नेत्रादिकइन्द्रिय तैसे अंतःकरण

ये ज्ञानते प्रथम होवें तो नेत्रादिद्वारा अंतःकरणका वृत्तिरूप ज्ञान प्रमाणजन्य होवे. अंतःकरण, इंद्रिय. विषय. तीनो ज्ञानके पूर्वकालमें है नहीं, किन्तु ज्ञानसमकालही स्वप्नकी न्याईं त्रिपुटी उपजै है. याते त्रिपुटीजन्य ज्ञान कोई भी नहीं तथापि ज्ञानविषे स्वप्नकी न्याईं त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवे है, याते जाग्रतके पदार्थ साक्षीभास्य हैं, प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय नहीं. याते भी स्वप्नकी समान मिथ्या हैं १-किंवा जाग्रतमें कितने पदार्थनकूं मिथ्यारूप करिके जानें हैं.२—औरनकूं सत्यरूपकरिके ऐसे जानें हैंः-अनादिकालके पदार्थ हैं तिनमें कोई नष्ट होवे है,और तिसके समान उत्पन्न होवे है-ऐसे प्रपंचधाराको उच्छेद कभी होवे नहीं. जाकूं ज्ञान होवे है ताकूं प्रपंचकी प्रतीति होवे नहीं औरनकूं प्रपंचकी प्रतीति होवे है ता ज्ञानके साधन वेदगुरु हैं तिनते परमसत्यकी प्राप्ति होवे है, ऐसी प्रतीति जाग्रतमें होवे है. १-तहां किसी पदार्थमें मिथ्यापणा, २-किसीमें नाश, ३-किसीमें उत्पत्ति, ४-वेदगुरुते परम पुरुषार्थकी प्राप्ति ये सारे अविद्याकृत स्वप्नकी न्याईं मिथ्या हैं. वासिष्ठमें ऐसे अनंत इतिहास कहे हैं. १-क्षणमात्रके स्वप्नमें बहुकाल प्रतीत होवे है और जाग्रतकी न्याईं स्थायी पदार्थ प्रतीत होवैं हैं और तिनते बहुतकाल

(भ्रम का ... ...
(कार्य " ... "
...

भोग होवे है याते जाग्रत्पदार्थकी स्वप्नते किंचित् विलक्षणता नहीं किंतु आत्म भिन्न सर्व मिथ्या है ॥ ८१० ॥

शिष्य उवाच–दोहा।

लाख हजारन कल्पको, यह उपज्यो संसार।
यामें ज्ञानी मुक्ति है, बंधे अज्ञ हजार ॥ ११ ॥
झूठो स्वप्न समान जो, क्षण घटिका है याम।
बद्ध कौनको मुक्त है, श्रवणादिक किहि काम ॥ १२ ॥

ईश्वरसृष्टि अनंतकल्पते अनादि है तामें ज्ञानी मुक्तहोवे हैं, अज्ञानीकूं बंध रहे हैं स्वप्न समान होवे तो स्वप्न एक क्षण घडी तथा पहर होवे है तैसे संसार भी क्षण अथवा घडी वा पहरकाल वा किंचित् अधिक काल होवेगा. १–स्वप्नकी न्याईं स्वल्पकाल स्थायी संसार होवे तो अनादिकालका बंधन नहीं होवेगा, २–बंधनिवृत्तिरूप मोक्षके निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे.

गुरुः–यद्यपि पूर्वोक्त सिद्धांतमें १–बंध मोक्ष वेद गुरु अंगीकार नहीं. २–किन्तु चेतन नित्यमुक्त है ३–अविद्याके परिणाम चेतनमें नाना विवर्त होवे हैं ताते आत्मरूपकी किंचित मात्र भी हानि नहीं. ४–आत्मा सदा असंग एकरस है ५–आजतक कोई मुक्त हुआ नहीं. आगे होवे नहीं किन्तु चेतन नित्यमुक्त है ६–अविद्या और ताके परिणामका चेतनसे किसी कालमें सम्बन्ध नहीं

याते बंध और वेद गुरु श्रवणादिक और समाधि तथा मोक्ष इनकी प्रतीतिभी स्वप्नकी न्याई अविद्याजन्य है याते मिथ्या है. ७-इन विषे बहुतकाल स्थायिता भी अविद्याजन्य है, तथापि या सिद्धांतकूं नहीं जानिके स्थूल दृष्टिका प्रश्न है ॥ ११ ॥ १२ ॥

गुरुवाक्य-दोहा।

अगृधदेवकूं स्वप्नमें, भ्रम उपज्यो जिहि रीति।
शिष तोकूं यह ऊपजी, बंध मोक्ष परतीति ॥ १३ ॥

हे शिष्य! जैसे निद्रादोषते स्वप्नमें अध्यापक अध्ययन, वेदशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र और अध्ययनकर्त्ता कर्म और तिनका फल प्रतीत होवे है और तिन सर्व पदार्थनमें सत्यताकी भ्रांति होवे है, तथापि स्वप्नके सारे पदार्थ मिथ्या हैं. तैसे जाग्रत्के सारे पदार्थ मिथ्या हैं तिन विषे सत्यता प्रतीति भ्रम है. दोहेमें बंध मोक्ष ग्रहणते सर्व अनात्माका ग्रहण है जैसे तेरेकूं हम गुरु प्रतीति होवे हैं, वेद अर्थका बंध विघातक उपदेश करे है सो तेरेकूं मिथ्याप्रतीति है, जैसे अगृधदेवकूं स्वप्नमें मिथ्या प्रतीतिके विषय गुरु वेदादिक अनिर्वचनीय उपजे हैं तैसे तेरी प्रतीतिके विषे मेरेसे आदि लेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्या है. सो अगृधदेवको ऐसा स्वप्न हुवा है-एक अगृध नामदेवता अनादिकालका निद्रामें सोवता हुआ स्वप्नकूं देखता भया. ता स्वप्नमें तिस पुरुषकूं ऐसी प्रतीति हुई

१-जो मैं चांडाल हूँ. २-महादुखी हूँ. ३-अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेद वीर्यरूप सप्त धातुसे मेरा मुख भऱ्या है. ४-महाघोर भयङ्कर सर्प हस्ती आदिक से युक्त जो वन ताके विषे मैं भ्रमण करूं हूं. सो देवता भ्रमण करता हुआ ता वनमें अनंत स्थान देखता हुआ. १-कहूं नाना भयंकर प्राणी सन्मुख भक्षण करनेकूं धावन करै हैं. २-कहूं राध रुधिरसे भरे कुण्ड हैं तिनमें पडे प्राणी हाहाकारशब्द करै हैं. ३-कहूं लोहेके तप्त स्तंभ हैं, तिनसे बंधे पुरुष रोवैं हैं. ४-कहूँ तप्तबालुयुक्त मार्ग होयके नग्नपाद पुरुष जावैं हैं और तिन पुरुषनकूं राजभट लोहमय डण्डोंसे ताडना करै हैं. इस रीतिसे १-नाना जो भयंकरस्थान हैं तिनकूं सो देवता देखता हुआ. २-कदाचित आपभी अपराध करिके स्वप्नमें तिन दुःखको प्राप्तहोता भया. कहूँ दिव्य स्थान देखता हुआ, १-तिन स्थानमें उत्तम देव विराजे हैं. २-तिन देवनके दिव्य भोग हैं. ३-अमृतके दर्शन मात्र तिनकूं तृप्ति रहै है. ४-क्षुधा तृषाकी बाधा तिन देवनकूं होवे नहीं, ५-मल मूत्र रहित जिनका प्रकाशमान शरीर है, ६-उत्तम विमानमें स्थित होयके कोई देव रमण करै है, सो विमान ता देवकी इच्छाके अनुसार गमन करै है, ७-कहूँ रंभा उर्वशीसे आदिलेके अप्सरा नृत्यकरैं हैं तिनके संपूर्ण अंग दोषरहित हैं और संपूर्ण

स्त्री गुणयुक्त हैं. ८--उत्तम सुगंध तिनके शरीरसे कामकी प्रकाशक आवैं हैं और कहूं तिनसे देव रमण करैं हैं, ९--कदाचित् आप भी देवभावकूं प्राप्त होयके तिनसे बहुत काल रमण करै है. १०--कदाचित् तिन अप्सरानसे दिव्य स्थानमें रमण करताहुआ अकस्मात् रुधिर मलपूरित जो कुंड हैं तिन विषें मज्जन करै है.

एक स्थानमें सर्वका अधिपति पुरुष स्थित है ताके आज्ञाकारी अनुचर ताके आगे स्थित हैं. १--कितने पुरुषनकूं सो अधिपति और ताके अनुचर सौम्यरूप प्रतीत होवैं हैं. २--कितने पुरुषनकूं महाभयंकररूप प्रतीत होवै है. ३--ता वनमें स्थित पुरुषनकूं कर्मके अनुसार फल देवैं हैं, इसरीतिसे अगृध नाम देवता स्वप्नकालमें नाना जो स्थान हैं तिनकूं देखता हुआ, १--कहूं अन्यस्थानमें ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करै हैं, २--कहूं यज्ञशालामें उत्तमकर्म करै हैं. ३--कहूं उत्तम नदी बहैं हैं, तिनमें पुण्यके निमित्त लोक स्नान करैं हैं, ४--कहूं ज्ञानवान् आचार्य शिष्यनकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करैं हैं. ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके ता वनसे निकसि जावैं हैं. इस रीतिसे स्वप्नविषे अगृध नाम देवता क्षणमात्रमें नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ता वनमें देखताहुआ. ताकूं ऐसी प्रतीति स्वप्नमें हुई जो १--मैं अनंतकालका या वनमें स्थित हूं, २--या वनका कभी उच्छेद होवै नहीं. ३--काल-

चित् बागवान् चारिमुखनसे नानाबीज निकासिके वनकी उत्पत्ति करै है और जलसेचनसे पालन करैं हैं और कदाचित् घोरहास्य करिके मुखसे अग्नि निकासिके वनका दाह करै है. ४--वनकी उत्पत्तिके संगही मेरी उत्पत्ति होवै है और वनके दाहसंगही मेरा दाह होवै है. ५--सर्व वनका दाह करिके सो बागवान् एकही रहै है. ६--ताके शरीरमें वनके बीज रहै हैं, यह प्रतीति स्वप्न-वेदके श्रवणसे ता अगृधदेवताकूं स्वप्नही विषे हुई॥१३॥

अगृधदेवका गुरुसे मिलाप।

तब वारंवार अपना जन्म मरण सुनिके ता अगृध-देवने विचार किया. १--जो किसी प्रकारसे वनके बाहर निकस जाऊं. २--वनके बाहर नहीं भी निकसूं तौ भी चांडालभाव मेरा दूरि होय जावे और देवभाव सदा बन्या रहे. ३--सो और तौ कोई उपाय बनते निकलनेका है नहीं, ब्रह्मविद्याके उपदेश करनेवाला आचार्य अपने शिष्यकूं वनके बाहर निकासे हैं. यह विचारके आचा-र्यकूं स्वप्नकालमें ही सो अगृधदेवता प्राप्त हुआ सो विधि-पूर्वक प्राप्त हुआ जो शिष्य ताकूं आचार्य देववाणीरूप मिथ्या ग्रंथउपदेश करताहुआ.

मिथ्या आचार्यका मिथ्या शिष्यकूं मिथ्या संस्कृत ग्रंथसे उपदेशग्रंथके मंगलाचरण।

संस्कृतग्रन्थ जो मिथ्याआचार्यने मिथ्याशिष्यकूं

उपदेश किया ता ग्रंथकूं भाषाकरिके लिखैं हैं. संस्कृत ग्रंथके भाषा करनेमें मंगल करैं हैं. काहेते ? १–मंगल करनेते जो ग्रंथकी समाप्तिके प्रतिबंधक विघ्न हैं तिनक नाश होवे है. विघ्न नाम पापका है पापते शुभकार्यकी समाप्ति होवै नहीं ता पापका मंगलते नाश होवे है २–जो पापरहित होवै सो भी ग्रंथके आरम्भमें मंगल अवश्य करै. काहेते ? जो ग्रंथ आरम्भमें मंगल नहीं किया होवै तौ ग्रंथकर्ताविषे पुरुषनकूं नास्तिकभ्रांति होयके ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं.

सो मंगल तीनि प्रकारका है–एक वस्तुनिर्देशरूप है और दूसरा नमस्काररूप है और तीसरा आशीर्वाद-रूप है. सगुण अथवा निर्गुण जो परमात्मा सो वस्तु कहिये है ताके कीर्तनका नाम वस्तुनिर्देश कहिये है. अपना अथवा शिष्यनका जो वांछितवस्तु ताके प्रार्थ-नका नाम आशीर्वादरूप मंगल कहिये है. सो अपने वांछितका प्रार्थन चतुर्थ दोहेमें स्पष्ट है.शिष्यके इष्टका प्रार्थन पंचम दोहेमें स्पष्ट है.

गणेश और देवीकूं ईश्वरता पुराणमें प्रसिद्ध है. याते अनीश्वरका चिंतन नहीं और पुराणमें गणेशका जो जन्म है सो जीवनकी न्याई कर्मका फल नहीं. किंतु, रामकृष्णादिकनकी न्याई भक्तजनके अनुग्रहवास्ते पर-मात्माकाही अविर्भाव होवै है. व्यास भगवान्‌का

परम अभिप्राय है, या स्थानमें यह रहस्य है:--परमार्थ-दृष्टिसे जीव भी परमात्मासे भिन्न नहीं, परंतु जन्ममरणादिक बंधक आत्माविषे जो अध्यास सो जीवका जीवपना है सो जन्मादिक बंध गणेशादिकनकूं आत्मामें प्रतीत होवै नहीं याते जीव नहीं.इसरीतिसे गणेशादिकनकूं ईश्वरता है, याते ग्रंथके आरंभमें तिनका चिंतन योग्य है,नानारूप ईश्वरका जो कथन है सो सर्वकूं ईश्वरता द्योतन करनेवास्ते है और ईश्वर भक्ति और गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्तिका मुख्य साधन है, इस अर्थको भी द्योतन करनेवास्ते है.

निर्गुणवस्तुनिर्देशरूपमंगल–दोहा ।

जो विभु सत्य प्रकाशते, परकाशत रवि चंद ।
सो साक्षी मैं बुद्धिको, शुद्धरूप आनंद ॥ १ ॥

सगुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल–दोहा ।

नाशै विघ्न समूलते, श्रीगणपतिको नाम ।
जा चिंतनविन है, नहीं देवनहूके काम ॥ २ ॥
त्रिपुरवधमें यह वार्ता प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

नमस्काररूपमंगल -सोरठा ।

असुरनको संहार, लक्ष्मीपारवतीपति ।
तिन्हैं प्रणाम हमार, भजतनकूं संतत भजैं ॥ ३ ॥

स्ववांछितप्रार्थनात्मकआशीर्वादरूप–मंगल–दोहा ।

जा शक्तिकी शक्ति लहि, करै ईश यह साज ।
मेरी वाणीमें बसहु, ग्रंथसिद्धिके काज ॥ ४ ॥

शिष्यवांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद दोहा।

बंधहरण सुखकरण श्री, दादू दीनदयाल।
पढै सुनै जो ग्रन्थ यह, ताके हरहु जँजाल ॥ ५ ॥

वेदांतशास्त्रकर्ता आचार्य नमस्काररूप—
मंगल कवित्त।

वेदवादवृक्ष बन भेदवादी वायु आय,
पकर हलाय क्रिया कंटक पसारिके।
सरल सुशुद्ध शिष्य कंज पुनि तोरि गेरि,
शूलनमैं फेरत फिरत फेरि फारिके ॥
पेखि सु पथिक भगवान जान अनुचित,
अंकमें उठाय ध्याय व्यासरूप धारिकै।
सूत्रकी बनाइ जाल वनको विभाग कीन्ह,
करत प्रणाम ताहि निश्चल पुकारिके ॥ ६ ॥

जैसे वायु, वनमें पैठके वृक्षनकूं हलायके तिनके कंटक पसारिके सुंदर कमलनके पुष्पनकूं स्वस्थानसे तोरिके कंटकन विषे भ्रमावै तिन भ्रमते पुष्पनकूं देखिके पथिकके चित्तमें ऐसी आवे कि, ये सुंदर कमल या स्थान योग्य नहीं. किंतु, उत्तम स्थान योग्य हैं. यह विचारिके तिन पुष्पनकूं उठाइ लेवै और फिर विचार करै जो आगे भी पवन कंटकन विषे पुष्पनकूं तोडिके भ्रमण करावेगा, याते ऐसा उपाय करूं जाते फिर वायु कंटकनमें पुष्पनकूं भ्रमावे नहीं, यह विचारिके सूत्रके

जालसे कंटकयुक्त वृक्षनका विभाग करि देवे ता जालसे पुष्पनका कंटकनमें प्रवेश होवे नहीं.

तैसे भेदवादी आचार्यरूप जो वायु है सो वेदरूपी बनमें वाद कहिये अर्थवादरूप जो कंटकसहित वृक्ष हैं तिन्हते सकामकर्मरूपकंटक प्रवर्त्त करिके सरल कहिये कपटरहित और सुशुद्ध कहिये अतिशुद्ध रागादि दोषरहित जो शिष्यरूप कमलपुष्प तिन्हकूं समाधि-रूप जो स्वस्थान तासों तोरिके सकामकर्मरूप कंट-कनविषे भ्रमावते देखिके पथिकसमान व्यापक विष्णुने विचार किया. जो यह सुन्दर कमलरूप शुद्धपुरुष या स्थान योग्य नहीं है, किंतु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होने योग्य है- यहविचारि के व्यासरूप धारिके तिन्ह शिष्य-नकूं उपदेशरूप अंकमें स्थापन किया. जैसे पुरुषके अंकमें स्थित पुष्पकूं वात उडानेविषे समर्थ नहीं, तैसे ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके उपदेशमें स्थित पुरुषकूं भेदवादि बहकावनम समर्थ नहीं; याने उपदेशही अंक कहिये गोद है.फिर व्यासभगवान्ने विचार किया जो भेदवादि औरपुरुषनकूं आगे भी सकामकर्म रूप कंटकनमें भ्रमा-वेंगे. याते ऐसा उपाय होवे जाते आगे शिष्य भ्रमैं नहीं; यह विचारिके सूत्ररूपीजालसे वेदके वाक्यरूप वृक्ष-नका विभाग करिदिया.

जैसे वनमें दोप्रकारके वृक्ष होवें; १ -सकंटक,२--कंटक

रहित तिन्हका जालसे विभाग करि देवे और जालते पुष्पनका कंटकसहित वृक्षनमें प्रवेश होवे नहीं. तैसे वेदमें दोप्रकाके वाक्य हैं. १–एक तौ कर्मकी स्तुति करके कर्मविषे बहिर्मुख पुरुषकी प्रवृत्ति करावैं हैं; २–दूसरे कर्मके फलकूं अनित्य बोधन करिके पुरुषकी निवृत्ति करावैं हैं; तिन्ह वाक्यनका वेदव्यासने विभाग करिके सूत्रनसे यह बोधन किया जो सर्व वाक्यनका निवृत्तिमें तात्पर्य है, प्रवृत्तिमें किसी वाक्यका भी तात्पर्य नहीं. जो प्रवृत्तिबोधक वाक्य हैं तिन्हका भी स्वाभाविक और निषिद्ध जो प्रवृत्ति है तासे निवृत्ति करिके विहितप्रवृत्तिसे अन्तःकरण शुद्ध होयके तासे भी निवृत्ति होयके ज्ञाननिष्ठपुरुष होवे. इस रीतिसे निवृत्तिमें तात्पर्य है और अर्थवादवाक्यने जो कर्मका फल बोधन किया है सो गुडजिह्वान्यायते किया है. फलमें तिनका तात्पर्य नहीं, यह अर्थ सूत्रनसे व्यासजीने बोधन किया है या अर्थकूं सूत्रन जानिके पुरुषकी सकामकर्ममें प्रवृत्ति होवे नहीं जैसे सूतका जाल पुष्पनकूं कंटकनसे निरोध करै है तैसे व्यास भगवान्के सूत्र सकामकर्मनसे निरोध करैं हैं; याते जालरूप कहे ॥ ६ ॥

दोहा।

कोउक शिष्य उदारमति, गुरुके शरणै जाय।
प्रश्न कियो कर जोरिके, पादपद्म शिरनाय ॥ ७ ॥

शिष्य उवाच। प्रश्न-२-उत्तर३२८

प्रश्न-१ भो भगवन् मैं कौन यह, संसृति कातैं होइ।
" ३- हेतुमुक्तिको ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ ॥ ८ ॥

उत्तर ३३३ १–हे भगवन्! मैं कौन हूँ देहस्वरूप हूं अथवा देहसे भिन्न हूं? मैं मनुष्य हूं और मेरा शरीर है, यह दो प्रतीति होवे हैं याते मेरेकूं संशय है और देहसे भिन्न भी जो आप कहो तौ मैं कर्त्ता भोक्ता हूं अथवा अक्रिय हूं? जो अक्रिय कहो तो भी सर्वशरीरविषे एक हूं अथवा नाना हूं? यह प्रथमप्रश्नका अभिप्राय है. २–यह संसृति कहिये संसार ताका कर्त्ता कौन है? याका यह अभिप्राय है–या संसारका कोई कर्त्ता है अथवा आपही होवे है, जो कर्त्ता कहो तौ भी कोई जीव कर्त्ता है अथवा ईश्वर कर्त्ता है? जो ईश्वर कहो तो भी एक देशमें सो ईश्वर स्थित है अथवा सो ईश्वर व्यापक है? जो व्यापक है तो भी जैसे व्यापक आकाशते जीव भिन्न है, तैसे ता ईश्वरते जीव भिन्न है अथवा ईश्वरते जीव अभिन्न है? और मुक्तिका हेतु ज्ञानहै अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं? जो दो कहो तौ भी ज्ञान कर्म है. अथवा ज्ञान उपासना है अथवा कर्म उपासना है?७॥८॥

श्रीगुरुरुवाच–अर्द्धदोहा।

१ प्रश्न का उत्तर सत चित आनँद एक तूं, ब्रह्म अजन्य असंग।

प्रथम शिष्यने प्रश्न किया, ताका उत्तर कहैं

है-"तूं सत् चित् आनंदस्वरूप है" या कहनेते देहते भिन्न कह्या. काहेते? देह असत्रूप है और जडरूप है और दुःखरूप है और कर्ता भोक्ता भी नहीं. काहेते? १-जाके विषे दुःखहोवे सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी प्राप्तिवास्ते क्रिया करे सो कर्ता कहिये है. सो तेरे विषे दुःख है नहीं. याते दुःखकी निवृत्तिवास्ते क्रियाका कर्ता नहीं..तूं आनंदस्वरूप है, याते सुखकी प्राप्तिके निमित्त भी तू क्रियाका कर्ता नहीं. २-जो कर्ता होवे सोई भोक्ता होवे है तू कर्ता नहीं याते भोक्ता भी नहीं पुण्य पापका जनक जो कर्म है ताका कर्ता और सुख दुःखका भोक्ता स्थूलसूक्ष्मसंघात है, तू नहीं, तू संघातका साक्षी है. याहीते आत्मा एक है नाना नहीं. जो आत्मा कर्ता भोक्ता होवे तब तो नाना होवे. काहेते? कोई सुखी है, कोई दुःखी है और कर्ता भोक्ता एकही अंगीकार होवे तो एकके सुख होनेते तथा दुःख होनेते सर्वकूं सुख तथा दुःख हुवा चाहिये. याते भोक्ता नाना हैं और आत्मा भोक्ता है नहीं, याते एक है.

पूर्वपक्षी-सांख्यके मतमें आत्मा कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करिके नानापुरुष जो अंगीकार किये सो अत्यंत विरुद्ध है. काहेते? सांख्यका सिद्धांत है:- १-सत्त्व रज तमगुणोंकी सम अवस्थाका नाम प्रधान कहैं हैं, सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं, विकृति नाम

कार्यका है और प्रकृति नाम उपादानकारण है, सो प्रधान महत्तत्त्वका उपादानकारण है, याते प्रकृति है और अनादि है, याते विकृति नहीं और महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रा ये सात प्रकृति हैं, उत्तर उत्तरके प्रकृति हैं और पूर्व पूर्वके विकृति हैं; तन्मात्रा भी भूतनके प्रकृति हैं, इस रीतिसे सात प्रकृति विकृति हैं और पंचभूत और दशइंद्रिय और मन ये सोलह विकृति हैं, प्रकृति नहीं और पुरुष प्रकृति विकृति नहीं, काहेते? जो हेतु किसी पदार्थका होवे तो प्रकृति होवे और कार्य होवे तो विकृति होवे, सो पुरुष किसीका हेतु नहीं, याते प्रकृति नहीं और कार्य नहीं याते विकृति नहीं याते पुरुष असंग है, इस रीतिसे सांख्यमतमें पचीसतत्त्व हैं तत्त्वनाम पदार्थका है, २—सांख्यमतमें ईश्वरका अंगीकार नहीं. ३—स्वतंत्रप्रकृति, जगत्का कारण है. ४--पुरुषके भोग मोक्षके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवे है, पुरुष नहीं, ५--प्रकृतिके विषयरूप परिणामते पुरुषकूं भोग होवे है, ६--बुद्धिद्वारा विवेकरूप प्रकृतिके परिणामतैं मोक्ष होवे है, ७ यद्यपि पुरुष असंग है ताकेविषे भोग मोक्ष बनै नहीं तथापि ज्ञान सुख दुःख रागद्वेषसे आदिलेके बुद्धिके परिणाम हैं, ता बुद्धिका आत्मासे अविवेक है, विवेक नहीं. याते आत्मामें आरोपित बंध मोक्ष हैं परमार्थसे नहीं. ८—अविवेकसिद्धि जो आत्मामें भोग

तासेही आत्माकूं सांख्यमतमें भोक्ता कहै हैं. ९--परमार्थंसे आत्मा भोक्ता नहीं बुद्धिही भोक्ता है. १०--बुद्धि आत्मासे भिन्न है. ११--इस ज्ञानका नाम विवेक है. १२--ताके अभावका नाम अविवेक है, इसरीतिसे सांख्यमतमें १३--आत्मा असंग है. १४--सुखादिक बुद्धिके परिणाम हैं, याते बुद्धिके धर्म हैं. १५--आत्मा नाना हैं.

सिद्धांती--सो वार्त्ता अत्यंत विरुद्ध है. जो सुख दुःख आत्माके धर्म होवें तो सुख दुःखके प्रति शरीर भेद होनेते आत्माका भेद होवे. सो सुख दुःख आत्माके धर्म तो हैं नहीं किन्तु बुद्धिके धर्म हैं.याते सुख दुःखके भेदसे बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवे है आत्माका भेद सिद्ध होवे नहीं.जैसे एकही व्यापक आकाशमें नाना उपाधिके धर्म उपाधि और आकाशके अविवेकसे प्रतीत होवे हैं तैसे एकही व्यापक आत्मामें नाना बुद्धिके धर्म अविवेकसे प्रतीत होवे हैं, यह वार्त्ता सांख्यमतमें अंगीकार करनी उचित है. आत्माकूं असंग मानिके नाना अंगीकार करने निष्फल हैं और कोई आत्मा मुक्त है औरनकूं बंध है, इस रीतिसे बंध मोक्षके भेदसे जो आत्माका भेद अंगीकार करे सोभी बने नहीं. काहेते? जो बंध मोक्ष आत्मामें अंगीकार करें तो बंध मोक्षके भेदसे आत्माका भेद सिद्ध होवे, सो बंधमोक्ष सांख्यमतमें असंग आत्मामें अंगीकार किये नहीं,किंतु बुद्धिके अविवेकसे बंध अंगी-

कार किया है और बुद्धिके विवेकसे बंधका मोक्ष अंगीकार किया है, जो वस्तु अविवेकसे होवे और विवेकसे दूरि होवे सो वस्तु रज्जु सर्पकी न्याई मिथ्या होवे है, आत्माविषे भी बुद्धिके अविवेकसे बंध है और विवेकसे दूर होवे है, याते बंध मिथ्या है, जैसे बंध मिथ्या है, तैसे आत्माका मोक्ष भी मिथ्या है; जामें बंध सत्य होवे; ताकाही मोक्ष सत्य होवे है और आत्मामें बंध मिथ्या है; याते मोक्ष भी मिथ्याही है. इस रीतिसे मिथ्या जो बंध मोक्ष सो आकाशकी न्याई एक आत्मामें भी बनै है, तिनके भेदसे आत्माका भेद सिद्ध होवे नहीं याते सांख्यमतमें आत्माका भेद असंगत है.

तैसे—न्यायमतमें भी आत्माका भेद असंगत है. काहेते ? यह न्यायका सिद्धांत है:-१ सुख दुःखे, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग ये चतुर्दश गुण जीवरूप आत्माविषे हैं. २—संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न ये अष्ट गुण ईश्वरमें हैं. इतना भेद है:—ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न नित्य हैं और जीवके तीनों अनित्य हैं. ईश्वर व्यापक है और नित्य है, जीव नाना हैं और अपूर्ण व्यापक हैं, ईश्वरका ज्ञान नित्य है-जीवका ज्ञान अनित्य है याते जब ज्ञान गुण होवै तब तो जीव चेतन है और ज्ञानगुणका नाश होवे

तब जड़रूप रहैं हैं. ३–ईश्वर जीवकी नाई आकाश, काल, दिशा, मन नित्य हैं. ४–पृथिवी, जल,तेज वायुके परमाणु नित्य हैं जो झरोखेमें सूक्ष्म रज प्रतीत होवे है, ताके छठे भागका नाम परमाणु है. परमाणु आत्माकी न्याईं नित्य हैं, ५-सो भी जातिसेआदि लेके कितनेपदार्थ न्यायमतमें नित्य हैं. वेदविरुद्धसिद्धांतका बहुत लिखनेका जिज्ञासुकूं उपयोग नहीं, याते लिखे नहीं. ६–"मैं मनुष्य हूं, ब्राह्मण हूं" ऐसी जो देहविषे आत्मभ्रांति तासे राग द्वेष होवे है. ता राग द्वेषते धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्त होवे हैं, तिनते शरीरके संबधद्वारा सुख दुःख होवे हैं, इस रीतिसे न्यायमतमें आत्माकूं संसारका हेतुभ्रांतिज्ञान है. ७–सो भ्रांतिज्ञान तत्त्वज्ञानसे दूरिहोवे है,देहादिक संपूर्ण पदार्थनसे "आत्मा भिन्न है" या निश्चयका नाम तत्त्वज्ञान है. ता तत्त्वज्ञानसे " मैं ब्राह्मण हूँ, मनुष्य हूं" यह भ्रांति दूरि होवै है. भ्रांतिके नाशते रागद्वेषका अभाव होवै है तिन्हके अभावते धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवै है प्रवृत्तिके अभावते शरीर सम्बन्धरूप जन्मका अभाव होवैहै और प्रारब्धका भोगते नाश होवै है. शरीरसम्बन्धके अभावते इक्कीसदुःखका नाश होवै हैं. ९–सो दुःखका नाशरूपही न्यायमतमें मोक्ष है एक शरीर और श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण, मन ये षट्इंद्रिय और षट् इंद्रियोंके विषय और षट्

इन्द्रियोंके ज्ञान और सुख दुःख ये इक्कीस दुःख हैं, शरीरादिक भी दुःखके जनक हैं, याते दुःख कहिये है और स्वर्गादिकोंका सुख भी नाशके भयते दुःखका हेतु है, याते दुःख कहिये है.

यद्यपि न्यायमतमें श्रोत्र और मन नित्य है तिन्हका नाश बने नहीं.तथापि जिसरूपकरिके श्रोत्र मन दुःखके हेतु है तिस रूपका नाश होवै है पदार्थनके ज्ञानकी उत्पत्ति करिके दुःखके हेतु हैं.सो पदार्थनका ज्ञान मोक्षकालमें श्रोत्र और मन करैं नहीं काहेते ? जो कर्णगोलकमें स्थित आकाश है सो श्रोत्र कहिये है, ता कर्णगोलकका मोक्षकालमें अभाव है याते आकाशरूप श्रोत्र इंद्रिय है भी परन्तु गोलकके अभावते ज्ञान होवै नहीं, इस रीतिसे ज्ञानका जनक जो श्रोत्रइंद्रियका स्वरूप सोई दुःख है और ताका ही नाश होवै है. १०—आत्माके साथ मनके संयोगते ज्ञान होवै है सो मनका संयोग न्याय सिद्धांतमें एककी क्रियाते अथवा दोकी क्रियाते होवै है. जैसे बीजवृक्षका संयोग एक बाजकी क्रियाते होवै है और दो मेषनका संयोग दोकी क्रियाते होवै है तैसे विभु आत्मामें तौ क्रिया कभी भी होवै नहीं और मोक्षकालमें मनमें भी क्रिया होवै नहीं. याते संयोगवान् मनकाही मोक्षकालमें अभाव होवै है.

कोई एकदेशी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञानका

हेतु कहैं हैं. आत्माके संयोगकूं नहीं सुषुप्तिमें पुरीतम् नाम नाडीविषे मन प्रवेश करे है. त्वचासे मनका संयोग है नहीं. याते सुषुप्तिमें ज्ञान होवे नहीं तिन्हके मतमें त्वचासे संयोगवाला मनही ज्ञान द्वारा दुःखका हेतु होनेते दुःखरूप है, केवल मन नहीं. मोक्षमें त्वचाके नाश होनेते ताके साथ संयोग है नहीं याते ज्ञान होवे नहीं. मोक्षकालमें मन है भी परन्तु दुःखका हेतु जो ज्ञानका जनक त्वचासे संयोगवाला मन ताका संयोगके नाशते नाश होवे है. ११–इस रीतिसे मोक्षकालमें परमात्मासे भिन्नही दुःखरहित होयके व्यापक आत्मा जडरूपस्थित होवे है. काहेते? ज्ञानगुणते आत्माका प्रकाश होवे है.सो जीवका ज्ञान संपूर्ण इंद्रियजन्यही है, नित्य है नहीं. ता इंद्रियजन्य ज्ञानका मोक्षकालमें नाश होवे है, याते प्रकाशरहित जडरूप होयके आत्मा मोक्षकालमें स्थित होवे है, यह न्यायका सिद्धांत है; न्यायमतमें पूर्वउक्तप्रकारसे सुख दुःख और बंधमोक्ष आत्माकूं होवैं हैं, याते आत्मा नाना है और संपूर्ण व्यापक है. सर्व अल्प पदार्थनसे जो संयोग सोई न्यायमतमें व्यापकका लक्षण है और सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदका अभाव, व्यापकका लक्षण नहीं, काहेते। न्यायमतमें यद्यपि आत्मा निरवयव है. याते स्वगत भेदका तो ताके विषे अभाव है भी परंतु सजातीय और विजातीयके भेदका अभाव नहीं किन्तु

१–सजातीय जो दूसरा आत्मा ताका भेद आत्मामें है. २–विजातीय घटादिकनका भेद भी आत्मामें है. याते सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदका अभाव व्यापकका लक्षण नहीं, किंतु सर्व अल्पपदार्थनसे संयोगही व्यापकका लक्षण है.

याके विषे कोई शंका करेहै–न्यायमतमें आत्माकी न्याईं आकाश, काल, दिशा भी व्यापक हैं और परमाणु सूक्ष्म हैं निरवयव हैं. तिनसे सर्वव्यापक पदार्थनका संयोग बने नहीं, काहेते? जो परमाणु सावयव होवैं तब तो किसी देशमें आत्माका संयोग होवे और किसी देशमें अन्यव्यापकपदार्थनका संयोग होवे, सो परमाणु सावयव है नहीं, किंतु निरवयव हैं औरअतिसूक्ष्म हैं. तिन्हके साथ एकही देशमें सर्वव्यापकपदार्थनका संयोग होवेगा सो बने नहीं, काहेते? जो एकके संयोगसे स्थान निरुद्ध है, ता देशमें अन्यपदार्थका संयोग बनै नहीं. याते नानापदार्थनकूं व्यापकता बने नहीं, एकही कोई पदार्थ व्यापक बने है.

यह शंका बनै नहीं. काहेते? जो सावयववस्तुका संयोग है सो तो अन्यके संयोगका विरोधी है, १–जैसे ज पृथ्वीदेशमें हस्तका संयोग होवे तादेशमें पादका संयोग होवे नहीं और निरवयवका संयोग स्थानकूं रोकै नहीं याते अन्यके संयोगका विरोधी नहीं यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है

२-जैसे घटके जा देशमें आकाशका संयोग है ता देशमेंही कालका और दिशाका संयोग भी है. जो कोई घटका देश आकाशकालदिशासे बाहिर होवे तौ ता देशमें आकाशकालदिशाका संयोग होवे नहीं सो बाहिर तो कोई देश है नहीं. किंतु सर्वपदार्थनके सर्वदेश आकाश, दिशामेंहीं हैं याते सर्वपदार्थनके सर्व देशनविषे आकाश, काल, दिशाका संयोग है इसरीतिसे परमाणुविषे भी एकहीदेशमें नानानिरवयवविभुका संयोग बनैहै. कोई दोष नहीं, याते आत्मा नानाहैं और संपूर्णव्यापकहैं.

सिद्धांती-सर्वका सर्वपदार्थनसे संयोग है यह न्यायका सिद्धांत है सो समीचीन नहीं. काहेते ? व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करैं तौ सर्वशरीरमें सर्व आत्माका संबंध अंगीकार करना होवेगा. याते कौन शरीर किसका है ? यह निश्चय नहीं होवेगा. किंतु एक एक आत्माके सर्वशरीर हुये चाहिये, जो ऐसे कहैं:-जाके कर्मसे जो शरीर उत्पन्न हुआ है ता आत्माका शरीर है तो भी बनै नहीं, काहेते? कर्म जा शरीरसे होवे है ता कर्म करनेवाले पूर्वशरीरमेंभी सर्वआत्माका संबन्ध है, याते कर्म भी सर्व आत्माकेही होवेंगे एकके नहीं और ऐसे कहैं:-जा आत्माके मनसहित शरीर है ता आत्माका सो शरीर है. सो भी बनै नहीं काहेते ? १-शरीरकी न्याईं मनके साथ भी सर्व आत्माका संबन्ध है ताके विषे यह निश्चय होवे नहीं

जो कौनसा मन किस आत्माका है, किंतु सर्व आत्माके सर्व मन हुए चाहिये. २-तैसे इंद्रिय भी सर्व आत्माके सर्वही होवेंगे. ३-बाहरके पदार्थनविषे "यह मेरा है यह औरका है" ऐसा व्यवहार भी शरीरनिमित्तक है, सो शरीर सर्व आत्माके सर्व हैं, याते बाहरका पदार्थ भी सर्व आत्माके सर्व हुए चाहिये और जो ऐसे कहैं-जा आत्माकूं जा शरीरमें अहंबुद्धि और ममबुद्धि होवे ता आत्माका सो शरीर है. सो अहंबुद्धि और ममबुद्धि एक है; याते सर्व आत्मामें रहै नहीं. किंतु एक धर्म एकही धर्मीविषे रहै है. याते एकही आत्माका शरीर है. जा आत्माका जो शरीर है ता शरीरके संबंधी मन इंद्रिय और बाहरके पदार्थ ता आत्माके हैं. याते व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करनेमें भी दोष नहीं.

सो वार्त्ता भी बनै नहीं. काहेते ? यद्यपि अहंबुद्धि एक देहमें एकही आत्माकूं होवे है. तथापि सो न्यायमतमें बनै नहीं, किंतु सर्व आत्माकूं एकदेहमें अहंबुद्धि हुई चाहिये, काहेते ? न्यायमतमें बुद्धि नाम ज्ञानका है सो ज्ञान आत्मा और मनके संयोगते होवेहै सो मनके साथ संयोग सर्व आत्माका है याते मनके संयोगते जैसे एकदेहमें एक आत्माकूं अहंबुद्धि होवे है तैसे एकदेहमें सर्व आत्माकूं अहंबुद्धि हुई चाहिये. जो ऐसे कहैः-यद्यपि मनका संयोग सर्व आत्मासे है तथापि जा आत्मामें ज्ञानका जनक

अदृष्ट है ता आत्माकूंही अहंबुद्धि होवे है तौ भी सर्वकूं ही ज्ञान हुआ चाहिये. काहेते? जो व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करें तो एक शरीरकी शुभ अशुभ क्रियाते शरीरमें स्थित सर्व आत्मामेंही अदृष्ट हुए चाहिये. यह वार्त्ता पूर्व कहि आये. यातैं व्यापक जो नाना आत्मा अंगीकार करें तो एकदेहमें सर्वकूं सुख दुःखका भोग हुआ चाहिये. यातै व्यापक नानाकर्ता भोक्ता आत्मा है यह न्यायका सिद्धांत समीचीन नहीं.

हमारे सिद्धांतमें तो कर्त्ता भोक्ता अंतःकरण है. सो अंतःकरण नाना है, व्यापक और अणु नहीं किंतु शरीरके समान ता अंतःकरणका परिमाण है. दीपकके प्रकाशकी न्याईं बडे शरीरकूं प्राप्ति होवे तब अंतःकरणका विकाश होवे है और न्यूनशरीरमें संकोच होवे है,यह वार्त्ता सिद्धांतबिंदुके व्याख्यानमें मधुसूदन स्वामीने प्रतिपादन करी है—जा अंतःकरणका जा शरीरसे संबंध है ता अंतःकरणकूं ता शरीरसे भोग होवे है. जो अंतःकरणकूं व्यापक अंगीकार करैं तो सर्व शरीर सर्वके होवें और भोग भी सर्वकूं होवे,सो व्यापक अंतःकरण नहीं; यातेे दोष नहीं और अंतःकरणकूं अणु अंगीकार करें तौ शरीरके एकदेशमें अंतःकरण रहै है, ऐसा अंगीकार करना होवेगा. सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेते? जो एककालमेंही पाद और मस्तकमें कंटकवेध होवे

तौ दोनों स्थानमें एकही कालमें पीड़ा होवे है सो नहीं हुई चाहिये; काहेते ? जो अंतःकरण अणु होवे तौ एकही स्थानमें एककालमें रहै याते जा स्थानमें अन्तःकरण होवे ता स्थानमेंही पीडा हुई चाहिये; दोनों स्थानमें नहीं. याते अंतःकरण अणु और व्यापक नहीं, किंतु शरीरके समान है. याते कोई दोष नहीं, अणु और व्यापकसे विलक्षण जो है ताकूंही मध्यमपरिमाण कहै हैं.

न्यायमतमें किसी नवीनने ऐसा अंगीकार किया है १- आत्मा नाना है, कर्त्ता भोक्ता है. व्यापक नहीं. याते भोगका संकर नहीं. २-अणु भी नहीं, याते दो स्थानमें पीड़ाका असंभव भी नहीं. किंतु जैसे वेदांतमें अंतःकरण मध्यम परिमाण है तैसे आत्मा भी मध्यम परिमाण है ताके विषे चतुर्दश गुण रहै हैं.

सो भी समीचीन नहीं. काहेते ? १-जो आत्माकूं संकोच विकाशवाला अंगीकार करें तौ दीपकी प्रभाकी न्याईं आत्मा विकारी और विनाशवाला होवेगा. याते मोक्षप्रतिपादक शास्त्र और साधन निष्फल होवेंगे. २-मध्यमपरिमाण अंगीकार करिके संकोचविकाश अंगीकार नहीं करै तो कौनसे शरीरके समान आत्माकूं अंगीकार करें ? यह निश्चय होवे नहीं, ३-जो मनुष्यशरीरके समान अंगीकार करें तो जब आत्मा हस्तीके शरीरकूं प्राप्त होवे तब सर्व शरीरमें आत्मा नहीं होवेगा याते

जा देशमें हस्तीके आत्मा नहीं हैं ता देशमें पीडा नहीं हुई चाहिये. ४—हस्तीके शरीरके समान अंगीकार करें तो तासे और शरीर बढे हैं तिनके एक देशमें पीडा नहीं हुई चाहिये और सर्वसे बडा किसीका शरीर है नहीं जाके समान आत्मा अंगीकार करें.५—सर्वसे बडा विराट्का शरीर है ताके समान जो आत्मा अंगीकार करें तो विराट्के शरीरके अंतर्भूत सर्व शरीर हैं. याते सर्व आत्माका सर्व शरीरसे संबंध होवेगा, ताके विषे पूर्व-दोष कहेही हैं और यह नियम है:-जो मध्यम परिमाण वस्तु होवै सो शरीरकी न्याईं अनित्य होवे है याते आत्मा भी अनित्य होवेगा और अंतःकरणका तौ हमारे मतमें ज्ञानते नाश होवे है; याते अनित्य है. मध्यम परिमाण अंगीकार कियेसे दोष नहीं. इस रीतिसे नवीन तार्किकका मत भी समीचीन नहीं.

पूर्वपक्षी—जो कोई ऐसे कहै:-आत्मा नाना है और अणु है ?

सिद्धांती--सो वार्त्ता भी बनै नहीं काहेते ? १--जो आत्माकूं कर्त्ता भोक्ता अंगीकार करैं तो अंतःकरणके अणुपक्षमें जो दोष कह्या सो दोष होवेगा. २--कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करें तो नाना आत्मा अंगीकार निष्फल होवेगा. एकही व्यापक सर्व शरीरमें अंगीकार करना योग्य है और कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करें तो अपने

सिद्धांतका भी त्याग होवेगा. काहेते? अणुवादीका यह सिद्धांत हैः-ज्ञान सुखदुःख धर्मसे आदिलेके आत्माके धर्म हैं, याते जो आत्माकूं अणु अंगीकार करैं तौ जा शरीरमें आत्मा नहीं है सो देश मृतसमान है, ताके विषे पीडादिक नहीं हुई चाहिये.

जो ऐसे कहैं--यद्यपि आत्मा तो शरीरके एक देशमें है, परन्तु कस्तूरीके गंधकी न्याई ताका ज्ञान सारे शरीरमें व्याप्त है. याते सर्वशरीरविषे अनुकूल प्रतिकूलके संबधकूं अनुभव करै है सो भी बनै नहीं. काहेते? यह नियम हैः-जितने देशमें गुणवाला रहै तासे बाहिर गुण रहै नहीं, किंतु गुणीमें ही गुण रहै है. जैसे रूप घटादिकनते बाहिर रहे नहीं, तैसे आत्मासे बाहिर ज्ञान भी बनै नहीं और कस्तूरीके सूक्ष्मभाग जितने देशमें व्याप्त होवै उतने देशमेंही व्याप्त होवे है, याते कस्तूरीका दृष्टांत भी बनै नहीं. याते "आत्मा अणु है" यह पक्ष भी बनै नहीं.

कहूं श्रुतिमें आत्मा अत्यंत अणुसे भी अणु जो कह्या है सो दुर्विज्ञेय है, याते कह्या है. जैसे अत्यन्त अणुवस्तुका मंददृष्टिपुरुषकूं ज्ञान होवे नहीं, तैसे बहिर्मुख पुरुषकूं आत्माका भी ज्ञान होवे नहीं, याते अणुके समान हैं, यह श्रुतिका अभिप्राय है "आत्मा अणु है" यह अभिप्राय नहीं. काहेते? बहुत स्थानमें व्यापकरूप आपही

वेदने प्रतिपादन किया है, याते अणु नहीं इस रीतिसे "व्यापक तथा मध्यम परिमाण अथवा अणु आत्मा नाना है" यह कहना संभवै नहीं.

परिशेषते एकव्यापक आत्मा है ताके विषे धर्म अधर्म सुख दुःख और बंध मोक्ष जो अंगीकार करैं तौ किसीकूं सुख किसीकूं दुःख, किसीकूं बंध और किसीकूं मोक्ष ऐसा व्यवहार नहीं होवेगा, याते धर्मादिक बुद्धिके धर्म हैं यद्यपि बुद्धि जड है याते ताके विषे भी धर्मसुखादिक बनै नहीं तथापि आत्माके धर्म नहीं हैं, इस अभिप्रायते बुद्धिके धर्म कहिये हैं, और "बुद्धिके धर्म हैं" याके विषे अभिप्राय नहीं. बुद्धि और सुखादिक आत्मामें अध्यस्त हैं, १–जो वस्तु जामें अध्यस्त होवै सो तामें परमार्थसे होवै नहीं, जैसे सर्प रज्जुमें अध्यस्त है सो परमार्थसे रज्जुमें है नहीं. तैसे बुद्धि और सुखादिक आत्मामें हैं नहीं. २–अध्यस्त वस्तु भी किसीका आश्रय होवै नहीं. याते बुद्धि भी सुखादिकनका आश्रय है नहीं, परंतु अज्ञान तौ शुद्धचेतनमें अध्यस्त है और अंतःकरण अज्ञान उपहितमें अध्यस्त है और अंतःकरण उपहितमें धर्म अधर्म, सुख दुःख, बंध. मोक्ष अध्यस्त हैं. इस रीतिसे आत्मामें धर्मादिकनके अधिष्ठानपनेका अंतःकरण उपाधि है, याते अंतःकरणके धर्म कहिये हैं.

जो अंतःकरणविशिष्टमें धर्मादिक अध्यस्त कहैं तो

बनै नहीं; काहेते? विशेषणयुक्तका नाम विशिष्ट है. धर्मादिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा ताका अंतःकरण जो विशेषण अंगीकार करे तो अंतःकरण भी धर्मसुखादिकनका अधिष्ठान होवेगा, सो वार्ता बनै नहीं, काहेते? मिथ्यावस्तु अधिष्ठान होवे नहीं. याते आत्मामें धर्मादिकनके अध्यासका अन्तःकरण विशेषण नहीं. किंतु उपाधि है. १–उपाधिका यह स्वभाव है, आप तटस्थ होयके जितने देशमें आप होवे उतने देशमें स्थित वस्तुकूं जनावे २–विशेषणका यह स्वभाव है:–जितने देशमें आप होवै उतने देशमें स्थित वस्तुकूं अपनेसहित जनावे १–विशेषणवानकूं विशिष्टमें कहे हैं २–उपाधिवालेकूं उपहित कहैं हैं, इस रीतिसे अंतःकरणविशिष्ट जो धर्मादिअध्यस्त कहैं, तो जितने देशमें अंतःकरण हैं ता देशमें स्थित चेतनभाग और अन्तःकरण दोनोंकूं अधिष्ठानता होवै सो अन्तःकरण आप भी अध्यस्त है, याते अधिष्ठान बनै नहीं. इस अभिप्रायते अन्तःकरण उपहितम धर्मादिक अध्यस्त कहे, याते "जितने देशमें अन्तःकरण है उतने देशमें स्थित चेतन भागमात्रमें अधिष्ठानता है अंतःकरणमें नहीं" यह वार्ता बने है. तैसे अंतःकरण भी अज्ञान उपहितमें अध्यस्त है अज्ञानविशिष्टमें नहीं, इस रीतिसे अध्यस्त जो धर्मादिक, तिनका अधिष्ठान आत्मा है. अध्यासके अधिष्ठान-

पनेकी अंतःकरण उपाधि है. याते बुद्धिके धर्म कहे हैं २-अविवेकसे अंतःकरण आत्मा दोनोंविषे प्रतीत होवै है. याते अंतःकरणविशिष्ट जो प्रमाता ताके धर्म कहेहैं १-धर्मादिक अंतःकरणके धर्म होवै. २-अथवा अंतःकरणविशिष्टप्रमाताके धर्म होवै. ३-अथवा रज्जु, सर्प, स्वप्नके पदार्थ, गंधर्वनगर, नभनीलताकी न्याई किसीके धर्म न होवैं; सर्वप्रकारसे आत्माके धर्म नहीं. यद्यपि आत्मामें अध्यस्त हैं. तथापि जो वस्तु जामें अध्यस्त होवै सो तामेंही परमार्थसे होवै नहीं. अध्यस्त नाम कल्पितका है. याते राग, द्वेष, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, बंध, मोक्षसे रहित एक व्यापक आत्मा है, सो आत्मा सत् है. १-जा वस्तुका ज्ञानसे अभाव होवे सो असत् कहिये है. जाकी निवृत्ति किसी कालमें भी नहीं होवै सो सत् कहिये है. सर्वपदार्थनका और तिनकी निवृत्तिका आत्मा अधिष्ठान है जो आत्माकी निवृत्ति होवै तौ ताका और अधिष्ठान कह्या चाहिये. काहेते ? १--शून्यमें निवृत्ति होवे नहीं. २-जो आत्मा और ताकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अंगीकार करैं तो ताका और अधिष्ठान अंगीकार करना होवैगा. इस रीतिसे अनवस्था होवैगी. और आत्माकी जो निवृत्ति अंगीकार करे ताकूं यह पूछैं हैं:-१ जो आत्माकी निवृत्ति किसीने अनुभव करी है. २-अथवा नहीं ? १-जो ऐसे

कहैं; अनुभव करी है. सो बनै नहीं.काहेतें ? जो अनुभव करनेवाला है सोई आत्मा है. और अपना स्वरूप है, ताकी निवृत्तिका अनुभव अपने मस्तकछेदनके अनुभव समान है, यातैं आत्माकी निवृत्तिका अनुभव बनै नहीं. २--ऐसे कहैं जो आत्माकी निवृत्ति तौ होवै है, परंतु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसीकूं नहीं, तौ यह वार्त्ता सिद्ध हुई जो आत्माकी निवृत्ति तौ होवै नहीं. काहेते? जो वस्तु किसीने अनुभव नहीं करी सो वन्ध्यापुत्रके समान होवै है. याते आत्माकी निवृत्ति होवै नहीं, याहीते आत्मा सत् है.

आत्मा चित है-प्रकाशरूप जो ज्ञान सो चित् कहिये है, १–जो अप्रकाशरूप आत्मा अंगीकार करें तौ अनात्मजडवस्तुका प्रकाश कभी होवै नहीं अन्तःकरण और इंद्रियनसे पदार्थनका प्रकाश कहैं तो बनै नहीं काहेते?अन्तःकरण और इंद्रिय परिच्छिन्न हैं याते कार्य है. १–जो परिच्छिन्न होवे सो घटकी न्याईं कार्य होवे है. अन्तःकरण इंद्रिय भी परिच्छिन्न है, याते कार्य है २–देशकालते जाका अन्त होवे सो परिच्छिन्न कहिये है, ३–जो कार्य होवे सो जड होवे है याते अन्तःकरण और इंद्रियें भी जडहैं. तिनतैं किसी वस्तुका प्रकाश बनै नहीं, याते जो आत्मा सर्वका प्रकाश करै है सो प्रकाशरूप है,

जो ऐसे कहैं—आत्मा प्रकाशरूप नहीं. किंतु आत्मा तौ जड है. और ताके विषे ज्ञानगुण है ता ज्ञानते आत्मा और अनात्माका प्रकाश होवै है. ताकूं यह पूछे हैं. १—आत्माका ज्ञान गुण नित्य है. २—अथवा अनित्य है? १—जो नित्य कहै तो आत्माका स्वरूपही ज्ञान सिद्ध होवैगा. काहेते? यह नियम है जो आत्मासे भिन्न होवै सो अनित्य होवै है, जो ज्ञानकूं आत्मासे भिन्न अंगीकार करैं तो अनित्यही होवैगा. याते नित्य मानिके आत्मासे भिन्नज्ञान है यह कहना बनै नहीं और जो अनित्य अंगीकार करैं तो घटादिकनकी न्याई जड होवैगा जो अनित्य वस्तु होवै, सो जड होवै है. याते "ज्ञान अनित्य है" यह कहना बनै नहीं. किंतु ज्ञान नित्यहीहै सो नित्यज्ञान आत्मस्वरूपही है. जो अनित्य अंगीकार करैं तो कदाचित् आत्मामें ज्ञान होवे और कदाचित् नहीं याते आत्मासे भिन्न भी ज्ञान होवे और नित्य अंगीकार कियेसे तो भिन्न होवै नहीं. जो गुण होवै सो गुणवान् विषे कदाचित् रहै और कदाचित् नहीं भी रहै. जैसे वस्त्रका नील पीत गुण कदाचित् रहे और कदाचित नहीं रहै. याते जो गुण होवै सो आगमापायी होवै है और ज्ञानकूं नित्यता होनेते आगमापायी है नहीं. याते आत्माका स्वरूपही ज्ञान है.

ज्ञानकूं अनित्य कहैं तो इंद्रिय अथवा अंतःकरणसे ज्ञान उत्पन्न होवै है, यह कहना होवैगा. सो बनै नहीं.

काहेते ! सुषुप्तिमें इंद्रियादिक तो हैं नहीं और सुखका ज्ञान होवे है. सो नहीं हुआ चाहिये. जो सुषुप्तिमें सुखका ज्ञान अंगीकार नहीं करें तो जागिके "मैं सुखसे सोया" यह सुषुप्तिके सुखकी स्मृति होवै है सो नहीं होनी चाहिये. जा वस्तुका पूर्व ज्ञान होवै ताकी स्मृति होवै है और अज्ञातवस्तुकी स्मृति होवै नहीं. और सुषुप्तिके सुखकी जागिके स्मृति होवे है. याते सुषुप्तिमें सुखका ज्ञान होवे है. ता ज्ञानके जनक इंद्रियादिक सुषुप्तिमें हैं नहीं, याते नित्य है. ज्ञानकूं त्यागिके आत्मा कभी भी रहै नहीं याते ज्ञान आत्माका स्वरूप है जैसे उष्णताकूं त्यागिके अग्नि कभी रहै नहीं, याते उष्णता वह्निका स्वरूप है. तैसे ज्ञान भी आत्माका स्वरूपहै जो आगमापायी होवै सो गुण होवै है, उष्णता और ज्ञान आगमापायी हैं नहीं; याते अग्नि और आत्माके स्वरूप हैं. जो वस्तु कदाचित् होवै और कदाचित् न होवै सो आगमपायी कहिये है.

उत्पत्ति और विनाश अंतःकरणकी वृत्तिके होवे हैं. ज्ञानके नहीं. १–आत्मस्वरूप जो ज्ञान है सो विशेषव्यवहारका हेतु नहीं, किंतु ज्ञानसहितवृत्ति अथवा वृत्तिमें आरूढज्ञान व्यवहारका हेतु है. यह अवच्छेदवादकी रीति है. २– आभासवादमें आभाससहित वृत्तिसे व्यवहार होवै है. आभासद्वारा अथवा साक्षात्

वृत्तिद्वारा आत्मस्वरूपज्ञानतेही सर्वव्यवहार सिद्ध होवै है, नहीं तौ होवै नहीं. इस रीतिसे सर्वका प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा है. यातें चित् है.

आत्मा आनंदरूप है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै तो विषयसंबंधसे स्वरूपआनंदका भान होवै है सो नहीं हुआ चाहिये. विषयमें आनंद नहीं. यह वार्त्ता पूर्व कही है. जो विषयमें आनंद होवै तो जा विषयते एक पुरुषकूं सुख होवै तासेही अन्यकूं दुःख होवै. जैसे अग्निके स्पर्शतें अग्निकीटकूं और सर्प सिंहके रूप देखनेते सर्पिणी सिंहिनीकूं आनंद होवै है और अन्यपुरुषकूं दुःख होवै है सो नहीं हुआ चाहिये और सिद्धांतमें तो अग्निकीटकूं अग्निस्पर्शकी इच्छा होवै तब चंचलबुद्धिमें स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं. अग्निसंबंधते क्षणमात्र इच्छा दूरि होयके निश्चलबुद्धिमें स्वरूप आनंदका भान होवै है. अन्यपुरुषकूं अग्निसंबंधकी इच्छा है नहीं किंतु अन्यपदार्थनकी इच्छा है. तिन पदार्थनकी इच्छा अग्निसंबंधसे दूरि होवै नहीं. यातें चञ्चल अंतःकरणमें अग्निसंबंधसे आनंद होवै नहीं. याके विषे यह शंका होवै है:-जो इच्छारूप अंतःकरणकी वृत्ति है सो तो विषयप्राप्तिसे नाशकूं प्राप्त होय गई और अन्य वृत्तिका कोई निमित्त है नहीं. यातें उत्पत्ति हुई नहीं और वृत्तिसे विना स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं, यातें विषयमेंही आनंद है,

सो शंका बनै नहीं. काहेते ? १—यद्यपि इच्छारूप तौ अंतःकरणकी वृत्तिका अभाव है सो इच्छारूप वृत्ति होवै तौ भी ताके विषे आनंदप्रकाश होवै नहीं काहेते ? इच्छारूप वृत्ति राजस है और आनंदकाप्रकाश सात्त्विक वृत्तिमें होवे है तथापि वांछितपदार्थ जो मिला है ताके स्वरूपकूं विषय करनेवास्ते जो ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्ति है सो सात्त्विक है. काहेते ? सत्त्वगुणसे ज्ञान होवे है यह नियम है. ता सात्त्विक वृत्तिमें आनंदका भान होवे है परंतु सो ज्ञानरूप वृत्ति बहिर्मुख है. ताके पृष्ठभागमें स्थित जो अंतःकरण उपहित चेतनस्वरूप आनंद ताका तिस वृतिसे ग्रहण होवै नहीं. याते विषयउपहित चेतनस्वरूप आनंदका भान होवै है सो विषयउपहित चेतन आत्मासे भिन्न नहीं याते आत्मानन्दकाही विषयमें भान कहिये है ता ज्ञानरूप वृत्तिविषे विषयके साथ नेत्रादिकनका संबंधही निमित्त है.

२—अथवा ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति तासे अन्य अंतर्मुखवृत्ति होवै है ताके विषे अंतःकरणउपहित चेतनरूप आनंदकाही भान होवे है यह उत्तम सिद्धांत है. ता वृतिकी उत्पत्तिमें इच्छादिकनका अभावही निमित्त है. जैसे इच्छादिकनते रहित जो एकांतमें उदासीन पुरुष स्थित है ताकूं बहिर्मुखज्ञान रूपते कोई वृत्ति होवे नहीं आनंदका भान होवे है याते इच्छादिकनके अभावरूप

निमित्तते अंतर्मुखवृत्ति आनंदग्रहण करनेवाली होवे है. तासे वांछित विषयके लाभसे इच्छादिकनका अभाव होनेते ज्ञानसे अनंतर अंतर्मुखवृत्ति होवे है तिसते अन्तःकरणउपहित आनन्दकाही ग्रहण होवे है सो स्वरूप आनन्दका ग्रहण और विषयका ज्ञान अत्यन्त अव्यवहित है याते पुरुषकूं ऐसी भ्रांति होवे है "मैंने विषयमें आनन्द अनुभव किया है" प्रथमपक्षसे यह पक्ष उत्तम है. काहेते ? जो विषयकी ज्ञानरूपवृत्ति है तासे अन्तःकरणउपहित आनन्दका तौ भान बनैनहीं, याते विषयउपहित आनंदका भान होवेगा तो मार्गमें वृक्षका जो ज्ञानरूपवृत्ति है सो भी सात्त्विक है, तासे भी वृक्षउपहित चेतनस्वरूप आनंदका भान हुआ चाहिये. तैसे सर्वज्ञानसे ज्ञेय उपहितचेतनरूप आनंदका भान हुवा चाहिये याते अनात्मवस्तुके ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति तासे ज्ञेय उपहितचेतनस्वरूप आनंदका ग्रहण होवे नहीं इस रीतिसे विषयके संबंधसे आत्मस्वरूपानंदका भान होवे है जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवे तौ विषयसंबंधसे आनंदका भान बनै नहीं याते आत्मा आनंदरूप है.

आत्माका संबंधी जो वस्तु है ताके विषे प्रेम होवे है, तासे सन्निहितमें अधिक प्रेम होवे है. इस रीतिसे बाहिर बाहिरके पदार्थनकी अपेक्षाते अन्तर अन्तरके पदा-

र्थनमें अधिक प्रीति है. १-परम्पराते आत्माका संबंधी जो पुत्रका मित्र है तामें प्रीति होवे है. २-पुत्रके मित्रकी अपेक्षाते पुत्रमें अधिक प्रीति है. ३-पुत्रसे भी स्थूल सूक्ष्म शरीरमें अधिक प्रिति है-४-स्थूल सूक्ष्म शरीरमें भी स्थूलते सूक्ष्ममें अधिक प्रीति है. पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर आत्माके समीप है, १-आत्माका आभास सूक्ष्मशरीरमें है औरमें नहीं, याते आभासद्वारा आत्माका सूक्ष्मशरीरसे संबंध है औरसे नहीं, २-स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरका संबंध है याते स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरद्वारा आत्माका संबंध है, ३-पुत्रसे स्थूल शरीरद्वारा संबंध है और पुत्रके मित्रसे पुत्रद्वारा संबंध है इस रीतिसे उत्तर उत्तर जो आत्माके समीप ताके विषे अधिक प्रीति है,जो आत्माके संबंध होनेते पदार्थमें प्रीति होवे तो आत्मामें ही मुख्य प्रीति है और पदार्थमें नहीं- जैसे पुत्रके मित्रमें पुत्रके संबंधसे प्रीति है याते पुत्रमेंही प्रीति है, पुत्रके मित्रमें नहीं, तैसे आत्माके अधिकसमीपमें अधिक प्रीति होवै है. याते आत्माविषेही सर्वकी प्रीति है, सो प्रीति आनंदमें और दुःखके अभावमें होवे है औरमें नहीं और पदार्थमें जो प्रीति होवे सो आनंद और दुःखके अभावके निमित्त होवे है, याते आनंद और दुःखके अभावसे औरमें प्रीति नहीं, याते सर्वकी प्रीतिका विषय जो आत्मा सो आनंदरूप है और दुःखका अभाव आत्मा

रूप है, कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवे है, जैसे-सर्पका अभाव रज्जुरूप है. याते कल्पित जो दुःख ताका अभाव भी आत्मारूप है, इस रीतिसे आत्मा आनंदरूप है.

न्यायमतमें आत्माका आनंदगुण है, सो समीचीन नहीं. काहेते? जो आनंदगुणकूं नित्य अंगीकार करें तौ आगमापायी नहीं होवे, याते आत्माका स्वरूपही आनंद सिद्ध होवेगा और नित्य आनंद न्यायमतमें है भी नहीं और अनित्य जो कहें तो अनुकूलविषय और इंद्रियके संबंधसे आनंदकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेगी. याते सुषुप्तिमें आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेते? सुषुप्तिमें विषयका और इंद्रियका संबंध है नहीं. याते आत्माका आनंद गुण नहीं, किंतु आत्मा आनंद-स्वरूप है, इस रीतिसे आत्मा सत्‌चित् आनन्दरूप है, सो सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं किंतु एकही है. जो आत्माके गुण होवे तौ परस्पर भिन्नभी होवें और आत्म-स्वरूप है, याते भिन्न नहीं. १-एकही आत्मा निवृत्तिरहित है, याते सत् कहिये है. २-जडसे विलक्षण प्रकाशरूप है, याते चित् कहिये है. ३-दुःखसे विलक्षण मुख्यप्रीतिका विषय है, याते आनंद कहिये है. जैसे-उष्णप्रकाश रूप अग्नि है, तैसे सच्चित् आनंदरूप आत्मा है और सच्चित् आनंदस्वरूपही शास्त्रमें ब्रह्म कह्या है,

याते ब्रह्मस्वरूप आत्मा है और ब्रह्म नाम व्यापकका है. १-देशते जाका अंत नहीं होवे सो व्यापक कहिये है, तासे आत्मा जो भिन्न होवे तो देशते अंतवाला होवेगा. २-जाका देशते अंत होवे ताका कालसे भी अंत होवे है, यह नियम है. याते अनित्य होवेगा. जाका कालसे अंत होवे सो अनित्य कहिये है. याते ब्रह्मसे भिन्न आत्मा नहीं और आत्मासे भिन्न जो ब्रह्म होवे तो अनात्मा होवेगा. जो अनात्मा घटादिक हैं सो जड हैं, याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी जडही होवेगा. याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी नहीं किंतु ब्रह्मस्वरूपही आत्मा है.

१-एकही चेतन सर्वप्रपंच और मायाका अधिष्ठान है याते ब्रह्म कहिये है, २-अविद्या और व्यष्टि देहादिकनका अधिष्ठान है याते आत्मा कहिये है, १-तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म कहिये है. २-त्वंपदका लक्ष्य आत्मा कहिये है. १-ईश्वरसाक्षी तत्पदका लक्ष्य है, २-जीवसाक्षी त्वंपदका लक्ष्य है. १-व्यष्टिसंघातउपहित चेतन जीवसाक्षी है. २-समष्टिसंघातउपहित चेतन ईश्वरसाक्षी कहिये है. यद्यपि जीवकी और ईश्वरकी एकता बनै नहीं तथापि जीवसाक्षी और ईश्वरसाक्षीका उपाधिके भेदसे भेद है और स्वरूपसे एकही है. जैसे मठमें स्थित जो घटाकाश और मठाकाश तिन्हका उपाधिके भेदविना स्वरूपसे भेद नहीं, तैसे आत्मा और ब्रह्मका उपाधिभेद विना एकही भेद नहीं एकही वस्तु है.

सो ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा कहिये जन्मरहित है. जो आत्माका जन्म अंगीकार करे तो अनित्य होवेगा सो वार्त्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं तिनकूं इष्ट नहीं. काहेते? जो आत्मा उत्पत्तिनाशवान् होवै तौ प्रथम जन्मविषे पूर्वकर्मविनाही सुखदुःखका भोग और किये कर्मका भोगसे विना नाश होवेगा. याते कर्त्ता भोक्ता जो आत्मा अंगीकार करैं तौ भी जन्मनाशरहितही अंगीकार करना होवेगा और आत्माका जन्म जो अंगीकार करैं तो हेतुसे विना तो किसी वस्तुका जन्म होवै नहीं. याते किसी हेतुसे ही जन्म कहना होवेगा सो बनै नहीं, काहेते? जो आत्माका हेतु है सो आत्मासे भिन्नही कहना होवैगा. सो आत्मासे भिन्न सम्पूर्ण आत्मामें कल्पित हैं याते आत्माका हेतु बनै नहीं. जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प, रज्जु हेतु नहीं, तैसे आत्मामें कल्पित वस्तु आत्माका हेतु बने नहीं.

जैसे एक रज्जुविषे नानापुरुषनकूं दंड, सर्प, पृथ्वीरेखा जलधाराकी भ्रांति होवै है. ता भ्रांतिमें दो अंश हैं. १-एक तो सामान्य इदंअंश है. २-एक सर्पादिक विशेष अंश है सो सामान्य इदंअंश सर्पादिक विशेष अंशनमें सारे व्यापक है. १-"यह सर्प है. २-यह दंड है. ३-यह पृथ्वीकी रेखा है. ४-यह जलकी रेखा है" इस रीतिसे सर्पादिक विशेषअंशमें इदंअंश सारे

व्यापक हैं सो व्यापक सामान्य इदंअंश रज्जुस्वरूप है. ता सामान्य इदंअंशके ज्ञानकूंही भ्रांतिका हेतु रज्जुका सामान्य ज्ञान कहे हैं सो सामान्य इदंअंश सत्य है. काहेते ? रज्जुका ज्ञान हुयेसे अनंतर भी ता इदम् अंशकी प्रतीति होवै है. १–जैसे भ्रांतिकालमें "यह सर्प है" या रीतिसे सर्पादिकनसे मिलिके इदम् अंशकी प्रतीति होवै है. २–तैसे भ्रांतिकी निवृत्तिसे अनंतर भी "यह रज्जु है" या रीतिसे रज्जुके साथ मिलिके इदम् अंशकी प्रतीति होवै है. जो इदम् अंशभी मिथ्या होवे तो सर्पादिकनकी न्याई भ्रांतिकी निवृत्तिसे अनंतर ताकी भी प्रतीति नहींहुई चाहिये. याते सर्पादिकभ्रांतिमें व्यापक जो इदम् अंश सो सत्य है और अधिष्ठान रज्जुरूप है और परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादिक सो कल्पित हैं.

तैसे सर्वपदार्थनमें पांच अंश हैं. १–एक नाम, २–रूप, ३– अस्ति, ४–भाति तथा ५–प्रिय; १ "घट" यह दो अक्षर नाम, २–"गोल" रूप, ३–"घट है" यह अस्ति और ४–"घट प्रतीत होवे है" यह भाति और ५–"घट प्रिय है" यह आनंद, (सर्पादिक भी सर्पिणी आदिकनकूं प्रिय हैं.) इस रीतिसे सर्व पदार्थनमें पांच अंश हैं. तिन विषे अस्ति-भाति-प्रियरूप तीन अंश सर्व पदार्थनमें व्यापक हैं और नाम, रूप व्यभिचारी हैं. जो वस्तु कहूं होवै और कहूं नहीं होवै सो व्यभिचारी

कहिये है. घट नाम और गोल रूप पटविषे नहीं है. पट नाम और ताका रूप घटविषे नहीं है. इस रीतिसे सर्वपदार्थनविषे नाम, रूप, अंश व्यभिचारी हैं और अस्ति-भाति-प्रिय-रूप सर्वविषे अनुगत है. जैसे सर्पदंडादिकनमें अनुगत इदम् अंश सत्य और अधिष्ठान है. तैसे सर्व पदार्थनमें अनुगत अस्ति-भाति-प्रियरूप सत्य है और अधिष्ठानरूप है और सर्पदण्डादिकनकी न्याईं व्यभिचारी नाम, रूप कल्पित हैं और अस्ति-भाति-प्रिय सच्चित् आनंदरूप है; याते आत्मस्वरूप है. इस रीतिसे सच्चित् आनंदरूप आत्माविषे संपूर्ण नामरूप प्रपंच कल्पित है. सो कल्पित पदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं, यातें आत्मा अजन्मा है.जा वस्तुका जन्म होवै ताहीके सत्ता[1], वृद्धि, परिणाम, अपक्षय[2], विनाश-रूप पांच विकार होवै हैं. आत्माका जन्म होवै नहीं. याते उत्तर पांच विकार भी होवैं नहीं,इस रीतिसे अजन्मा कहिये जन्मादिक षट्विकारसे रहित आत्मा है.

सो आत्मा असंग है. संग नाम संबंधका है. सो सजातीय, विजातीय, स्वगतपदार्थसे होवे है. १-जैसे घटका घटसे जो संबंध है सो सजातीयसे संबंध है. २-घटका पटसे जो संबंध सो विजातीयसे संबंध है. ३-स्वगत

१ सत्ता-प्रगटता। २ अपक्षय-घटना।

नाम अवयवका है. याते पटका तन्तुसे जो संबंध सो स्वगतते संबंध है. १–आत्मा दो अथवा अनंत होवैं तो सजातीयसे आत्माका संबंध होवै सो आत्मा एक है;याते सजातीय आत्मासे आत्माका संबंध नहीं. २–आत्मासे विजातीय अनात्मा है सो मृगतृष्णाके जलकी न्याई आत्मामें कल्पित है, ता कल्पितसे आत्माका संबंध बनै नहीं. जैसे मृगतृष्णाके जलसे पृथिवीका संबंध होवै नहीं. जो संबंध होवै तौ ऊषरभूमि ता जलसे गीली हुईचाहिये. जैसे मृगतृष्णाके जलसे ऊषरभूमिका संबंध नहीं तैसे आत्मामें कल्पित जो विजातीय अनात्मा तासे आत्माका संबंध नहीं. ३–जो आत्माके अवयव होवैं तौ आत्माका स्वगतसे सम्बन्ध होवै, आत्मा नित्य है, याते निरवयव है. ताका स्वगतसे संबंध बनै नहीं. इस रीतिसे सजातीय विजातीय स्वगतसंबन्ध आत्माविषे नहीं,याते असंग है. इस रीतिसे हे शिष्य ! सच्चित्आनंद ब्रह्मरूप, जन्मादिकविकाररहित, असंग आत्मा है, "सो तू है" यह प्रथम प्रश्नका अर्द्ध दोहेसे आचार्यने उत्तर कह्या।

"जगत्का कर्त्ता कौन है ?" यह द्वितीय प्रश्नका उत्तर अर्द्ध दोहेसे कहै हैं–

दोहार्द्ध।

विभु चेतन माया करै, जगको उत्पति भंग ॥ ९ ॥

विभु कहिये व्यापक जो चेतन ताके आश्रित और

ताकूं विषय करनेवाली माया कहिये सत् असत्से विलक्षण अद्भुतशक्तिरूप अज्ञान; तासे जगत्की उत्पत्ति भंग होवै है. उत्पत्ति और भंग कहनेते स्थितिका ग्रहण अर्थते होवै है. याते यह अर्थ सिद्ध हुआ. १-माय़ायुक्त जो चेतन सो ईश्वर कहिये है. २-सो ईश्वर जगत्की उत्पत्ति पालन नाशका हेतु है.या कहनेते १-"जगत्का कोई कर्त्ता है, अथवा आपसे होवै है" याका उत्तर कह्या. २-"जगत्का कर्त्ता कोई जीव है, अथवा ईश्वर है ?" याका भी उत्तर कह्या.

जगत्का कर्त्ता ईश्वर है,आपसे होवै नहीं.जो कर्त्तासे विना जगत होवै तौ कुलालबिना घट होना चाहिये.याते जगत्का कोई कर्त्ता है. १-सो कर्त्ता सर्वज्ञ है. काहेते ? जो कार्यका कर्त्ता होवै सो ता कार्यकूं और ताके उपादानकूं जानिके करै है. याते जगत्का कर्त्ता भी जगतकूं और जगत्के उपादानकूं जानिके करै है. इस रीतिसे जगत्का कर्त्ता जगत्कूं और जगत्के उपादानकूं जानै है, याते सर्वज्ञ है. २-सर्वशक्तिमान् है. काहेते ? जो अल्पशक्तिवाले जीव हैं तिन्हसे या जगत्की रचना मनसे भी चिंतन होवै नहीं,याते अद्भुत जगत्का कर्त्ता अद्भुत शक्तिवाला है. इस रीतिसे जगत्का कर्त्ता सर्वशक्तिमान् है. ३-स्वतंत्र है. काहेते ? जो न्यूनशक्तिवाला होवै सो पराधीन होवै है और सर्वशक्तिवाला पराधीन होवै

नहीं; याते स्वतंत्र है. इस रीतिसे जगत्‌का कर्त्ता सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र है, ताहीकूं ईश्वर कहैं हैं. और अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान्, पराधीनकूं जीव कहैं हैं. यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीवमें भी परमार्थसे नहीं तथापि अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमें प्रतीत होवै हैं, याते जीवमें कहिये हैं. अविद्याकृत अल्पज्ञतादिकनकी जो भ्रांति सोई जीवता है. सो अल्पज्ञतादिकनकी भ्रांति ईश्वरमें नहीं किन्तु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वरमें है. यह वार्त्ता विस्तारसे आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसे जगतका कर्त्ता जीव नहीं; ईश्वर है. सो ईश्वर एकदेशमें स्थित नहीं, किन्तु सर्वत्र व्यापक है. जो एक देशमें अंगीकार करैं तौ जा वस्तुका देशते अंत होवे ताका कालसे भी अन्त होवै है; याते अनित्य होवेगा. जो अनित्य होवै सो कर्त्तासे जन्य होवै है, याते ईश्वरका भी कर्त्ता अंगीकार करना होवेगा, सो ईश्वरका कर्त्ता बनै नहीं. काहेते? १–आप तो अपना कर्त्ता बनै नहीं. जो अपना कर्त्ता आपही अंगीकार करैं तो आत्माश्रय दोष होवेगा. आपही क्रियाका कर्त्ता, (आश्रय) और आप ही क्रियाका कर्म, क्रिया विषयरूप कार्य होवै. तहां आत्माश्रय होवै है. जैसे कुलाल क्रियाका कर्त्ता है और घट कर्म है. तैसे क्रियाका कर्त्ता और कर्म भिन्न होवै हैं, एक बनै नहीं, याते आत्माश्रय दोष है. कर्म नाम कार्यका

है और कार्यके विरोधीका नाम दोष है. आत्माश्रय कार्यका विरोधी है, याते दोष है. याते२—ईश्वरका कर्त्ता अन्य अंगीकार करना होवेगा. सो अन्यभी प्रथम कर्त्ताकी न्याईं कर्त्ता-जन्यही कहना होवेगा, सो ताका कर्त्ताभी प्रथमकी न्याईं तासे भिन्नही कहना होवेगा. सो प्रथम जो ईश्वर है ताकूं द्वितीयकर्त्ताका कर्त्ता अंगीकार करैं तो अन्योन्याश्रयदोष होवेगा. याते तृतीय कर्त्ता अंगीकार करना होवेगा. ता तृतीयका कर्त्ता जो द्वितीय मानैं तब तो अन्योन्याश्रयदोष होवे और प्रथम मानैं तब चक्रिकादोष होवेगा. जैसे चक्रका भ्रमण होवे है तैसे प्रथमकर्त्ता द्वितीयजन्य और द्वितीयकर्त्ता तृतीय जन्य और तृतीय प्रथमजन्य, सो प्रथम फिर द्वितीयजन्य; इस रीतिसे कार्यकारणभावका भ्रमण होवेगा. चक्रिकास्थानमें कोई भी सिद्ध होवे नहीं. सर्वकी परस्पर अपेक्षा है. अन्योन्याश्रयमें दोकी परस्पर अपेक्षा है. एकको सिद्धि हुये विना अन्यकी सिद्धि होवै नहीं. याते जैसे कुलालका कर्त्ता आप नहीं किन्तु ताका पिता है, तैसे प्रथम ईश्वर कर्त्ताका अन्य कर्त्ता है और कुलालका पिता अपने पुत्रसे उत्पन्न होवे नहीं, किंतु अन्यपितासे उत्पन्न होवे है. तैसे द्वितीयकर्त्ता प्रथमकर्त्तासे उत्पन्न होवै नहीं. किंतु अन्यकर्त्तासे ही कहना होवेगा. और कुलालका पितामह, कुलाल और ताके पितासे उत्पन्न होवे नहीं, किंतु

चतुर्थ जो कुलालका प्रपितामह तासे उत्पन्न होवै है; तैसे तृतीयकर्त्ता भी प्रथम और द्वितीय कर्त्तासे उत्पन्न होवै नहीं. याते चतुर्थ कर्त्ता और अंगीकार करना होवेगा. ता चतुर्थका कर्त्ता और पंचम मानना होवेगा, याते अनवस्थादोष होवैगा, धाराका नाम अनवस्था है जो कर्त्ताकी धारा अंगीकार करैं तौ कौनसा कर्त्ता जगत करै है ? यह निर्णय नहीं होवैगा. ३-किसी एककूं जगत्का कर्त्ता माननेमें कोई युक्ति नहीं. ता युक्तिके अभावका नामही विनिगमनाविरह कहैहैं. ४-धाराकी कहूँ विश्रांति अंगीकार करैं तो जा कर्त्तामें धाराका अंत अंगीकार किया सोई कर्त्ता जगत्का मानने योग्य है, पूर्व सारे निष्फल होवेंगे, याका नामही प्राग्लोप कहैहैं, पिछलेके अभावका नाम प्राग्लोप है; इस रीतिसे ईश्वरका देशते अंत अंगीकार करैं तो उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेगी और उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ आत्माश्रयादि षट् दोष होवैंगे. यातें ईश्वरका देशते अंत नहीं, किंतु व्यापक है, याहीते नित्य है.

ता व्यापक ईश्वरका और जीवका स्वरूपसे भेद नहीं किंतु उपाधिसे भेद है काहेते? १-अवच्छेदवादमें मायाविशिष्टचेतनईश्वर कहैहैं और अविद्याविशिष्टचेतन जीव कहैहैं, २-आभासवादमें माया और आभासविशिष्टचेतन ईश्वर कहैं हैं और आभाससहित अविद्याविशिष्ट-

चेतनकूं जीव कहैं हैं ? १-आभासवादमें आभाससहित अविद्या और मायाका भेद है, चेतनका नहीं. २-तैसे अवच्छेदवादमें भी अविद्या और मायाका भेद;स्वरूपसे चेतनका भेद नहीं. ३-अज्ञानमें चेतनका प्रतिबिंब जीव है और बिंब ईश्वर है, या पक्षमें भी चेतनका स्वरूपसे भेद नहीं, किंतु एकही चेतनमें जीवपना और ईश्वरपना आरोपित है. यह वार्ता आगे कहैंगे. इस रीतिसे जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र ईश्वर है, सो ईश्वर व्यापक है ताका और जीवका विशेषणमात्रसे भेद है और स्वरूपसे अभेद है. यह द्वितीय प्रश्नका उत्तर कह्या ॥ ९ ॥

"मोक्षका साधन ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं ?"

याका उत्तर कहैं हैं:—दोहा.

हेतु मोक्षको ज्ञान इक, नहीं कर्म नहिं ध्यान ।
रज्जु सर्प तबहीं नशे, होय रज्जुको ज्ञान ॥ १० ॥

मुक्तिका हेतु कर्म और ध्यान कहिये उपासना नहीं, किंतु ज्ञानही हेतु है. काहेते जो आत्मामें बंध सत्य होवै तो ताकी निवृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानसे होवे नहीं, किंतु कर्म अथवा उपासनाते होवे सो बंध आत्मामें सत्य है नहीं किंतु रज्जु सर्पकी न्याई मिथ्या है, ता मिथ्याकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञानसेही बनै है, कर्म

अथवा उपासनासें नहीं. जैसे रज्जुका सर्प किसी क्रियाते दूरि होवै नहीं, केवल रज्जुके ज्ञानसे दूरि होवे तैसे आत्माके अज्ञानसे प्रतीति जो होवे है, बंध तो बन्धकी प्रतीति और अज्ञान आत्माके ज्ञानसे ही दूरि होवे है.

जो कर्मका फल मोक्ष होवे तो मोक्ष अनित्य होवैगा. काहेते? यह नियम है:—जो कृषिआदि कर्मका फल अन्नादिक हैं सो अनित्य हैं और यज्ञादिककर्मका फल स्वर्गादिक भी अनित्य है जो मोक्षभी कर्मका फल अंगीकार करे तो वह अनित्य होवेगा । याते कर्मका फल मोक्ष नहीं २—तैसे उपासनाका फल जो अंगीकार करैं तो भी मोक्ष अनित्य होवेगा. काहेते? उपासना भी मानस कर्मही है और कर्मका फल अनित्य होवैं हैं, याते उपासनारूप कर्मका फल भी मोक्ष नहीं.

कर्मकर्त्ताकूं कर्मसे पांच प्रकारका उपयोग होवै है. १—पदार्थकी उत्पत्ति तथा. २—नाश अथवा. ३—पदार्थकी प्राप्ति वा. ४—पदार्थका विकार, ५—तैसे संस्कार अन्यस्वरूपकी प्राप्तिका नाम विकार है. संस्कार दो प्रकारका होवै है. मलकी निवृत्ति और गुणकी उत्पत्ति; यह पांच प्रकारका कर्मसे उपयोग होवे है, सो मुमुक्षुकूं कोई भी बनै नहीं. याते मुमुक्षु ज्ञानके साधन श्रवणादिकविषेही प्रवृत्त होवे और कर्ममें नहीं. १—जैसे कुलालके कर्मते कुलालकूं घटकी उत्पत्ति उपयोग होवै है, तैसे मुमुक्षुकूं कर्मते मोक्षकी उत्पत्ति उपयोग बनै नहीं काहेते ? जो

अनर्थकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष है सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामें नित्यसिद्ध है. जैसे रज्जुमें सर्पकी निवृत्ति नित्यसिद्ध है और आत्मा परम आनंद-स्वरूप है. याते परमानंदकी प्राप्ति भी नित्यसिद्ध है.इस रीतिसे स्वभावसिद्ध मोक्षकी कर्मसे उत्पत्ति बनै नहीं जो वस्तु आगे सिद्ध नहीं होवे ताकी कर्मसे उत्पत्ति होवै है. और सिद्धवस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं.

वेदांत श्रवणभी मोक्षकी उत्पत्तिके निमित्त नहीं कह्या, किंतु आत्मा नित्यमुक्तहै, किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं. इस वार्त्ताके जानने वास्ते श्रवण है. यह जानिके कर्तव्यभ्रांति दूरि होवे है. और वेदांतश्रवणसे अनंतर भी जिनकूं कर्तव्यप्रतीति होवे है; तिन्हने तत्त्व जाना नहीं; इसी कारणते नित्यनिवृत्ति जो अनर्थ ताकी निवृत्ति और नित्यप्राप्त आनंदकी प्राप्ति, वेदांतश्रवणका फल देवगुरुने नैष्कर्म्यसिद्धिमें कह्या है. याते मोक्षकी उत्पत्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

२–जैसे दंडके प्रहाररूप कर्मका घटका नाशरूप उपयोग होवे है तैसे मुमुक्षुकूं कर्मते किसी पदार्थनका नाशरूप उपयोग भी बनै नहीं, काहेते ? अन्यपदार्थका नाश तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं. बंधका नाशही कर्मसे उपयोग कहना होवेगा. सो बंध आत्मामें है. नहीं. मिथ्या प्रतीति होवे है, ता मिथ्याप्रतीतिका नाश कर्मसे

बनै नहीं और आत्माके यथार्थ ज्ञानसे तो मिथ्याप्रतीतिका नाश बनै है. याते मुमुक्षुकूं पदार्थका नाशरूप उपयोग भी कर्मसे बनै नहीं. ३--जैसे गमनरूप कर्मते ग्रामकी प्राप्ति होवे है तैसे मोक्षकी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मसे बनै नहीं. काहेते ? जो आत्मा नित्यमुक्त है ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै है और आत्मामें बंध है नहीं. याते मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षकूं बनै नहीं.

४--जैसे पाकरूप कर्मसे अन्नका विकाररूप उपयोग पाचककूं होवे है, तैसे मुमुक्षुकूं कर्मसे विकाररूप उपयोग भी बनै नहीं. काहेते ? और तौ कोई विकार बनै नहीं, जो आत्मामें प्रथम बंध अंगीकार करैं और मोक्षदशामें चतुर्भुजादिक विलक्षणरूपकी प्राप्ति अंगीकार करै तौ अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै. सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मामें अंगीकार नहीं. याते कर्मसे विकाररूप उपयोग भी मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

५--जैसे वस्त्रके क्षालनरूप कर्मका मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवै है तैसे मलकी निवृत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग नहीं. काहेते ? अन्यके मलकी निवृत्ति तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं, आत्माके मलकी निवृत्ति कहानी होवैगी. सो आत्मा नित्यशुद्ध है ताके विषे मल है नहीं. याते मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बनै नहीं,

और अंतःकरणविषे जो पापरूप मल है ताकी निवृत्ति जो कर्मसे उपयोग कहैं तो यह वार्ता सत्य है, परंतु शुद्ध अंतःकरणवाला जो मुमुक्षु है ताका विचार करे हैं. ताके अंतःकरणमें भी पाप है नहीं, याते पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग बनै नहीं और अज्ञानकूं जो मल कहै तोअज्ञान आत्मामें है परंतु ताकी निवृत्ति कर्मसे होवे नहीं. काहेते? अज्ञानका विरोधी ज्ञान है कर्म नहीं याते मुमुक्षुकूं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार कर्मसे उपयोग बनै नहीं.जैसे वस्त्रका कुसुंभमें मज्जनरूप कर्मका रक्तगुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवै है, तैसे गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग बनै नहीं. काहेते? अन्यविषे ता गुणकी उत्पत्ति कहना बनै नहीं, आत्माविषे ही कहना होवैगा. सो आत्मा निर्गुण है ताकेविषे गुणकी उत्पत्ति बनै नहीं, याते मुमुक्षुकूं गुणकी उत्पत्तिरूपसंस्कार भी कर्मका उपयोग बनै नहीं. याप्रकरणमें उपयोग नाम फलका है. कर्मका पांच ही प्रकारका फल होवे है और नहीं. सो पांच प्रकारका फल कर्मका मुमुक्षुकूं बनै नहीं,याते कर्मकूं त्यागिके ज्ञानके साधनश्रवणविषेही मुमुक्षु प्रवृत्त होवे.उपासना भी मानसकर्मही है,याते ताके खंडनमें पृथक्युक्ति नहीं कही.इस रीतिसे केवल कर्म वा उपासना मोक्षका हेतु नहीं; किंतु केवल ज्ञान है.

पूर्वपक्षीः—कोई कर्मउपासनासहित ज्ञानकूं मोक्षके हेतु अंगीकार करैं हैं और ताकेविषे युक्तिदृष्टांत भी कहै हैं.

१—दृष्टांतः-जैसे आकाशमें पक्षीका एकपक्षसे गमन होवे नहीं किंतु दो पक्षसे गमन होवै है. तैसे मोक्षलोककूं भी एक ज्ञानरूपपक्षसे गमन होवे नहीं. किंतु एक पक्ष तो उपासनासहित कर्म है और द्वितीय पक्ष ज्ञान है.उपासना भी मानसकर्मही है, याते एक ही पक्ष.

२—अन्य दृष्टांतः—जैसे सेतुके दर्शनसे पापका नाश होवै है,सो सेतुका दर्शन भी प्रत्यक्षरूप ज्ञानहै. और श्रद्धाभक्तिसहित गमनादिनियमकी अपेक्षा करै है. जो श्रद्धादिक रहित पुरुष होवै ताकूं सेतुदर्शनसे फल होवे नहीं. जैसे सेतुका प्रत्यक्षज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी फलकी उत्पत्तिमें अपेक्षा करै है,तैसे ब्रह्मज्ञान भी मोक्षरूपफलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनकी अपेक्षा करै है और केवल ज्ञानसे जो मोक्ष अंगीकार करैं हैं सो भी ज्ञानका हेतु तो कर्मउपासना मानैं हैं, शुद्ध और निश्चल अंतःकरणमें ज्ञान होवै है. सोअंतःकरण शुभकर्मसे शुद्ध होवै है और उपासनासे निश्चल होवै है. इस रीतिसे अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताद्वारा कर्मउपासना ज्ञानके हेतु अंगीकार किये हैं. जैसे ज्ञानके कर्मउपासना अंगीकार किये,तैसे ज्ञानके फल मोक्षके हेतु अंगीकार करने योग्यहै.

१-दृष्टांत-जैसे जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्तिका हेतु और वृक्षके फलकी उत्पत्तिका भी हेतु है, जो वनके वृक्षनके जलसेचन विना फल होवे है सो भी वृक्षके मूलमें नीचे जलका संबंध है, याते फल होवे है और जलके संबंध विना वृक्षही सूखजावे फल होवै नहीं. तैसे कर्म उपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु हैं और ज्ञानका फल जो मोक्ष ताके भी हेतु हैं. इस रीतिसे कर्म उपासना ज्ञान तीनों मोक्षके हेतु हैं. यातें ज्ञानवान्भी कर्म करै अथवा कर्मउपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं. काहेते ? जो कर्म उपासनाका ज्ञानवान् त्याग करै तो उत्पन्न हुआ ज्ञानभी जलके विना वृक्षकी न्याई नष्ट होजावेगा. काहेते ? शुद्ध अंतःकरणमें ज्ञान होवै है और शुभकर्म नहीं करे तो ज्ञानवानूं पाप होवेगा और उपासनाके त्यागसे अन्तःकरण फिर चंचल होजावेगा, ता मलिन और चंचल अन्तःकरणमें ज्ञान रहै नहीं जैसे सूखी भूमिमें उत्पन्न हुआ वृक्ष भी रहै नहीं.

२-अन्य दृष्टांत-जैसे संस्कारसे शुद्ध किये स्थानमें वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करै है और शुद्ध किया स्थान भी किसी निमित्तसे फेरि मलिन होय जावे तो ता स्थानकूं त्यागि देवे है.तैसे कर्मके त्यागसे मलिन और उपासनाके त्यागसे चंचलहुआ जो अंतःकरण ताके विषे ज्ञान रहै नहीं;याते कर्म और उपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं.

इस रीतिसे १-कर्म,उपासना,ज्ञान ये तीनो मोक्षके हेतु अंगीकार करैं- २-तथा ज्ञानकी रक्षाके हेतु कर्म उपासना अंगीकार करैं और केवल ज्ञान मोक्षका हेतु अंगीकार करैं दोनों प्रकारसे ज्ञानवानकूं कर्मउपासना कर्तव्य है याकूं समुच्चयवाद कहैं हैं.

सिद्धान्तीः-सो समीचीन नहीं काहेते ? देहसे भिन्न जो आत्मा नहीं जाने, तासे कर्म होवे नहीं. काहेते ? जन्मांतरके भोगके निमित्त कर्म करैं हैं. और देहका अग्निविषे दाह होवे है, तासे जन्मांतरका भोग बनै नहीं. १-याते शरीरसे भिन्न आत्माका ज्ञानकर्मका हेतु है. सो शरीरसे भिन्न भी आत्माका कर्त्ता भोक्तारूप करिकै ज्ञान कर्मका हेतु है. "मैं पुण्य पापका कर्त्ता हूँ और पुण्यपापका फल मेरेकूं होवैगा" ऐसा जाकूं ज्ञान है सो कर्म करै है और ज्ञानवान्कूं ऐसा आत्माका ज्ञान है नहीं, किंतु पुण्य पाप और सुख दुःखते रहित असंग ब्रह्मरूप आत्मा है, ऐसा वेदांतवाक्यसे ज्ञान होवै है, सो ज्ञान कर्मका हेतु नहीं, उलटा विरोधी है, याते ज्ञानवान्से कर्म होवै नहीं. २-कर्त्ता,कर्मफलका भेदज्ञान कर्मका हेतु है, सो कर्त्ता कर्म फलकी ज्ञानकूं आत्मासे भिन्न प्रतीति होवै नहीं सम्पूर्ण आत्मस्वरूपही प्रतीत होवै है. याते भी ज्ञानवान्से कर्म होवै नहीं और भाष्यकारने बहुत प्रकारसे

ज्ञानवान्कूं कर्मका अभाव प्रतिपादन किया है, कर्मका और ज्ञानका फलसे विरोध है- याते भी ज्ञान कर्मका समुच्चय बनै नहीं- १--कर्मका फल अनित्य संसार है. २--ज्ञानका फल नित्य मोक्ष है- ३-आत्मामें जाति आश्रम अवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु है. काहेते ? जाति आश्रम अवस्थाके योग्य भिन्न भिन्न कर्म कहे हैं. याते जाति आदिकनका अध्यास कर्मका हेतु है. यद्यपि जाति आश्रम अवस्था देहके धर्म हैं और कर्मीकूं देहमें आत्मा बुद्धि है नहीं. किंतु देहैसे भिन्न कर्त्ता आत्मा,कर्मी जानै है- यह वार्त्ता पूर्व कही, याते जाति आश्रम अवस्थाकी प्रतीति – आत्मामें, कर्मीकूं भी बनै नहीं. तथापि देहसे भिन्न आत्माका कर्मीकूं अपरोक्षज्ञान नहीं- किंतु शास्त्रसे परोक्षज्ञान है और देहमें आत्मज्ञान अपरोक्ष है. जो देहसे भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवै तो देहमें अपरोक्ष आत्मज्ञानका विरोधी होवै और परोक्षज्ञानका अपरोक्षज्ञानसे विरोध है नहीं याते देहसे भिन्न कर्त्ता आत्माका ज्ञान और देहमें आत्मबुद्धि दोनों एककूं बनैं हैं. दृष्टांतः--मूर्तिमें ईश्वर ज्ञान शास्त्रसे परोक्ष है, और पाषाणबुद्धि अपरोक्ष है तिन्हका विरोध नहीं- दोनों एककू होवै है. और रज्जुमें जाकूं सर्पसे अपरोक्ष भेदज्ञान है; ताकूं अपरोक्ष सर्पभ्रांति दूरि होवै है. याते यह नियम सिद्ध हुआः--अपरोक्षभ्रां-

तिका अपरोक्षज्ञानसे विरोध है परोक्षसे नहीं. याते देहसे भिन्न आत्माका परोक्षज्ञान और देहमें अपरोक्षज्ञान बनै है. सो दोनों कर्मके हेतु हैं. १-देहसे भिन्न कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है. सो कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान भ्रांतिरूप है. और भ्रांति विद्वान्कूं है नहीं, याते कर्मका अधिकार नहीं. और देहमें अपरोक्षआत्मबुद्धि होवै तब देहका धर्म जाति आश्रम अवस्था प्रतीत होवै, सो देहमें आत्मबुद्धि भी विद्वानकूं है नहीं. किन्तु ब्रह्मरूपकरिके आत्माका अपरोक्षज्ञान है, याते जाति आश्रम अवस्थाकी भ्रांतिके अभावते भी विद्वान्कूं कर्मका अधिकार नहीं और उपासना भी "मैं उपासक हूं देव उपास्य है" या बुद्धिसे होवै है. सो विद्वान्कूं उपास्य उपासकभाव प्रतीत होवै नहीं "देहादिकसंघात तो मेरा और देवका स्वप्नकी न्याई कल्पित है और चेतन एक है" यह विद्वान्का निश्चय है, याते ज्ञानका उपासनासे विरोध है और पक्षीके गमनका दृष्टांत भी बनै नहीं. काहेते ? पक्षीके तो दो पक्ष एककालमें रहैं हैं. तिनका परस्पर विरोध नहीं और ज्ञानका तो कर्मउपासनासे विरोध है; एककालमें बनै नहीं और ज्ञानमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा नहीं. सेतुके ज्ञानका दृष्टांत बनै नहीं. काहेते? सेतुका दर्शन दृष्टफलका हेतु नहीं. किंतु अदृष्टफलका हेतुहै. १-प्रत्यक्ष

जो फल प्रतीत होवै सो दृष्टफल कहिये है. जैसे—भोजनका फल तृप्ति प्रत्यक्ष है याते भोजन दृष्टफलका हेतु है. २—तैसे सेतुके दर्शनसे प्रत्यक्षफल प्रतीत होवै नहीं. किंतु पापका नाशरूप फल शास्त्रसे जाना जावै है. जो शास्त्रसे फल जानिये और प्रत्यक्ष प्रतीत होवे नहीं सो अदृष्टफल कहिये है. याते जैसे यज्ञादिक कर्म स्वर्गादिक अदृष्टफलके हेतु हैं तैसे सेतुका दर्शनभी पापके नाशरूप अदृष्टफलका हेतु है. जो अदृष्टफलका हेतु होवे है सो तो जितना फलकी उत्पत्तिमें शास्त्रने सहाय किया है ता सहित फलका हेतु होवै है केवल नहीं, याते श्रद्धानियमादिकसहित सेतुका दर्शन पापनाशरूप फलका हेतु है, श्रद्धानियमादिकरहित हेतु नहीं. काहेते? सेतुके दर्शनसे प्रत्यक्ष तो कोई फल प्रतीत होवै नहीं. केवल शास्त्रसे जाना जावै है, सो शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्शनसे फल बोधन करै है केवल दर्शनसे फलकी उत्पत्तिमें कोई प्रमाण नहीं. याते सेतुका दर्शन फलकी उत्पत्तिमें श्रद्धा नियम भक्तिकी अपेक्षा करै है.

ब्रह्मविद्या अपने फलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं. काहेते? जो ब्रह्मविद्याका फल भी स्वर्गकी न्याई लोकविशेष अदृष्ट होवै सो लोक विशेषभी केवल ब्रह्मविद्यासे शास्त्रसे बोधन नहीं किया होवै किंतु कर्म उपासनासहितसे बोधन किया होवै तौ ब्रह्मविद्या भी

सेतुके दर्शनकी न्याई फलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै. सो ब्रह्मविद्याका फल मोक्ष स्वर्गकी न्याई लोकविशेषरूप अदृष्ट तो है नहीं, किंतु मोक्ष नित्यप्राप्त है और भ्रांतिसे बंध प्रतीत होवै है ता भ्रांतिकी निवृत्तिही ब्रह्मविद्याका फल है सो भ्रांतिकी निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्यासे हमारेकूं प्रत्यक्ष है और रज्जुज्ञानसे सर्प भ्रांतिकी निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यक्ष है. याते अधिष्ठान ज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्ति दृष्टफल है. दृष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्रीसे प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है सो सामग्री दृष्टफलकी हेतु कहिये है. १–जैसे तुरीतंतुवेमसे पटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है, याते तुरीतंतुवेम पटके हेतु हैं. २–केवलभोजनसे तृप्तिरूप फल प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है. याते केवल भोजन तृप्तिका हेतु है. तैसे केवल अधिष्ठानज्ञानतें भ्रांतिकी निवृत्ति प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है याते केवल अधिष्ठानका ज्ञानही भ्रांतिकी निवृत्तिका हेतु है. जैसे रज्जुका ज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमें अन्यकी अपेक्षा करै नहीं. तैसे बंधकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा ताका ज्ञानभी बंधभ्रांतिकी निवृत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं. १–ज्ञानके फल मोक्षकूं जो स्वर्गकी न्याई लोकविशेष अदृष्ट अंगीकार करै है सो वेदवाक्यसे विरुद्ध है. काहेते? ज्ञानवान्के प्राण किसी लोककूं गमन नहीं करते. यह वेदमें कहा है. २–लोकविशेष अंगीकार करनेते

स्वर्गकी न्याई मोक्ष अनित्य होवेगा. याते लोकविशेषरूप मोक्ष नहीं. ४—लोकविशेष जो मोक्ष अंगीकार करै ताकूं भी केवल ज्ञानसेही मोक्षलोककी प्राप्ति अंगीकार करनी योग्य है. काहेते ? जो शास्त्रने प्रतिपादन किया अर्थ होवै सो शास्त्रके अनुसारही अंगीकार करिये है सो शास्त्र केवल ज्ञानसे मोक्ष कहै है, याते केवल ज्ञान मोक्षका हेतु है कर्म उपासना ज्ञान तीनों नहीं.

वृक्षका दृष्टांत भी बनै नहीं काहेते ? यद्यपि जलका सेचन, वृक्षकी उत्पत्ति और रक्षामें हेतु है, तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्तिमें नहीं, वृद्ध जो वृक्ष है ताके विषे जलका सेचन वृक्षकी रक्षाके निमित्त है, फलके निमित्त नहीं ऐसे पुष्ट जो वृक्ष सोई फलका हेतु है जल सेचन नहीं तैसे कर्मउपासनाका भी ज्ञानकी उत्पत्तिमें उपयोग है मोक्षमें नहीं याते ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्वही अंतःकरण की शुद्धि और निश्चलताके निमित्त कर्मउपासना करै ज्ञानसे अनंतर मोक्षके निमित्त नहीं.

ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व भी जितने अंतःकरणमें मल और विक्षेप होवैं तब पर्यंतही करे, शुद्ध और निश्चल अन्तःकरण जाका होवै सो जिज्ञासु श्रवणके विरोधी कर्मउपासनाका त्याग करे. मल नाम पापका है सो अशुभ वासनाका हेतु है, जब पर्यंत मल होय तबपर्यंत अशुभ वासना होवै है, जब अशुभ वासना होवै नहीं

तब मलका अभाव निश्चय करै. अन्तःकरणकी चंचलता और एकाग्रता अनुभवसिद्ध है याते उत्तम जिज्ञासु और विद्वानकूं कर्मउपासना निष्फल है.

पूर्व जो कहा—"ज्ञानकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै. जैसे जलसे उत्पन्न हुआ जो वृक्ष ताकी जलसे रक्षा होवै है. जो जलका सम्बन्ध नहीं होवै तो वृद्ध वृक्ष भी सूखजावे है. तैसें कर्मउपासनासे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान ताकी कर्म उपासनासे रक्षा होवै है. जो ज्ञानी कर्मउपासना नहीं करै तौ अन्तःकरण मलिन और चंचल फेरि होयजावेगा. ता मलिन और चंचल अन्तःकरणमें सूखी भूमिमें वृक्षकी न्याई उत्पन्न हुआ ज्ञान भी नष्ट होजावेगा. यातैं ज्ञानवान् भी कर्मउपासना करै."

सो बनै नहीं. काहेते? आभाससहित अथवा चेतनसहित जो अंतःकरणकी "मैं असंग ब्रह्म हूँ" यह वृत्ति सो वेदांतका फलरूप ज्ञान है ताका कर्मउपासनासे विना नाश होवेगा; अथवा चेतनस्वरूप ज्ञानका नाश होवैगा, जो ऐसे कहै स्वरूपज्ञान तो नित्य है, याते ताका तो नाश और रक्षा बनै नहीं, परंतु वेदांतका फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान है ताकी कर्मउपासनासे उत्पत्ति होवै है और कर्मउपासनाके त्यागसे उत्पन्न हुई विद्या भी नष्ट हो जावेगी, याते ताकी रक्षाके निमित्त कर्म उपासना करै सो बनै नहीं काहेते? एकबार उत्पन्न

हुई जो अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्ति तासे अज्ञान और भ्रांतिका नाशरूप फल तिसही समय सिद्ध होवै है.अज्ञान और भ्रांतिके नाशते अनंतर फेरि वृत्तिकी रक्षाका उपयोग नहीं- २-अंतःकरणकी वृत्तिकी कर्मउपासनासे रक्षा बनै भी नहीं. काहेते ? जब कर्मउपासनाका अनुष्ठान करेगा. तब कर्म उपासनाकी सामग्रीका ही वृत्तिरूप ज्ञान होवैगा-ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं और वृत्ति हुयेते प्रथमवृत्ति रहै नहीं: याते कर्म उपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके तो परंपराते हेतु हैं और उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं. याते कर्मउपासनाते ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं.

पूर्व जो कह्या-"ज्ञानवान्कूं कर्मके त्यागसे पाप होवै है" सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेते ? १-जो शुभकर्मका त्याग है सो पापका हेतु नहीं, किंतु निषिद्धकर्मका अनुष्ठानही पापका हेतु है यह वार्त्ता भाष्यकारने बहुत प्रकारसे प्रतिपादन करी है; याते कर्मके त्यागसे पाप होवै नहीं और ज्ञानवान्कूं तो सर्वप्रकारसे पापका असंभव है, काहेते ? पुण्य पाप और तिनका आश्रय अंतःकरण परमार्थसे हैं नहीं अविद्यासे मिथ्याप्रतीति होवै है सो अविद्या और मिथ्याप्रतीति ज्ञानवान्के है नहीं-याते ज्ञानवान्कूं शुभकर्मके त्यागसे अथवा अशुभके अनुष्ठानसे पाप बनै नहीं.

या स्थानमें यह सिद्धांत है-१-मंद, २-दृढ, दो

प्रकारका ज्ञान है. १-संशयादिक सहित जो ज्ञान सो मंदज्ञान कहिये है; २-संशयादिक रहित ज्ञान दृढ कहिये है. जाकूं दृढज्ञान होवै ताकूं किंचिन्मात्र भी कर्त्तव्य नहीं. एकवार उत्पन्न हुआ जो संशयादिकरहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान सोई अविद्याका नाश करिदेवै है. सो ज्ञान आप भी दूरि होयजावे तो भी भलेप्रकारसे जाने आत्मामें फेरि भ्रांति होवै नहीं. काहेते? जो भ्रांतिका कारण अविद्या है सो अविद्या एकवार उत्पन्न हुए ज्ञानसे नष्ट होय गई याते भ्रांति और अविद्याके अभावते वृत्तिज्ञानकी आवृत्तिका कुछ उपयोग नहीं औ जीवन्मुक्तिके आनंदवास्ते जो वृत्तिकी आवृत्ति अपेक्षित होवै तो वारंवार वेदांतके अर्थका चिंतनही करै. वेदांतके अर्थ चिंतनसेही वारंवार ब्रह्माकारवृत्ति होवै है कर्मउपासनाते नहीं. काहेते? कर्म और उपासनाका अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताद्वाराही ज्ञानमें उपयोग है, और रीतिसे नहीं और विद्वान्के अंतःकरणमें पाप और चंचलता है नहीं. रागद्वेषद्वारा पाप और चञ्चलताका हेतु अविद्या है, ता अविद्याका ज्ञानसे नाश होवै है. याते विद्वान्के पाप और चञ्चलताके अभावते कर्मउपासनाका उपयोग नहीं.

जो कदाचित् ऐसे कहैः-रागद्वेषादिक अंतःकरणके सहज धर्म हैं, जितने अंतःकरण हैं उतने रागद्वेषका

सर्वथा नाश ज्ञानवान्‌के भी होवे नहीं. तिन्ह रागद्वेषते ज्ञानवान्‌का भी अंतःकरण चञ्चल होवे है. याते चंचलता दूरि करनेवास्ते ज्ञानवान् भी उपासना करे.

यद्यपि ज्ञानवान्‌कूं अंतःकरणकी चंचलतासे विदेह मोक्षमें हानि नहीं. तथापि चंचल अंतःकरणमें स्वरूपआनंदका भान होवे नहीं. याते चंचलता जीवन्मुक्तिकी विरोधी है याते जीवन्मुक्तिके निमित्त चंचलता दूरि करने वास्ते उपासना करै सो बनै नहीं. काहेते? यद्यपि दृढबोध जाके अंतःकरणमें हुआ है ताके समाधि और विक्षेप समान है. याते अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरंभ विद्वान्‌कूं बनै नहीं. तथापि विद्वान्‌की प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रारब्धके अधीन है, प्रारब्धकर्म सर्वका विलक्षण है, १-किसी विद्वान्‌का जनकादिकनकी न्याई भोगका हेतु प्रारब्ध है. २-किसीका शुकदेव वामदेवादिकनकी न्याई निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है. १-जाके भोगका हेतु प्रारब्ध होवे ताकूं ता प्रारब्धसे भोगकी इच्छा और भोगके साधनका यत्न होवैहै. २-जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवे ताकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवे है और भोगमें ग्लानि होवैहै. जाकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवै सो ब्रह्माकारवृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदांत अर्थका चिंतन ही करै उपासना नहीं. काहेते? अंतःकरणकी निश्च

तामात्रसे ब्रह्मानंदका विशेषरूपसे भान होवे नहीं. किंतु ब्रह्माकारवृत्तिसेही होवे है. सो ब्रह्माकारवृत्ति वेदांत-चिंतनसेही होवे है उपासनाते नहीं और अंतःकरणकी चंचलता भी विद्वान्कूं वेदांतके चिंतनसेही दूरि होय जावै है, याते अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त भी उपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं. इस रीतिसे दृढबोध जाके हुवा है ताकी कर्मउपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं.

१– जाके मंदबोध है सो भी मनन और निदिध्यासनही करै. कर्म उपासना नहीं. काहेते ? मंदबोध जाकूं हुआ है सो उत्तम जिज्ञासु है. ता उत्तम जिज्ञासुकूं मनन निदिध्यासनसे विना अन्य कर्तव्य नहीं: यह वार्ता शारीरकमें सूत्रकार और भाष्यकारने प्रतिपादन करी है.

२–विद्वान्कूं मनन निदिध्यासन भी कर्तव्य नहीं जो जीवन्मुक्तिके आनंदवास्ते विद्वान् मनन निदिध्यासनमें प्रवृत्ति होवे है सो भी अपनी इच्छासे प्रवृत्त होवे है और "मैं वेदकी आज्ञा नहीं करूंगा, तो मेरेकूं जन्म मरण संसार होवेगा" इस बुद्धिसे जो क्रिया करै सो कर्तव्य कहिये है सो जन्मादिकनकी बुद्धि विद्वान्के होवे नहीं याते अपनी इच्छाते जो विद्वान् मनन निदिध्यासन करे सो कर्तव्य नहीं; इस रीतिसे मंदबोध अथवा दृढ़बोध जाके हुवा है तिसकूं कर्मउपासना कर्तव्य नहीं.

३–जाके बोध नहीं हुआ है किंतु आत्माके जान-

नेकी तीव्र इच्छा है भोगकी नहीं ताको अंतःकरण शुद्ध है, याते सो भी उत्तमही जिज्ञासु है, ताकूं भी बोधके वास्ते श्रवणादिकही कर्तव्य है. कर्मउपासना नहीं.काहेते? जो कर्मउपासनाका फल है सो ताकेसिद्ध है.

४–ज्ञानकी सामान्य इच्छाते जो श्रवणमें प्रवृत्त हुआ है और अन्तःकरण भोगनेमें आसक्त है सो मंद-जिज्ञासु है सो भी श्रवणकूं त्यागिके फेरि कर्म उपासनामें प्रवृत्त होवे नहीं. जो कर्मउपासनाका फल अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलता है सो ताकूं श्रवणसेंही हो जावेगा. श्रवणकी आवृत्तिसे अन्तःकरणके दोष दूरि होयके इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्मविषे अथवा ब्रह्म लोकविषे ज्ञान होवे है, आवृत्तिनाम वारंवारका है और श्रवणकूं त्यागिके जो कर्मउपासनामें प्रवृत्ति होवे है सो आरूढ़पतित कहिये है. १–२–इस रीतिसे ज्ञानवान् और उत्तम जिज्ञासुका कर्मउपासनाविषे अधिकार नहीं. ३–मन्द जिज्ञासु भी जो वेदांतश्रवणमें प्रवृत्त हुआ है ताका अधिकार नहीं. ज्ञानकी जाकूं इच्छा तो है परंतु भोगमें बुद्धि आसक्त है याते श्रवणमें प्रवृत्त नहीं हुआ ऐसा जो मन्दजिज्ञासु ताका निष्कामकर्म और उपासनामें अधिकार है. ५–जाकी भोग विषेही आसक्ति है ज्ञानकी इच्छा नहीं. ऐसा जो बहिर्मुख है ताको सकामकर्म विषे भी अधिकार है याते ज्ञानवानकूं कर्म

उपासनाका अधिकार नहीं. कर्म उपासनाका ज्ञान विरोधी है. और दृढबोधके कर्म उपासना विरोधी नहीं परंतु मन्दबोधके विरोधी हैं.

कर्म उपासना भी अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताद्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिके तो हेतु है परन्तु ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर जो कर्मउपासना करै तो उत्पन्न हुआ ज्ञान नष्ट हो जावेगा. याते ज्ञानके विरोधी हैं रक्षाके हेतु नहीं.काहेते ? १–"मैं कर्त्ता हूँ और यज्ञादि मेरेकूं कर्तव्य हैं, यज्ञादिकनका स्वर्गादि फल है" या भेदबुद्धिसे कर्म होवे हैं. २–"मैं उपासक हूं. देव उपास्य है" या भेदबुद्धिसे उपासना होवे है सो दोनों-प्रकारकी बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धिकूं दूरि करिके होव है याते कर्म उपासना ज्ञानके विरोधी हैं यद्यपि ज्ञानवान् आत्माकूं असंग जानैहै तो भी देहका भोजनादिक व्यवहार; अथवा जनकादिकनकी न्याईं अधिक राज्यपालनादिक व्यवहार करै है ता व्यवहारका ज्ञान विरोधी नहीं और व्यवहार ज्ञानकाभी विरोधी नहीं काहेते ? जो आत्मस्वरूप ज्ञानसे असंग जाना है ता आत्माविषे जो व्यवहार प्रतीत होवे तो व्यवहारका विरोधी ज्ञान तथा ज्ञानका विरोधी व्यवहार सो होवे विद्वानकू आत्माविषे व्यवहार प्रतीत होवे नहीं किंतु संपूर्ण व्यवहार देहादिकनके आश्रित हैं. और आत्माविषे

व्यवहारसहित देहादिकनका संबंध है नहीं. या बुद्धिसे सम्पूर्ण व्यवहार करे है. इसी कारणते विद्वान्की प्रवृत्ति भी निवृत्ति ही कही है.

जैसे अन्यव्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं तैसे कर्मउपासना भी अन्यबहिर्मुखपुरुषनके करानेवास्ते आत्माकूं असंग जानिके और देह वाक्अतःकरणके आश्रितक्रिया जानिके जो कर्मउपासना करे तो ज्ञानके विरोधी नहीं. काहेते? आत्मा विद्वान्ने असंग जाना है, ताकूं कर्ता जानिके जो कर्मउपासना करे तो ज्ञानके विरोधी होवे सो आत्माका असंगरूप दृढनिश्चय कर्मउपासनासेविद्वान्का दूरि होवैनहीं. याते आभासरूप कर्मऔर उपासना दृढज्ञानके विरोधी नहीं इसी कारणते जनकादिकनने आभासरूप कर्म करे हैं. जो आत्माकूं असंग जानिके और व्यवहारकी न्याई देहादिकनके धर्म जानिकेविद्वान् शुभक्रिया करै सो आभासरूप कर्म कहिये है, ताका ज्ञानसे विरोध नहीं और भाष्यकारने कर्म उपासनाका जो ज्ञानसे विरोध कहा है सो आत्मामें कर्ता बुद्धिसे जो कर्म उपासना करे है ताका विरोध कहाहै और आभासरूपसे नहीं, तथापि मन्दबोधके आभासरूपकर्म और आभासरूप उपासना भी विरोधी हैं. काहेते? जो संशयादिक सहित बोध है सो मंदबोध कहिये है, जाके अंतःकरणमें "आत्मा असंग है अथवा नहीं है"

ऐसा कदाचित् संशय होवे सो पुरुष जो वारंवार "आत्मा असंग है मेरेकूं किंचिन्मात्र भी कर्तव्य नहीं" या अर्थकूं चिंतन करै तबतो संशय दूरि होयके दृढबोध होय जावे. और कर्मउपासना करेगा तो मन्दबोध जो उत्पन्न हुवा है, सो दूरि होयके "मैं कर्ता भोक्ता हूँ" यह विपरीत निश्चय होय जावेगा. याते मंदबोधकी उत्पत्तिसे पूर्व ही कर्मउपासना करै अनंतर नहीं और जो मंदबोधवाला कर्मउपासना करेगा तो उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होयजावेगा. दृष्टांत-जैसे पक्षी अपने अंडेकूं पक्षकी उत्पत्तिसे पूर्व सेवन करै है और पक्षकी उत्पत्तिसेअनंतर नहीं, जो पक्षकी उत्पत्तिसे अनंतर भी अंडेकूं सेवन करै तो बालपक्षिके ता अण्डेके जलसे पक्ष गल जावे. तैसे ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्वही कर्मउपासनाका सेवन करै और ज्ञानकी उत्पत्तिसे अंनतर नहीं. जो ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर भी कर्म उपासनाका सेवन करै तो बालपक्षिकी न्याई मंदज्ञानका नाश होय जावे और वृद्धपक्षीकी जैसे अंडेके संबंधसें हानि होवे नहीं तैसे दृढबोधकी तो हानि होवे नहीं और वृद्धपक्षीकी न्याई दृढबोधकूं कर्म उपासनासे उपयोगभी नहीं. इस रीतिसे ज्ञानवान्कूं मोक्षके निमित्त किंचित्मात्रभी कर्तव्य नहीं. यह तृतीय प्रश्नका उत्तर कहा १०

जो शिष्यकूं आचार्यने उत्तर कहे, सो वेदके अनुसार कहे, याते यथार्थ हैं, यह वार्ता कहैं हैंः-

दोहा।

शिष्य कह्यों जो तोहि मैं, सर्व वेदको सार।
लहै ताहि अनयासही, संसृति नशै अपार॥ ११॥

हे शिष्य! जो मैं तेरेकूं कहा सो सर्ववेदका सार है याते याविषे विश्वास करे और याके जाननेते अनायास कहिये खेदविना अपार जो संसृति कहिये जन्म मरण-रूप संसार ताका नाश होवै है॥ ११॥

यद्यपि खेदका नाम आयास है ताके अभावका नाम अनायास है, तथापि छंदके वास्ते अनयास पढ्या है. भाषामें छंदके वास्ते गुरुके स्थानमें लघु और लघुके स्थानमें गुरु पढनेका दोष नहीं.

और मोक्षके स्थानमें मोच्छही भाषामें पाठ होवै है. काहेते? यह भाषाकी संप्रदाय है.

दोहा।

लघु गुरु गुरु लघु होत है, वृत्त हेत उच्चार।
ह्र ह्व अरुको ठौरमें, अबको ठौर बकार॥
संयोगी क्ष न कपर खन, नहीं टवर्ग णकार।
भाषामें ऋ लृ हू नहीं, अरु तालव्य शकार॥

इतने अक्षर भाषामें नहीं कोई लिखे तौ कवि अशुद्ध कहै. १-क्षके स्थानमें छ, २-खके स्थानमें ष, ३-णकारके स्थानमें नकार, ४-ऋ लृके स्थानमें रि लि है, ५-शकारके स्थानमें सकार भाषामें लिखने योग्य है

"जगत्का कर्त्ता ईश्वर है सो तेरेसे भिन्न नहीं और सत् चित् आनंदरूप ब्रह्म तू है." यह आचार्यने कह्या सोई कृपाते फिरि कहैं हैं:-

कवित्त।

दीनताकूं त्यागि नर अपनो स्वरूप देखि,
तू तौ शुद्धब्रह्म अज दृश्यको प्रकाशी है।
आपनै अज्ञानते जगत सब तूही रचै,
सर्वको संहार करै आप अविनाशी है॥
मिथ्या परपंच देखि दुःख निज आनि जिय,
देवनको देव तू तो सब सुखराशी है।
जीव जग ईश होय मायासे प्रभासै तू ही,
जैसे रज्जु सांप सीप रूप है प्रभासी है॥१२॥

अर्थ-स्पष्ट है॥ १२॥

कवित्त।

राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार वारि,
बारबार मृगवारि पारवार पेखिये।
ज्ञानभानु आनि तम तुम तारि भागग्याग,
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेखिये॥
वेदको विचार सार आपकूं संभारि यार,
टारि दासपास आशा ईशकी न देखिये।
निश्चल तू चलै न अचल चलदल छल,
नभनिल तलमल तासूं न विशेषिये॥ १२॥

ज्ञानके साधन कहैं हैं:–हे शिष्य! राग जो पदार्थनमें दृढ आसक्ति है ताकूं जारिके लोभकूं हारि कहिये नाशकरि द्वेषकूं मारि मार कहिये कामकूं वारि दूरिकर राग लोभ द्वेष कामके ग्रहणते सर्व राजसी तामसी वृत्तिका ग्रहण है, याते सब राजसी तामसी वृत्तिका नाश कर यह अर्थ सिद्ध हुआ। राजसीवृत्ति और तामसी वृत्ति ज्ञानकी विरोधी हैं तिन्हके नाशविना ज्ञान होवै नहीं याते तिन्हकी निवृत्ति जिज्ञासुकूं अपेक्षित है विवेक, वैराग्य, शमादि षट्सम्पत्ति, मुमुक्षुता ये चारि जो ज्ञानके साधन हैं तिन्हमें विवेक प्रधान है, काहेते? विवेकसे वैराग्यादिक उत्पन्न होवैं हैं याते विवेकका उपदेश आचार्य करैं हैं:–हे शिष्य! पारवार जो संसार है ताकूं वारंवार मृगवारि कहिये मृगतृष्णाके जल समान मिथ्या जान. १–पारवार नाम संसारका है. २–अपारवार नाम आत्माका है पारवार मिथ्या है, या कहनेते अपारवार मिथ्या नहीं किंतु सत्य है. यह वार्त्ता अर्थसे कही. जैसे बाजीगरके तमासे देखते पुत्रकूं पिता कहै–हे पुत्र! "यह आम्रवृक्षसे आदिलेके जो बाजीगरने बनाये हैं सो मिथ्या है" या कहनेसे बाजीगरकूं मिथ्या नहीं जानै है, किंतु सत्य जानै है. तैसे जगत्कूं मिथ्या कहनेते आत्माकूं सत्य जानि लेवेगा, या अभिप्रायते आचार्यने पारवार मिथ्या कह्या. इस रीतिसे जगत मिथ्या है और

आत्मा सत्य है या विवेकका उपदेश कऱ्या. ता विवेकसे अन्यसाधन आपही उत्पन्न होवैं हैं याते विवेकके उपदेशते सर्व साधनका उपदेश अर्थसे कह्या. ज्ञानके बहिरङ्गसाधन कहे अंतरंगसाधन श्रवणादि कहे हैं-हे शिष्य! ज्ञानरूपी जो भानु है ताकूं आनि कहिये श्रवणसे संपादन करिके तम कहिये ज्ञानरूपी जो तम अंधेरा है ताकूं तारि कहिये नाशकर तम नाम अन्धेरेऔर अज्ञानका है अंधेरा उपमान है और अज्ञान उपमेय है. प्रथम जो तम शब्द है सो उपमेयका वाचक है और दूसरा उपमानका वाचक है॥ १३॥

दोहा।

जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय बखानि।
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमानि॥ १४॥

ज्ञानका स्वरूप अन्यशास्त्रमें नानाप्रकारका अंगीकार किया है, याते वाक्यके अनुसार ज्ञानका स्वरूप कहैं हैं:-हे शिष्य! १-जीव और ईश्वरविषे अविद्या और मायाभागकूं त्यागिके तिन्हका जो भेद प्रतीत होवै है, ताकूं छेद कहिये दूरि कर और २-जीव ईश्वरमें जो वेदन कहिये चेतनभाग है ताकूं भेदरहित जान,या कहनेते यह वार्त्ता कही-महावाक्यनमें भागत्यागलक्षणाते जीव ईश्वरकी एकता जान शिवके स्थानमें सीव पढ्या है तृतीयपादका अर्थ स्पष्ट है॥ १४॥

पूर्वकहे अर्थकूं संक्षेपते चतुर्थ पादसे कहैं हैं. हे शिष्य! चल कहिये विनाशी जो देहादिक संघात सो तूं नहीं किंतु अचल कहिये अविनाशी जो ब्रह्म सो तूं है और चलदल कहिये वृक्षरूप जो संसार सो छल कहिये मिथ्या है. जैसे नभविषे नीलता और तलमल कहिये कटाहरूपता है नहीं. किंतु मिथ्या प्रतीत होवै है. तैसे संसार भी आत्माविषे है नहीं मिथ्या प्रतीत होवै है. वृक्षरूप करिके संसार श्रुतिस्मृतिमें कह्या है; यातें वृक्षके वाचक चलदल शब्दका संसारमें प्रयोग कऱ्या है. मोक्षका साधन ज्ञान है या अर्थकूं अन्यप्रकारसे कहैं हैं—

कवित्त।

बंध मोक्ष गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग रु विराग दोइ ध्वजा फहरात है।
विषे विषे सत्यभ्रम भ्रममति वात तात,
हललात प्रात रात घरी न ठहरात है ॥
साछच साँछी पूतरी अनूजरी रु ऊजरी है,
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात है।
चञ्चल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज,
दुःख कूप आनंद स्वरूपमें समात है ॥ १५ ॥

हे शिष्य ! देहवान् कहिये देह अभिमानी अज्ञानी और ज्ञानवान् बन्ध और मोक्षके गेह कहिये धाम हैं १—अज्ञानी तो बंधका धाम है. २—ज्ञानी मोक्षका धाम

है. राग और विराग तिनकी ध्वजा हैं जैसे--ध्वजा राजाके नगरका चिह्न होवै है तैसे राग और विराग तिनके चिह्न हैं. १--अज्ञानीका राग चिह्न है २--ज्ञानीका विराग चिह्न है-अज्ञानीविषे भी विराग होवै है. याते ज्ञानीका अज्ञानीसे विलक्षण विराग कहैं हैं. हे तात! विषय जो शब्दादिक हैं तिन्हविषे सत्य भ्रम कहिये सत्यपनेकी भ्रांति और भ्रममति कहिये रज्जुसर्पकी न्याईं विषय भ्रमरूप हैं, यह जो मतिनिश्चय सो बातकी न्याईं राग और विरागकूं हलावै है. जैसे-वायु ध्वजाकी चञ्चलता करै है, तैसे विषयमें सत्यबुद्धि और भ्रमबुद्धि राग औग विरागकूं चञ्चल करै हैं, शिथिल होने देवें नहीं. १--विषयमें सत्यबुद्धिसे रागकी शिथिलता दूरि होवे है. २--विषयमें भ्रमबुद्धिसे विरागकी शिथिलता दूरि होवै है.

विषय असत्य है, यासे तिन्हमें सत्यबुद्धि भ्रांतिरूप है-इस वार्त्ताके जनावनेकूं कवित्तमें सत्यभ्रम कह्या, सत्यबुद्धि नहीं कही. भ्रांतिज्ञान और भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु सो दोनों भ्रम कहिये हैं. या कहनेते, अज्ञानीके विरागते ज्ञानीके वैरागका भेद कह्या, काहेते? जो अज्ञानीका विराग है, सो विषयमें मिथ्याबुद्धिसे उत्पन्न नहीं हुवा याते मन्द है. विषय मिथ्या हैं, यह बुद्धि अज्ञानीकूं होवै नहीं. १--यद्यपि शास्त्रयुक्तिसे अज्ञानी भी मिथ्या जाने है तथापि विषय मिथ्या हैं, यह अपरोक्ष-

प्रति ज्ञानवान्कूंही होवै है अज्ञानीकूं नहीं. याते अज्ञानीकूं विषयमें परोक्ष जो मिथ्याबुद्धि तासे अपरोक्ष सत्यभ्रांति दूरि होवै नहीं. इस रीतिसे अज्ञानीकूं विषयमें जब विराग होवै है, ता कालमें परोक्ष मिथ्या बुद्धि है भी परंतु परोक्ष मिथ्याबुद्धिसे प्रबल अपरोक्ष सत्यबुद्धि है. याते अज्ञानीकी परोक्ष मिथ्याबुद्धि विरागकी हेतु नहीं, किंतु प्रबल जो सत्यबुद्धि तासे विषयमें रागही होवै है और जो विराग होवै तो भी मिथ्याबुद्धिसे नहीं, किंतु विषयमें दोषदृष्टिसे होवै है. २-ज्ञानवान् सर्वप्रपंचकूं अपरोक्षरूप करिके मिथ्या जानै है ता अपरोक्ष मिथ्याबुद्धिसे अपरोक्ष सत्यबुद्धि दूरि होवै है, याते रागकी हेतु विषयमें सत्यबुद्धि तो ज्ञानीकूं है नहीं. विरागकी हेतु विषयमें मिथ्याबुद्धि ज्ञानवान्कूं है जो ज्ञानीकूं विषयमें सत्यबुद्धि फेरि होवै तो राग फेरि होवै और विराग दूरि होवै सो अपरोक्षरूपतो मिथ्या जाने पदार्थमें फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं. जैसे—अपरोक्षरूपते मिथ्या जान्या जो रज्जुमें सर्प ताके विषे सत्यबुद्धि फेरि होवै नहीं. तैसे ज्ञानीकूं फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं. इस रीतिसे रागकी उत्पत्ति और विरागकी निवृत्ति ज्ञानीको होवै नहीं. याते ज्ञानीका विराग दृढ है. और दोषदृष्टिसे जो अज्ञानीकूं विराग होवै है सो तो दूरि होय जावे है. काहेतें जा पदार्थनमें दोषदृष्टि होवै है ता पदार्थमेंही अन्यकालमें सम्यक् बुद्धि भी होय

जावैहै.जैसे-सर्व पुरुषनकूं पशुधर्मके अंतमें स्त्रीविषै दोष दृष्टि होवै और कालांतरमें फेरि सम्यकबुद्धि होवै है इसरीतिसे दोषदृष्टि जब दूरि होवे तब अज्ञानीका विराग भी दूरि होय जावै है याते अज्ञानीकूं दृढविराग होवै नहीं. इस रीतिसे राग और विराग अज्ञानीके और ज्ञानीके चिह्न कहे और भी चिह्न कहैं हैं:-हे शिष्य। जैसे धामके ऊपरि पुतरी कहिये हस्ती आदिकनकी मूर्ति होवै है, तैसे बन्धमोक्षका धाम जो अज्ञानी और ज्ञानीका अंतःकरण है ताकेविषे साक्ष्य साक्षी पूतरी हैं. १-अज्ञानीके अन्तःकरणविषे तो साक्ष्यरूपी पूतरी है. २-ज्ञानीके अंतःकरणमें साक्षीरूपी पूतरी है. साक्षीका विषय जो प्रपञ्च है ताकूं साक्ष्य कहे हैं. १-साक्ष्यरूपी पूतरी अनूजरी कहिये मलिन है. और२-साक्षी रूपी पूतरी ऊजरी कहिये शुद्ध है. आगे अर्थ स्पष्ट है. चञ्चलभ्रम निजरूप लखि, और अचलब्रह्म निजरूप लखि,या क्रमते अन्वयहै १५॥

भागत्यागलक्षणाका जो कवित्तमें विशेषकरिके ग्रहण किया है ताविषे हेतु कहनेकूं लक्षणाका भेद कहें हैं:-

दोहा।

त्रिविधलच्छना कहत हैं, कोविद बुद्धिनिधान।
जहती अरु अजहती पुनि, भागत्याग निजजान॥
आदि दोइ नहिं सम्भवैं, महावाक्यमें तात।
भागत्यागते रूप निज, ब्रह्मरूप दरशात॥ १६॥

अर्थ-स्पष्ट है॥ १६॥

शिष्य उवाच-अर्धशंकर-छन्द।

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं, देहु यह समुझाय।
पुनि भेद ताके तीनि तिनके, लच्छनहुं दरशाय॥ १७॥

सामान्यज्ञानसे अनंतर विशेषका ज्ञान होवै है. जैसे सामान्यब्राह्मणका ज्ञान हुएसे अनंतर सारस्वत आदिक विशेषका ज्ञान होवै है. तैसे लक्षणा सामान्यका ज्ञान होवै तो जहती आदिक, विशेष रूपनका ज्ञान होवै लक्षणाका सामान्यरूप जाने विना जहती आदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवै नहीं. इस अभिप्रायते शिष्य कहै है-हे प्रभो! लक्षणा काकूं कहते हैं? यह मैं नहीं जानूं हूँ. याते लक्षणाका सामान्यरूप दिखायके तिससे अनंतर जो जहती आदिक लक्षणाके तीन भेद कहिये विशेष हैं, तिन्हके जुदे जुदे लक्षण दिखावो, छंद वास्ते प्रभोकूं प्रभु पढचा और भाषाकी संप्रदायते लक्षणाके स्थानमें लच्छना पढचा. लक्षणके स्थानमें लच्छन पढचा॥ १७॥

गुरुवाक्य-शङ्करछन्द।

श्रुति चित्त निज एकाग्रकरि, अब शिष्य सुनि मम बानि।
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके, लेहु नीके जानि॥
सुनि वृत्ति है द्वै भांति पदकी, शक्ति तामें एक।
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी, सुनहु सो सविवेक॥ १८॥

पदका जो अर्थसे संबंध सो वृत्ति कहिये है. सो वृत्ति

दो प्रकारकी है- ता दो प्रकारमें एक शक्तिवृत्ति है और दूजी लच्छना वृत्ति है. तिनकूं सविवेक कहिये विवेकसहित याका लच्छनसहित सुनि ॥ १८ ॥

शक्तिलक्षण-दोहा।

जा पदतैं जा अर्थकी, है सुनतेहि प्रतीति।
ऐसी इच्छा ईशकी, शक्ति न्यायकी रीति ॥ १९ ॥

जा पदते कहिये घटपदते, जा अर्थकी कहिये कलश अर्थकी सुनतेही प्रतीति कहिये ज्ञान सबपुरुषनकूं होवै ऐसी जो ईश्वरकी इच्छा- ताकूं न्यायशास्त्रमें शक्ति कहैं हैं.

स्वरीतिशक्तिलक्षण।

(पदमें अर्थके ज्ञानकी सामर्थ्य)

अर्धशंकर--छन्द

सामर्थ्य पदकी शक्ति जानहु, वेदमत अनुसार।
सो वह्निमें जिम दाहकी है, शक्ति त्यूं निरधार ॥२०॥

१-घटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनेका जो घटपदविषे सामर्थ्य सोई घटपदमें शक्ति है. २-तैसे पटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनेका जो पटपदमें सामर्थ्य सोई पटपदमें शक्तिवृत्ति है ऐसे सर्वपदनमें जानि लेनी. दृष्टांतः-जैसे वह्निमें अपनेसे मिलतेही वस्तुके दाह करनेकी सामर्थ्यरूप शक्ति है. तैसे श्रोताके कर्णसे मिलतेही वस्तुके ज्ञान करनेकी जो पदविषे सामर्थ्य सो शक्ति कहिये है. सामर्थ्य नाम सम-

थंपनेका है जाकूं समर्थाई कहैं हैं. और बल भी कहैं हैं जोर भी कहैं हैं, जैसे-अग्निमें दाहकी शक्ति है तैसे जल-विषे गिलाकरनेकी तृषा, दूरि करनेकी, पिंड बांधनेकी जो समर्थाई है सो शक्ति है इस प्रकारसे सर्वपदार्थन-विषे अपना अपना कार्य करनेकी सामर्थ्य है सोई शक्ति है, यह वेदका सिद्धांत है ताहीकूं निर्धार कहिये निश्चय कर और न्यायकी रीति त्यागनेकूं योग्य है ॥ २० ॥

प्रश्नः—वर्ण समुदायसे जुदी शक्ति नहीं, यातैं ईश इच्छाशक्ति है—

शिष्य उवाच—शंकरछन्द।

ननु वह्निमें नहिं शक्ति भासै, वह्नि विन कछु और।
है हेतुता जो दाहकी सो, वह्निमें तिहि ठौर ॥
इम पदनहू मैं वर्णबिन कछु, शक्ति भासत नाँ ।
या हेतुतैं ईशइच्छा, शक्ति सो मति माहिं ॥ २१ ॥

ननुशब्द संदेहका वाचक है, वह्निमें ताके स्वरूपसे जुदी शक्ति भासे कहिये प्रतीत होवै नहीं, और पूर्व कह्या दाहका हेतु जो वह्निमें सामर्थ्य,सोई वह्निमें शक्ति है सो बनै नहीं. काहेते ? दाहकी हेतुता कहिये जनकता, कारणपना केवल वह्निमेंही है, अप्रसिद्ध सामर्थ्य वह्निमें मानिके ताके विषे हेतुता माननेका, और प्रसिद्ध वह्निमें हेतुता त्यागनेका कुछ प्रयोजन नहीं. जैसे—दृष्टान्तमें शक्ति नहीं संभवै, इम कहिये इस रीतिसे पदनके विषे

भी वर्णका समुदाय जो पदनका स्वरूप, तासे जुदी शक्ति भासै नहीं और ताका प्रयोजन भी नहीं, या हेतुते ईश्वरकी इच्छारूप जो न्यायकी रीतिसे शक्ति, सोई मेरी मतिमांहि भासै है ॥ २१ ॥

सिद्धान्तरीतिसे अग्निआदिकमें दाहादिकार्यकी सामर्थ्यरूप शक्तिका प्रतिपादन—

गुरुरुवाच-शंकरछन्द ।

प्रतिबंध होते वह्नितैं नहिं, दाह उपजै अंग ।
उत्तेजक रु जब धरै तब फिर, दहैं वह्नि स्वसंग ॥
है वह्नि मैं जो हेतुता तो, दाह है सब काल ।
जो नशै उपजै वह्नि होते, हेतु शक्ति सुवाल ॥ २२ ॥

हे अंग प्रिय ! प्रतिबंधक होते अग्निसे दाह होवे नहीं. और उत्तेजक समीप धरै, तब स्वसंग कहिये अग्निसे मिल्या जो पदार्थ ताका दाह प्रतिबंध होते भी होवै है. जो शक्तिसे विना केवल अग्निकूं दाहकी हेतुता होवे तो सर्वकाल कहिये उत्तेजकसहित प्रतिबंधकाल और प्रतिबंधरहितकालकी न्याईं उत्तेजकरहित प्रतिबंधकालमें भी दाह हुवा चाहिये. काहेते ? दाहका हेतु केवल अग्नि ताकालमें भी है, और स्वमतमें तो यह दोष नहीं. काहेते ? स्वमतमें अग्निकी शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्नि दाहका हेतु है; केवल अग्नि नहीं. जहां प्रतिबंध है तहां यद्यपि प्रतिबंधसे अग्निका तो नाश वा

तिरोधान नहीं भी होता; तथापि अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान होवै है. याते दाहका हेतु शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्निका अभाव होनेते दाह होवै नहीं और जा स्थानमें प्रतिबंधके समीप उत्तेजक आया है; तहां प्रतिबंधने तौ अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान करि दिया, परंतु उत्तेजकने फेरि शक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव किया है. याते प्रतिबन्धके होते भी उत्तेजकके माहात्म्यतैं दाहकी हेतुशक्ति वा शक्तिसहित अग्निके होनेते दाह होवै है. चतुर्थ पादका अक्षरार्थ यह है:- हे बाल अज्ञाततत्त्व! जो नशै कहिये नाशकूं प्राप्त होवै प्रतिबन्धसे और उपजे उत्तेजकते, सु कहिये सो शक्ति दाहका हेतु है. १-कारजका जो विरोधी सो प्रतिबंधक कहिये है. २-प्रतिबंधकके होते कारजका साधक उत्तेजक कहिये है. १-अग्निके स्थान प्रतिबंध और उत्तेजक मणिमंत्रऔषध हैं; जा मणि वा मंत्र वा औषधके सन्निधानसे दाह होवै नहीं सो प्रतिबंधक और २-जा मणिमंत्र औषधके सन्निधानसे प्रतिबंधक होते भी दाह होवे, सो उत्तेजक है ॥ २२ ॥

गुरुवाक्य-अर्धशंकर-छंद।

शिष रीति यह सब बस्तुमें तू, शक्ति लेहु पिछानि।
बिन शक्ति नहीं कछु काज होवै, यहै निश्चय मानि॥

हे शिष्य! वह्निकी न्याई जल आदिक सर्व पदार्थन-विषे तूं शक्ति पिछान. शक्तिसे बिना किसी हेतुसे कोई कार्य होवै नहीं. अर्धशंकरसे शक्तिका प्रयोजन कह्या.

पूर्व जो शिष्यने प्रश्न किया था– "शक्ति" वह्निसे भिन्न प्रतीत होवै नहीं. ताका समाधान कहनेकूं अर्ध-शंकरसे शक्तिका अनुभव दिखावैं हैं:–

मूल अर्धशंकर–छंद।

अब शक्ति यामैं है नहीं वह, शक्ति उपजी और।
यह शक्तिको परसिद्ध अनुभव, लोपि है किस ठौर॥

अर्थ–स्पष्ट॥ २४

सिद्धांतकी रीतिसे शक्तिका स्वरूप और शक्तिमें प्रमाण निरूपण किया अन्यमतकी शक्तिका खंडन करैं हैं।

अर्धशंकर–छन्द।

जो शक्ति इच्छा ईशकी, सो पदनके न नजीक।
मतन्यायको अन्याय या विधि, शक्तिजानि अलीक२५

जो ईश्वरकी इच्छारूप पदशक्ति कही सो बनै नहीं. काहेते? ईश्वरकी इच्छा ईश्वरका धर्म है, याते ईश्वरमें रहै जो इच्छा सो पदकी शक्ति है, यह कहना बनै नहीं जो पदका धर्म शक्ति होवै तो पदकी शक्ति है यह कहना बनैं याने पदकी सामर्थ्यरूपही पदकी शक्ति है ईसकी इच्छा पदके नजीक भी नहीं सो पदकी शक्ति है, यह कहना बनै नहीं. अलीक नाम झूठका है॥ २५॥

वैयाकरण रीति शक्तिलक्षण।
(पदमें अर्थकी योग्यता)

अर्धशंकर-छंद।

योग्यता जो अर्थकी, पदमांहि शक्ति सु देखि।
यूं कहत वैयाकरण भूषण; कारिका हरि लेखि॥ २६॥

पदके विषे जो अर्थकी योग्यता कहिये अर्थके ज्ञानकी हेतुता हेतुपना सो पदमें शक्ति है जैसे घटपद-विषे कलशरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यता है. सोई शक्ति है. इस रीतिसे वैयाकरणभूषणग्रंथमें हरिकी कारिका प्रमाण लिखिके शक्ति कही है. अथवा वैयाक-रणके जो भूषण कहिये उत्तम वैयाकरण सो हरिकी कारिका कहिये श्लोककूं देखिके कहते हैं॥ २६॥

वैयाकरण रीतिकी शक्तिका खण्डन।

गुरुवाक्य। सार्धशंकर-छन्द।

सुनि शिष्य वैयाकरणमतमें, प्रबलदूषण एक।
सामर्थ्य पदमें है न वा यह, पूछि ताहि विवेक॥ २७॥
भाषे जु है तो शक्ति मानहु, ताहि लोकप्रसिद्ध।
कहिं नाहीं जो असमर्थपद सो, योग्य है यह सिद्ध॥२८॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध।
जो और दूषण देखनो, तौ ग्रंथदर्पण शोध॥ २९॥

प्रथमपाद स्पष्ट है, हे शिष्य! अर्थज्ञानकी हेतुता-रूप योग्यताकूं जो शक्ति मानै है ताकूं यह विवेक पूछि

तेरे मतमें पदविषे सामर्थ्य है अथवा नहीं है ? प्रथमपक्ष कहै तो हमारे मतकी शक्ति बलसे सिद्ध होवै है, यह तृतीयपादसे कहैं है 'भाषे जु है तौ' इति. याका अन्वयः- जु कहिये जो भाषे है,तौ लोकप्रसिद्ध शक्ति ताहि मानहु. अर्थ-जो वैयाकरण कहे, पदमें सामर्थ्य है तौ लोकमें प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप शक्ति है ताहि पदमें भी मानहु- पदमें अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यता शक्ति मति मान.

अभिप्राय यह है:-जो पदमें सामर्थ्य अंगीकार करै ताकूं सामर्थ्यसे भिन्नरूप शक्तिका मानना योग्य नहीं, किंतु सामर्थ्यरूपही शक्ति है.यह मानना योग्य है. काहेते ? सामर्थ्य बल जोर शक्ति,ये च्यारि नाम एक वस्तुके लोकमें प्रसिद्ध हैं, जोरहीनकूं लोक कहैं हैं यह सामर्थ्य- हीन है, बलहीन है, शक्तिहीन है और भर्जित अन्नकूं कहैं हैं. याके विषे अंकुरोत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है; बल नहीं है, शक्ति नहीं है, जोर नहीं है, इस रीतिसे सामर्थ्य और शक्तिकी एकता लोकमें प्रसिद्ध है और वह्निमें भी सामर्थ्यरूपही शक्ति निर्णीत है. याते पदमें सामर्थ्यरू- पही शक्ति माननी योग्य है और पदमें सामर्थ्य मानिके तासे भिन्न योग्यताकूं शक्ति कहनेका लोकप्रसिद्धिके विरोधविना और फल नहीं केवल लोकप्रसिद्धिका विरो- धही फल है और जो ऐसे कहैं,सामर्थ्यकूंही हम योग्यता

कहैं हैं तौ हमाराही मत सिद्ध होवै है, और ऐसे कहैं हम सामर्थ्य अंगीकार करैं तो सामर्थ्यरूप शक्ति पदमें संभवै सो सामर्थ्यकूं अंगीकारही नहीं करते, याते अर्थ ज्ञानकी जनकतारूप योग्यताही पदमें शक्ति है ताकूं यह पूछया चाहिये सामर्थ्यका अभाव केवल पदमेंही अंगीकार करे हैं अथवा वह्निआदिक सर्वपदार्थनमें सामर्थ्यका अभाव अंगीकार करैं हैं? जो अन्त्यपक्ष कहैं तो वह्निआदिक पदार्थनमें सामर्थ्यरूप शक्तिके प्रतिपादनमें उक्त जो युक्ति तिन्हते खंडितहै और प्रथमपक्ष कहैं तो ताके विषे अन्त्यपक्ष उक्त दोष तौ यद्यपि नहीं है. काहेते? जो वह्निआदिक सर्वपदार्थनमें सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं मानैं तौ प्रतिबंधकते दाहका अभाव बनै नहीं. यह अंत्यपक्षमें दोष है सो दोष प्रथमपक्षमें नहीं.काहेते? वह्नि आदिक सर्वपदार्थनमें तौ सामर्थ्यरूप शक्ति है,याते प्रतिबंधकतें दाहके अभावका संभव नहीं. परंतु पदके विषे अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यतासे भिन्न सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं किन्तु पदमें अर्थकी योग्यताही शक्ति है. यह प्रथमपक्ष है. ताके विषे प्रतिबंधकते दाहका असंभवरूप दोष तो नहीं तथापि पदविषे भी वह्निकी न्याईं सामर्थ्यका अंगीगार अवश्य किया चाहिये, यह प्रतिपादन करैं हैं। शंकरके दोपादनतेः—नाहिं जो असमर्थ, इत्यादि सविरोधपर्यंत. अर्थ नाहिं कहिये पदमें

सामर्थ्यका अंगीकार नहीं तो जो असमर्थपद सो योग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है; यह सिद्ध कहिये मतका निश्चय है, सो असंगत है, काहेते ? पद असमर्थ है और अर्थयोग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है, यह वाक्य नपुंसकका अमोघ वीर्य है, इस वाक्यकी न्याईं कहतेही सविरोध है—विरोधसहित है. १—सामर्थ्यसहितका नाम समर्थ है २—सामर्थ्यरहितका नाम असमर्थ है. असमर्थसे कोई कार्य होवै नहीं. यह लोकमें प्रसिद्ध है. याते असमर्थपदसे भी अर्थका ज्ञानरूप कार्य बनै नहीं. याते पदमें सामर्थ्य मानना योग्य है, जब सामर्थ्य पदमें अंगीकार किया तब शक्ति भी पदमें सामर्थ्यरूपही माननी योग्य है. इस रीतिसे अर्थ ज्ञानकी जनकतारूप योग्यतापदमें शक्ति नहीं, किंतु सामर्थ्यरूपही शक्ति है जो वैयाकरणमतमें और दूषण देखना होवै तौ शक्तिके निरूपणमें दर्पणग्रन्थकूं शोध कहिये देख. दूषण क्लिष्ट हैं याते दर्पणउक्त दूषण लिख्या नहीं ॥२७॥२८॥२९॥

भट्टरीति--शक्तिलक्षण।

(पदका अर्थसे भेदाभेदरूप तादात्म्य)

अर्धशंकर—छन्द।

संबंध पदको अर्थसे तादात्म्य शक्ति सु वेद।
इम भट्टके अनुसारि भाषत ताहि भेदाभेद ॥३० ॥

पदका अर्थसे जो तादात्म्यसंबंध, ताकूं भट्टके अनु-

सारी शक्ति कहैं हैं. सो वेद कहिये तू जान. ताहि कहिये तिस तादात्म्यकूं भेदाभेदरूप कहैं हैं. यह तिन्हका अभिप्राय है. १-अग्निपदका अंगार अर्थसे अत्यंतभेद नहीं जो अत्यंतभेद होवै तौ जैसे अग्निपदसे अत्यंतभिन्न जल आदिक हैं; तिन्हकी अग्निपदसे प्रतीति होवै नहीं तैसे अग्निपदसे अंगाररूप अर्थकी प्रतीति नहीं होवेगी. पदसे अत्यंतभिन्न अर्थकी प्रतीति होवै नहीं. २-जैसे पदका अपने अर्थसे अत्यंतभेद नहीं; तैसे अत्यंत अभेद भी नहीं. जो अत्यंत अभेद वाच्यवाचकका होवै तो जैसे अग्निपदके वाच्य अंगारसे मुखका दाह होवै है; तैसे अंगारका वाचक अग्निपदके उच्चारण कियेते भी मुखका दाह हुवा चाहिये. और पदके उच्चारणते दाह होवै नहीं; याते अत्यंत अभेद भी नहीं; किंतु अग्निपदका अंगाररूप अर्थसे भेदसहित अभेद है. १-भेद है याते दाह होवै नहीं. २-अभेद है याते अग्निपदते जलआदि-कनकी न्याईं अंगारकी प्रतीतिका असंभव भी नहीं. जैसे अग्निपदका अंगाररूप अर्थसे भेदसहित अभेद है; तैसे उदक, वन, जल, दक, जीवन पदनका पानीरूप अर्थसे भेदसहित अभेद है. १-जो अत्यंत भेद होवै तौ जैसे उदकआदिक पदनते अत्यंतभिन्न अग्निआदिक हैं तिन्हकी उदकआदिक पदनते प्रतीति होवै नहीं तैसे पानीरूप अर्थकी भी उदकआदिक पदनते प्रतीति नहीं

होवैगी; याते १-अत्यंत भेद नहीं, और २-अत्यंत अभेद भी नहीं जो अत्यंत अभेद होवै तो जैसे पानीते मुखमें शीतलता होवै है तैसे उदक आदिकपदनके उच्चारणते भी मुखमें शीतलता हुई चाहिये और पदनते शीतलता होवै नहीं, याते अत्यंत अभेद नहीं किंतु भेदसहित अभेद होनेते दोऊ दोष नहीं. इस रीतिसे सर्वही अपने अपने वाच्यते वाचकपदनका भेदसहित अभेद है. ता भेदसहित अभेदकूं ही भट्टके अनुसारी तादात्म्यसंबंध कहैं हैं और भेदाभेद कहैं हैं. सो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधही सर्वपदनमें अपने अपने अर्थकी शक्ति है. तादात्म्यसंबंधसे जुदी सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं. भेदाभेदमें युक्ति कही. अब प्रमाण कहैं हैं ॥ ३० ॥

अर्द्धशंकर—छंद।

यह ओं अक्षरब्रह्म है यों, कहत वेद अभेद।
पुनि बानिमैं पद अर्थ बाहिर ,देखियत यह भेद ३१

मांडूक्य आदिक वेदवाक्यनमें "ॐ अक्षरब्रह्म है" यह कह्या है. तहां व्याकरणकी रीतिसे प्रकाशरूप सर्वकी रक्षा करता ॐ अक्षरका अर्थ है, ऐसा ब्रह्म है. याते ॐ अक्षर ब्रह्मका वाचक है, और ब्रह्म वाच्य है.

१-जो वाच्यवाचकका आपसमें अत्यंत भेद होवै, तो वाचक ॐ अक्षरका और वाच्य ब्रह्मका मांडूक्य आदिकनमें अभेद नहीं. काहेते? और "ॐ अक्षर ब्रह्म

है" इस रीतिसे अभेद कह्या है. याते वाच्यवाचकके अभेदमें वेदवचन प्रमाण है. २-सर्वलोककी प्रतीतिसे वाच्यवाचकका भेद सिद्ध है. काहेते? अग्निआदिक पद वानीमें हैं. और अंगार आदिक तिनका अर्थ बानीते बाहर चुल्हिआदिकनमें है, तैसे ॐअक्षररूप पद बानीमें है, और ताका अर्थ ब्रह्म बानीमें नहीं है, किंतु बानीते बाहरि कहिये अपने महिमामें हैं. यद्यपि ब्रह्म व्यापक है, याते बानीमें ब्रह्मका अभाव नहीं. तथापि ब्रह्ममें बानी है और बानीमें ब्रह्म नहीं, इस रीतिसे सर्वलोकनकूं पद बानीमें और अर्थ बानीते बाहिर प्रतीत होवै है. याते पदका और अर्थका भेद लोकमें प्रसिद्ध है.१ इस रीतिसे वाच्यवाचकके भेदमें सर्व लोकका अनुभव प्रमाण है और तिनके अभेदमें वेदवचन प्रमाणहै. याते पदका अर्थसे भेदाभेदरूपतादात्म्यसंबंध अप्रमाण नहीं, किंतु प्रमाणसिद्ध है ॥ ३२ ॥

प्रसंगते अन्यस्थानमें भी भेदाभेदतादात्म्यसंबंध दिखावैं हैं-

अर्धशंकर-छन्द।

जो गुण गुणी और जाति व्यक्ति, क्रिया अरु तद्वान ।
संबंध लखि तादात्म्य इनको, कार्यकारण सान ॥ ३१ ॥

१-रूप रस गंध आदिक गुण हैं, तिन्हका आश्रय गुणी कहिये है. जैसे रूप आदिकनका आश्रय भूमि गुणी है. २-अनेकनके मांहि रहै जो एकधर्म सो जाति

कहिये है. जैसे सर्वब्राह्मणशरीरनके मांहिं एक ब्राह्मणत्व है और सर्व शूद्रमांहि शूद्रत्व है और सर्वजीवनमांहि जीवत्व है. पुरुषनमें पुरुषत्व है, सर्व घटनमांहिं घटत्व है. जाकूं लोकमांहि ब्राह्मणपना, शूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहते हैं, सोई ब्राह्मणआदिकशरीरन-मांहि, ब्राह्मणत्व आदिक जाति हैं, जातिका आश्रय जो ब्राह्मणादिक, सो व्यक्ति कहिये हैं. ३-गमन आग-मन आदिक क्रिया कहिये हैं और तद्वान कहिये तिसवाला अर्थ यह क्रियाका आश्रय. इतने पदार्थ-नका तादात्म्यसंबंध है, यह लखि कहिये जानि. और कारणकार्यकूं सान कहिये गुणगुणी आदिक विषे मिलाव. अभिप्राय यह है:-१-कारणकार्यका भी गुण गुणीकीन्याईं तादात्म्यसंबंध है.२-गुणका और गुणीका आपसमें तादात्म्यसंबंध है.३-जातिका और व्यक्तिका आपसमें तादात्म्यसंबंध है. ४-तैसे क्रिया और क्रिया-वान्का तादात्म्यसंबंध है. कारणका और कार्यकाभी तादात्म्यसंबंध है.तादात्म्य नाम भेदसहित अभेदका है.

यद्यपि निमित्तकारणका और कार्यका तौ भेदाभेद-रूप तादात्म्य नहीं है; किंतु अत्यंत भेद है. तथापि उपादानकारणका और कार्यका भेदाभेदरूप तादा-त्म्यही संबंध है. जैसे घटके निमित्तकारण कुलाल दंड आदिक है तिनका घटरूप कार्यसे अत्यन्त भेद भी है

परंतु उपादानकारण मृत्तिकापिंड और घटकार्यका भेद सहित अभेद है. १-जो मृत्तिकापिंडसे घट अत्यंत भिन्न होवै तो जैसे मृत्तिकापिंडसे अत्यंत भिन्न तैलकी उत्पत्ति होवै नहीं तैसे घटकी भी उत्पत्ति नहीं होवेगी. २-उपादानकारणका कार्यते अत्यंत अभेद होवे तौ भी मृत्पिंडसे घटकी उत्पत्ति होवै नहीं. काहेते? अपने स्वरूपसे अपनी उत्पत्ति होवे नहीं. १-याते उपादान कारणका कार्यते भेदसहित अभेद है. याते अभेद है अत्यन्त भेदपक्षका दोष नहीं. २-भेद है याते अभेद पक्षका दोष नहीं, इस रीतिसे उपादानकारणका कार्यते भेदाभेद युक्तिसिद्ध है. १-प्रतीतिसे भी उपादानते कार्यका भेदाभेदही सिद्ध है यह मृत्पिंड है, यह घट है. इसरीतिकी भिन्न प्रतीतिसे भेद सिद्ध होवै है.२-विचारते देखैं तो घटके बाहरि भीतर मृत्तिकासे भिन्न कुछ वस्तु प्रतीत होवे नहीं किंतु मृत्तिका ही प्रतीत होवै है. याते अभेद सिद्ध होवे है. इस रीतिसे उपादानकारणका कार्यते भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है. तैसे गुण और गुणीका भी भेदाभेद है. १-जो घटके रूपका घटसे अत्यन्त भेद होवै तो जैसे घटते पटका अत्यंत भेद है, सो पट घटके आश्रित नहीं किंतु स्वतंत्र है तैसे घटका रूप भी घटके आश्रित नहीं होवेगा. २-गुणगुणीका अत्यंत अभेद होवे तोभी घटका रूप घटके आश्रित

बनै नहीं. काहेते? अपना आश्रय आप होवै नहीं याते गुणगुणीका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है, यह युक्ति जाति और व्यक्ति तथा क्रिया और क्रियावालेके भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधमें जाननी और खण्डन करना जो मत ताके विषे बहुत युक्ति कहनेका प्रयोजन नहीं याते और युक्ति नहीं लिखी ॥ ३२ ॥

भट्टमतखण्डन-दोहा।

एक वस्तुको एकमें, भेद अभेद विरुद्ध।
युक्तियुक्त यातैं कहत, यह मत सकल अशुद्ध॥३३॥

अक्षरार्थ स्पष्ट है और अभिप्राय यह है:—यद्यपि एक घटमें अपना अभेद है और परका भेद है तथापि १—जाका अभेद है ताका भेद नहीं और जाका भेद है ताका अभेद नहीं, इस अभिप्रायते एक वस्तुका भेद अभेद विरुद्ध कह्या है. २—तथा एक वस्तुका कहिये घटकाही अपनेमें अभेद और परमें भेद है परंतु जामें अभेद है तामें भेद नहीं और जामें भेद है तामें अभेद नहीं इस अभिप्रायते एक वस्तुका भेद अभेद एकमें विरुद्ध कह्या है. भेद अभेद आपसमें विरोधी हैं. एक वस्तुमें जाका भेद होवे ताका अभेद और जाका अभेद होवे ताका भेद विरुद्ध है. याते वाच्यवाचक, गुणगुणी, जातिव्यक्ति, क्रियाक्रियावान्, उपादानकारण कार्यका जो भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार किया सो अशुद्ध है. पूर्ववाच्य-

वाचकके भेदाभेदमें प्रमाण जो कह्याः–"१–बानीमें वाचक और बाहर वाच्य याते भेद और २–श्रुतिमें ॐ अक्षर ब्रह्म कह्या है याते अभेद ॥ ३३ ॥"

ताका समाधान दोहा।

प्रणव वर्ण अरु ब्रह्मको, कह्यो जु वेद अभेद।
तामें अन्य रहस्य कछु,लख्यो न भट्ट सुभेद ॥३४॥

प्रणववर्णकहियेॐअक्षर अरु ब्रह्मका जो वेदमें अभेद कह्या है ता वेदवचनका वाच्य वाचकके अभेदमें तात्पर्य नहीं.किन्तु तामें अन्यही रहस्य कहिये गोप्य अभिप्राय है सो भेद कहिये अभिप्राय भट्टने लख्या नहीं.जहां ॐ अक्षर ब्रह्म कह्या है तिस वाक्यका ॐ अक्षर और ब्रह्मके अभेदमें तात्पर्य नहीं है, किन्तु "ॐ" अक्षरकूं ब्रह्मरूप करिके उपासना करै. इस अर्थमें तात्पर्य है. उपासना जाकी विधान करी है ता उपास्यके स्वरूपका यह नियम नहीं हैः–जैसी उपासना विधान करी है. तैसाही उपास्यका स्वरूप होवे है किंतु जैसा वस्तुका स्वरूपहै ताकूं त्यागिके अन्य स्वरूप की भी ताके विषे उपासना करिये है. १–जैसे शालग्राम और नर्मदेश्वरकी विष्णुरूप और शिवरूप करिके उपासना कही है तहां शंख चक्र आदिकं सहित चतुर्भुजमूर्ति शालग्रामकी नहीं है, और गंगभूषित जटाजूट डमरू चर्मकपालिकासहित भद्रामुद्रासे

शरणागतनकूं त्रिगुणरहित आत्माका उपदेश देनेवाली मूर्ति नर्मदेश्वरकी नहीं है, किंतु दोनों शिलारूप हैं और शास्त्रकी आज्ञासे तिन शिलारूपकी दृष्टि त्यागिके दोनों विषे क्रमते विष्णुरूप और शिवरूपकी उपासना करिये है. याते उपास्यके स्वरूपके अधीन उपासना नहीं होवै है. किंतु विधिके अधीन है. जैसे शास्त्रका वचन विधान करै. तैसी उपासना करै. २–जैसे छांदोग्य उपनिषद्में पंचाग्निविद्याप्रकरणमें स्वर्गलोक,मेघ, भूमि, पुरुष, स्त्री इन पांचपदार्थनकी अग्निरूपकरिके उपासना कही है और श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न, वीर्य इन पांच पदार्थनकी पंच अग्निकी आहुतिरूप उपासना कही हैं तहां स्वर्ग आदिक अग्नि नहीं हैं और श्रद्धा सोम आदिक आहुति नहीं हैं तथापि वेदकी आज्ञाते स्वर्गलोकादिकनकी अग्निरूपते और श्रद्धा आदिकनकी आहुतिरूपते उपासना करिये है. इस रीतिसे ॐ अक्षरकी ब्रह्मरूपकरिके उपासना कही है. तहां ॐ अक्षर ब्रह्मरूप नहीं है. तौ भी ब्रह्मरूपकरिके उपासना बनै है.

उपासनावाक्यमें वस्तुके अभेदकी अपेक्षा नहीं किन्तु भिन्न वस्तुकी भी अभिन्नरूपते उपासना होवै है. और विचारते देखिये तो ब्रह्मका वाचक जो ॐ अक्षर है ताका तो अपने वाच्यब्रह्मते अभेद बनै भी है घटादिक अन्यपदनका अपने जडरूप अर्थसे अभेद बनै नहीं

काहेते? सर्व नामस्वरूप ब्रह्ममें कल्पित है ब्रह्म अधिष्ठान है. ॐ अक्षर भी ब्रह्मका नाम है, याते ब्रह्ममें कल्पित है; कल्पितवस्तु अधिष्ठानसे भिन्न होवै नहीं; किंतु अधिष्ठानरूपही होवे है, याते ॐ अक्षर ब्रह्मरूप है. और घटआदिक पदनका जो जड़रूप अपना अर्थ सो अधिष्ठान नहीं. किन्तु वाच्यसहित घटआदिक पद ब्रह्ममें कल्पित हैं और ब्रह्म तिनका अधिष्ठान है. याते ब्रह्मसे तो सर्वका अभेद बनै भी है, परंतु घटआदिक पदनका अपने जडरूप वाच्य अर्थसे अभेद किसी रीतिसे बनै नहीं. याते भट्टमतमें वाच्य वाचकका अभेद असंगत है.

केवल भेद जो वाच्यवाचकका अंगीकार करैं हैं तिन्हके मतमें यह दोष भट्टने कह्या है:—जो घटपदका वाच्य घटपदसे अत्यन्त भिन्न होवै तौ जैसे घटपदसे अत्यन्त भिन्न वस्त्ररूप अर्थकी प्रतीति होवै नहीं; तैसे घटपदसे अत्यन्त भिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति भी नहीं होवैगी और घटपदसे वाच्यकूं भिन्न मानिके ताकी घटपदसे प्रतीति मानोगे तो जैसे घटपदते अत्यन्त भिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति होवै है तैसे अत्यन्त भिन्न वस्त्रकी भी घटपदसे प्रतीति हुई चाहिये; यह दोष भी जो सामर्थ्य अथवा इच्छारूप शक्ति नहीं मानें तिन्हके मतमें है. जो शक्ति अंगीकार करें तिनके मतमें दोष नहीं, काहेते ? जो घटपदका वाच्य कलश

और ताका अवाच्य वस्त्रादिक सो दोनों घटपदसे भिन्न हैं. परंतु घटपदमें कलशरूप अर्थके ज्ञानकरनेकी शक्ति है और अन्य अर्थके ज्ञान करनेकी शक्ति नहीं याते घटपदते कलशरूप अर्थते भिन्न अर्थकी प्रतीति होवै नहीं. इस रीतिसे जा पदमें जिस अर्थकी शक्ति है ताही अर्थकी तिस पदसे प्रतीति होवै है अन्य अर्थकी नहीं. याते वाच्यवाचकके अत्यंत भेदमें दोष नहीं. तिनका भेद सहित अभेदरूप तादात्म्यसंबंध बनै नहीं. भेद और अभेद आपसमें विरोधी हैं. तैसे उपादानकारणका कार्यते भेदसहित अभेद नहीं केवलभेद है और केवल भेदमें जो दोष कह्या है सो नैयायिक और शक्तिवादीके मतमें नहीं. काहेते? कारण कार्यके अत्यंतभेदमें यह दोष हैः—जो मृत्पिंडसे अत्यंत भिन्न घटकी उत्पत्ति होवै, तो अत्यंतभिन्न तैलकी भी मृत्पिण्डसे उत्पत्ति हुई चाहिये और अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवेगी तो अत्यंतभिन्न घटकी मृत्पिंडसे उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये.

यह दोष नैयायिकमतमें नहीं. काहेते? सर्ववस्तुकी उत्पत्तिमें नैयायिक प्रागभावकूं कारण मानैं हैं जैसे घटकी उत्पत्तिमें दंड, चक्र, कुलाल कारण हैं तैसे घटका प्रागभावभी घटका कारण है. तैसे सर्वका प्रागभाव सर्वकी उत्पत्तिमें कारण है- १—सो घटका प्रागभाव घटके उपादानकारण मृत्पिंडमें रहै है. अन्यमें नहीं. २—तैलका

प्रागभाव तिलनमें रहै है; अन्यमें नहीं. ऐसे सर्व कार्यनका प्रागभाव अपने अपने उपादानकारणमें रहै है जिस पदार्थमें जाका प्रागभाव होवै तिस पदार्थसे ताकी उत्पत्ति होवै है. अन्यकी नहीं. १-जैसे मृत्तिंपडमें घटका प्रागभाव है; याते मृत्तिंपडसे घटकी ही उत्पत्ति होवै है; तैलकी नहीं. २-तैलका प्रागभाव तिलनमें रहै है, याते तिलनते तैलकी ही उत्पत्ति होवे है घटकी नहीं; ऐसे सर्वकार्यमें प्रागभाव कारण है याते कारण कार्यका अत्यंत भेद माननेते नैयायिकमतमें दोष नहीं.

सामर्थ्यरूप शक्तिवादीके मतमें दोष नहीं. काहेते? मृत्तिंपडमें घटकी सामर्थ्यरूप शक्ति है; तैलकी नहीं और तिलनमें तैलकी सामर्थ्य है घटकी नहीं, याते मृत्तिंपडते घटकी उत्पत्ति होवै है और तैलकी नहीं. तैसे तिलनते तैलकी ही उत्पत्ति होवै है घटकी नहीं. इस रीतिसे उपादानकारणका और कार्यका अत्यंत भेद माननेमें दोष नहीं. भेदाभेद असंगत है और भेदमें तथा अभेदमें जो दोष भट्टने कहे हैं सो दोनों पक्षके दोष भट्टके मतमें अवश्य रहैं हैं. काहेते? भट्टने भेदसहित अभेद अंगीकार किया है याते यह अर्थ सिद्ध हुआः-कारणकार्यका भेद भी है और अभेद भी है. १-भेद है. याते भेदपक्ष उक्त दोष होवेंगे. २-अभेद है याते अभेदपक्ष उक्त दोष होवेंगे. जैसे चोरीका दोष और द्यूतका दोष जो एकएक

करनेवालेकूं कहैं हैं सो दोऊ व्यसन जाके होवें ताके चोरी द्यूत दोनों दोष होवैं हैं तैसे गुणगुणी आदिकनके भेदाभेद माननेते भी भेदपक्षके और अभेदपक्षके दोनों दोष होवेंगे और शक्तिवादीके मतमें केवल भेद अंगीकार कियेते दोष नहीं. काहेते ? गुणीमें गुणके धारनेकी शक्ति है अन्यकी नहीं. याते भेदपक्षमें जो दोष कह्या थाः—घटके रूपादिक जैसे घटसे भिन्न हैं; तैसे पटआदिक भी घटसे भिन्न हैं रूपादिकनकी न्याईं पटआदिक भी घटमें रहे चाहिये. अथवा पटआदिकनकी न्याईं रूपादिक भी नहीं रहे चाहिये सो दोष शक्ति नहीं अंगीकार करे ताके मतमें है शक्तिवादीके मतमें केवल भेद मानेते भी दोष नहीं. उलटा. १—भट्टमतमें भेद अभेद दोनों माननेते दोनोंपक्षके दोष उक्तदृष्टांतसे हैं. २—भेद अभेद विरोधी धर्मका असंभव दोष है. तैसे जातिव्यक्तिका और क्रिया क्रियावान्‌का भी केवल भेद है तथापि व्यक्तिमें जातिके धारनेकी शक्ति है. और क्रियावान्‌में क्रियाधारनेकी शक्ति है अन्यधारनेकी शक्ति नहीं. इस रीतिसे उपादान और कार्यका तथा गुणगुणी आदिकनका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबध असंगत है. सर्वका आपसमें भेद माननेमें भट्ट उक्तदोषनकूं शक्ति ग्रसे है. यद्यपि वेदांतसिद्धांतमें भी कार्य गुण जाति क्रियाका उपादान गुणी व्यक्ति क्रियावान्‌ते अत्यन्त भेद नहीं,

किन्तु तादात्म्यसबंध ही अंगीकार किया है. तथापि वेदांतमतमें भेदाभेदरूपतादात्म्य नहीं, किंतु भेद और अभेदसे विलक्षण अनिर्वचनीयरूप तादात्म्यसंबन्ध है. १-भेदसे विलक्षण है.याते अभेदपक्षके दोष नहीं.२-अभेदसे विलक्षण है याते भेदपक्षके दोष नहीं. इस रीतिसे भेदाभेदसे विलक्षण अनिर्वचनीय तादात्म्यसंबंध है परंतु भेदाभेदरूपतादात्म्य असंगत है याते "वाचकवाच्यका भेदरूपतादात्म्यसंबन्धी शक्ति है" यह भट्टअनुसारीका पक्ष समीचीन नहीं. किन्तु पदके सुनते ही अर्थके ज्ञान करनेकी जो पदमें सामर्थ्य सोई पदमें शक्ति है. इति शक्तिनिरूपण ॥ ३४ ॥

लक्षणाके ज्ञानमें शक्यका ज्ञान उपयोगी है.काहेते? शक्यसबन्ध लक्षणाका स्वरूप है. शक्य जाने विना शक्यसंबंधरूप लक्षणाका ज्ञान होवै नहीं याते शक्यका लक्षण कहै हैं–

दोहा ।

है पदमें जा अर्थकी, शक्ति शक्य सो जानि ।
वाच्य अर्थ पुनि कहत तिहिं, वाचक पदहि पिछानि ॥

जा पदमें जा अर्थकी शक्ति होइ ता पदका सो अर्थ शक्य जानि और शक्यअर्थकूंही वाच्य अर्थभी कहैं हैं जैसे अग्निपदमें अंगाररूप अर्थकी शक्ति है, याते अग्निपदका अंगार शक्यअर्थ और वाच्य अर्थ कहिये है

और वाच्य अर्थका बोधकपद वाचक कहिये है ॥३५॥

लक्ष्य अर्थ और लक्षणाका सामान्यरूप।

लक्षणा और जहता आदिकभेदलक्षण।

कवित्त–शक्यको संबंध जो स्वरूप जानि लक्षणको,
लक्षणा सो भान जाको लक्ष्य सु पिछानिये।
वाच्यअर्थ सारो त्यागि वाच्यको संबंध जहां,
होई परतीति तहां जहती बखानिये॥
वाच्ययुत वाच्यके संबंधीका जु ज्ञानि होय,
ताहि ठौर लक्षणा अजहतिहि मानिये।
कःवाच्य भागत्याग होत तहां भागत्याग,
दूजो नाम जहती अजहती प्रमानिये॥ ३६॥

शक्य कहिये वाच्य अर्थका जो संबंध कहिये मिलाप सो लक्षणाका स्वरूप कहिये लक्षण जानि और जा अर्थका पदकी शक्तिसे ज्ञान न होवे किंतु लक्षणाते भान कहिये ज्ञान होवे सो पदका लक्ष्य अर्थ कहिये है एक पादसे लक्षणाका स्वरूप कह्या.

जहति, अजहति और भागत्यागलक्षणाका लक्षण।

लक्षणाके जहति आदिक तीनहूं भेदनके लक्षण एक एकपादमें कहे हैं–"वाच्य" इत्यादिसे. १–जहां वाच्य अर्थ संपूर्ण त्यागके वाच्य अर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै तहां जहतिलक्षणा कहिये है. जैसे किसीने कह्या "गंगामें ग्राम है" या स्थानमें गंगापदकी तीरमें जहति

लक्षणा है काहेते ? गंगापदका वाच्य अर्थ देवनदीका प्रवाह है ताके विषे ग्रामकी स्थितिका असंभव है. याते सारे वाच्य अर्थकूं त्यागिके तीरविषे गंगापदकी जहति लक्षणा है. वाच्यके संबंधका नाम लक्षणा है. या स्थानमें गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताका तीरसे संयोगसंबंध है याते गंगापदके वाच्यका जो तीरसे संबंध सो लक्षणा और सम्पूर्ण वाच्यका त्याग यातें जहतिलक्षणा. २-"वाच्ययुत" इत्यादि, तृतीयपादसे अजहतिलक्षणा दिखावै हैं-वाच्ययुत कहिये वाच्य अर्थसहित वाच्यके संबंधीका जा पदसे ज्ञान होय ता पदमें अजहतिलक्षणा मानिये. जैसे किसीने कह्या-"सोन धावन करै है" तहां सोन-पदकी लालरंगवाले अश्वविषे अजहतिलक्षणा. काहेते ? सोन नाम लालरंगका है याते सोनपदका लालरंग वाच्य है. ता केवलमें धावनका असंभव है, इस कारणते सोन पदका वाच्य जो लालरंग ता सहित अश्वमें सोनपदकी अजहतिलक्षणा है. गुणका और गुणीका तादात्म्य-संबंध कहै हैं और लाल भी रूपका भेद होनेते गुण है याते सोनपदका वाच्य जो लालगुण ताका गुणी अश्वके साथ जो तादात्म्यसंबंध सो लक्षणा और वाच्यका त्याग नहीं अधिकका ग्रहण याते अजहतिलक्षणा. "एक वाच्य" इत्यादि चतुर्थपादसे भागत्यागलक्षणा बतावै हैं

१ भाषामें शोणाकूं सोन पढै हैं।

जहां पदनके वाच्य अर्थ मध्य एक भागका त्याग होवै एक भागका ग्रहण होवै तहां भागत्यागलक्षणा कहिये है. ता भागत्यागकूं ही जहति-अजहति लक्षणा भी कहेहैं. जैसे—प्रथम देखे पदार्थनकूं अन्यदेशमें देखिके किसीने कह्या "सो यह है" तहां भागत्यागलक्षणा है. काहेते ? अतीतकालमें और अन्यदेशमें स्थित वस्तुकूं "सो" कहै है. याते अतीतकालसहित और अन्यदेश सहित वस्तु सो पदका वाच्यअर्थ है. और वर्तमानकाल समीपदेशमें स्थित वस्तुकूं "यह" कहै है याते वर्तमान काल सहित और समीपदेश सहित वस्तु यह पदका वाच्यअर्थ है और अतीतकालसहित अन्यदेशसहित जो वस्तु सोई वर्तमानकाल और समीपदेशसहित है यह समुदायका वाच्यअर्थ है. सो संभवै नहीं. काहेते ? अतीत काल और वर्तमान कालका विरोध है, तथा अन्यदेशका और समीपदेशका विरोध है. याते दोनों पदनमें देशकाल जो वाच्यभाग ताकूं त्यागिके वस्तुमात्रमें दोनों पदकी भागत्यागलक्षणा है ॥ ३६ ॥

महावाक्यनमें लक्षणा ।

"तत्त्वमसि" महावाक्यमें लक्षणा दिखावनेकूं तत्पद और त्वंपदका वाच्यअर्थ दिखावै हैः—

दोहा ।

सर्वशक्ति सर्वज्ञ विभु, इश स्वतंत्र परोक्ष।
मायी तत्पद वाच्य सो, जामें बंध न मोक्ष ॥ ३७ ॥

१-सर्वशक्ति कहिये जामें सर्व सामर्थ्य. २-सर्वज्ञ कहिये सर्ववस्तुका जाननेवाला. ३-विभु कहिये व्यापक. ४-ईश कहिये सर्वका प्रेरक. ५-स्वतंत्र कहिये कर्मके अधीन नहीं. ६-परोक्ष कहिये जीवके प्रत्यक्षका विषय नहीं. ७-मायी कहिये माया जाके अधीन. ८-बन्धमोक्षरहित.जामें बंध होवै ताका मोक्ष होवै है.ईश्वर बन्धरहित है याते ईश्वरमें मोक्ष भी नहीं. इतने धर्मवाला ईश्वर चेतन तत्पदका वाच्य अर्थ है॥ ३७ ॥

त्वंपदवाच्यनिरूपण-दोहा।

कहे धर्म जो ईशके, सब तिनतैं विपरीत।
है जिहिं चेतन जीव तिहिं,त्वंपद वाच्य प्रतीत॥३८॥

जो ईशके धर्म कहे तिनते विपरीतधर्म जामें होवें सो जीवचेतन त्वंपदका वाच्य. प्रतीत कहिये जान.:याका भाव यह है:-१-अल्पशक्ति, २-अल्पज्ञ, ३-परिच्छिन्न, ४-अनीश, ५-कर्मके अधीन, ६-अविद्यामोहित. ७-बन्धमोक्षवाला, ८-प्रत्यक्ष. काहेते? अपना स्वरूप किसीकूं परोक्ष नहीं प्रत्यक्ष ही होवै है. यद्यपि ईश्वरकूं भी अपना स्वरूप प्रत्यक्ष है तथापि ईश्वरका स्वरूप जीवकूं प्रत्यक्ष नहीं याते परोक्ष कहिये है और जीवके स्वरूपकूं जीव ईश्वर दोनों जानै हैं. याते प्रत्यक्ष

कहिये हैं इतने धर्मवाला जीव चेतन त्वंपदका वाच्य कहिये है ॥ ३८ ॥

वाच्यअर्थमें एकताका विरोध व लक्षणाकी कर्तव्यता-

दोहा।

महावाक्यमें एकता, है दोनोंकी भान।
सो न बनै याते सुमति, लक्ष्यलक्षणहि जान॥३९॥

सामवेदके छांदोग्यउपनिषद्में उद्दालकमुनिने अपने पुत्र श्वेतकेतुकूं जगत्‌की उत्पत्ति करनेवाला ईश्वर बतायके कह्याः-

"तत्त्वमसि"ताका यह वाच्यअर्थ हैः--१-तत् कहिये सो जगत्‌की उत्पत्ति करनेवाला; सर्वशक्ति सर्वज्ञता-आदिकधर्मसहित ईश्वर, २-त्वं कहिये तू अल्पशक्ति अल्पज्ञता आदिक धर्मवाला जीव. ३- असि कहिये है. इहां"सो तू है"इस कहनेते; ईश्वर जीवकी एकता वाच्य-अर्थसे भान होवै है सो बनै नहीं. काहेते ? १-सर्वशक्ति और अल्पशक्ति, २-सर्वज्ञ और अल्पज्ञ; ३-विभु और परिच्छिन्न. ४-स्वतंत्र और कर्म अधीन, ५-परोक्ष और प्रत्यक्ष, ६-माया जाके अधीन. और अविद्यामोहित एक है, यह कहना "अग्नि शीतल है" इस कहनेके समान है. याते हे सुमति ! लक्षणही कहिये लक्षणाते लक्ष्य अर्थ जान. वाच्य अर्थमें विरोध है ॥ ३९ ॥

दोहा।

आदि दोय नहिं संभवै, महावाक्यमें तात।
भागत्याग यातैं लखहु, ह्वै जातैं कुशलात ॥४०॥

हे तात! महावाक्यमें आदि दोय कहिये जहति अजहति नहीं संभवै, याते भागत्यागलक्षणा महावाक्यमें लखहु कहिये जानों, जाते कुशलात कहिये विरोधका परिहार होवै ॥ ४० ॥

जहति असंभवप्रतिपादन-दोहा।

ज्ञेय जु साक्षी ब्रह्मचित, वाच्यमांहि सो लीन।
मानहु जहतीलक्षणा, ह्वै कछु ज्ञेय नवीन ॥ ४१ ॥

संपूर्ण वेदांतका ज्ञेय, साक्षी चेतन और ब्रह्मचित कहिये ब्रह्मचेतन है सो साक्षीचेतन और ब्रह्मचेतन त्वंपद और तत्पदके वाच्यमें लीन कहिये प्रविष्ट है, और जहतिलक्षणा जहां होवै तहां वाच्यसंपूर्णका त्याग करिके, वाच्यका संबंधी अन्य ज्ञेय होवै. याते महावाक्यमें जहतिलक्षणा मानैं तो वाच्यमें आया जो चेतन तासे नवीन कहिये अन्य कछु ज्ञेय होवेगा. चेतनसे भिन्न असत् जड दुःखरूप है ताके जाननेते पुरुषार्थ सिद्ध होवै नहीं, याते महावाक्यमें जहतिलक्षणा नहीं ॥ ४१ ॥

अजहतिलक्षणाअसंभवप्रतिपादन-दोहा।

वाच्यहु सारो रहत है, जहां अजहती मीत।
वाच्यअंर्थ सविरोध यों, तजहु अजहती रीत ॥ ४२ ॥

हे मीत प्रिय ! जहां अजहतिलक्षणा होवै तहां वाच्य अर्थ सारे रहै है और वाच्यसे अधिकका ग्रहण होवे है महावाक्यनमें अजहतिलक्षणा अंगीकार करे तो वाच्य-अर्थ सारा रहेगा और वाच्यअर्थ महावाक्यनमें सविरोध कहिये विरोधसहित है. विरोध दूरि करनेकूं लक्षणा अंगीकार करी है,अजहती मानैं तो महावाक्यनमें विरोध दूरि होवै नहीं याते अजहतीकी रीति महावाक्यनमें तजहु४२

भागत्यागलक्षणाप्रकार–दोहा ।

त्यागि विरोधी धर्म सब, चेतन शुद्ध असंग ।
लखहु लक्षणातैं सुमति,भागत्याग यह अंग ॥४३॥

हे अंग हे प्रिय ! तत्पदका वाच्य ईश्वर और त्वंपदका वाच्य जीव तिन्हके आपसमें विरोधीधर्म त्यागिके शुद्ध असंग चेतन लक्षणाते लखहु. यह भागत्यागलक्षणा है. या स्थानमें यह सिद्धांत है:–ईश्वर जीवका स्वरूप अनेकप्रकारका अद्वैतग्रंथनमें कह्या है. १–विवरणग्रंथमें अज्ञानमें प्रतिबिंब जीव और बिंब ईश्वर कह्या है २–विद्यारण्यके मतमें शुद्धसत्त्वगुणसहित मायामें आभास ईश्वर और मलिन सत्त्वगुणसहित जो अंतः-करणका उपादानकारण अविद्याका अंश तामें आभास-जीव कह्या है ॥ ४३ ॥

जीव ईश्वरके स्वरूपमें पञ्चदशीकार तथा विवरणकारादिकका मत
(आभासप्रतिबिंब व अवच्छेदवाद)

यद्यपि पंचदशीग्रंथमें विद्यारण्यस्वामीने अंतःकरणमें

आभास जीव कह्या है, तथापि अंतःकरणके आभासकूं जीव मानैं तो सुषुप्तिमें अंतःकरण रहै नहीं, याते जीवका भी अभाव होना चाहिये और प्राज्ञरूप जीव सुषुप्तिमें रहै है, याते विद्यारण्यस्वामीका यह अभिप्राय हैः-अंतःकरणरूप परिणामकूं प्राप्त जो होवै अविद्याका अंश तामें आभास जीव है. सो अविद्याका अंश सुषुप्तिमें भी रहै है, याते प्राज्ञका अभाव नहीं और केवल आभास ही जीव ईश्वर नहीं है. किंतु १-मायाका अधिष्ठान चेतन और मायासहित आभास ईश्वर है. २-अविद्याअंशका अधिष्ठानचेतन और अविद्याके अंशसहित आभासजीव है. १-ईश्वरकी उपाधिमें शुद्धसत्त्वगुण है याते ईश्वरमें सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म हैं. जीवकी उपाधिमें मलिनसत्त्वगुण है याते जीवमें अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म हैं; याकूं आभासवाद कहै हैं.

विवरणके मतमें यद्यपि जीव ईश्वर दोनोंकी उपाधि एकही अज्ञान है; यातें दोनों अल्पज्ञ हुये चाहिये तथापि जा उपाधिमें प्रतिबिंब होवै ताका यह स्वभाव होवै है-प्रतिबिंबमें अपने दोष करै है, बिंबमें नहीं. जैसे दर्पणरूप उपाधिमें मुखका प्रतिबिंब होवै है ग्रीवामें स्थित मुख बिंब है, तहां दर्पणरूप उपाधिके श्याम पीत लघुतादिक अनेक दोष प्रतिबिंबमें भान होवै हैं और

ग्रीवामें स्थित जो बिंब है तामें भान होवै नहीं तैसे दर्पणस्थानी जो अज्ञान,तिसविषे प्रतिबिंबरूप जीवमें अज्ञानकृत अल्पज्ञतादिक दोष हैं और बिंबरूप ईश्वरमें नहीं. याते. १-ईश्वरमें सर्वज्ञतादिक हैं. २-जीवमें अल्पज्ञतादिक हैं. आभास और प्रतिबिंबका इतना भेद है:-आभासपक्षमें तो आभास मिथ्या है और प्रतिबिंबवादमें प्रतिबिंब मिथ्या नहीं किंतु सत्य है. काहेते ? प्रतिबिंबवादीका यह सिद्धांत है:-दर्पणमें जो मुखका प्रतिबिंब है सो मुखकी छाया नहीं. काहेते ? १-छायाका यह स्वभाव है:-जिस दिशामें छायावान्‌के मुख और पृष्ठ होवैं उस दिशामें छायाके मुख और पृष्ठ होवै हैं और दर्पणके प्रतिबिंबके मुख, पीठ, बिंबसे विपरीत होवै हैं. याते दर्पणमें छायारूप प्रतिबिंब नहीं. किंतु दर्पणको विषय करनेवास्ते नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति सो दर्पणकूं विषय करिके तत्कालही दर्पणसे निवृत्त होयके ग्रीवामें स्थित मुखकूं विषय करै है, जैसे भ्रमणके वेगसे अलात (का)चक्र भान होवै है और चक्र नहीं है तैसे दर्पण और मुखके विषय करनेमें वृत्तिके वेगते मुख दर्पणमें स्थित भान होवै है और मुख ग्रीवाविषे ही स्थित है, दर्पणमें नहीं. और छाया भी नहीं. वृत्तिके वेगसे जो दर्पणमें मुखकी प्रतीति सोई प्रतिबिंब है.इस रीतिसे दर्पणरूप उपाधिके संबंधसे ग्रीवामें स्थित मुख ही बिंबरूप और

प्रतिबिंबरूप भान होवै है. और विचारसे बिंब प्रतिबिंबभाव है नहीं. तैसे अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसे असंगचेतनमें बिंबस्थानी ईश्वरभाव और प्रतिबिंबस्थानी जीवभाव प्रतीत होवै है, और विचारदृष्टिसे ईश्वरता जीवता है नहीं. अज्ञानते जो चेतनमें जीवभावकी प्रतीति, सोई अज्ञानमें प्रतिबिंब कहिये है. याते बिंबपना और प्रतिबिंबपना तो मिथ्या है और स्वरूपसे बिंबप्रतिबिंब सत्य हैं. काहेते ? बिंबप्रतिबिंबका स्वरूप दृष्टांतविषे तो मुख है और दार्ष्टांतविषे चेतन है, सो मुख और चेतन सत्य है. १-इस रीतिसे प्रतिबिंबकूं स्वरूपसे सत्य होनेते सत्य कहैं हैं. २-आभासका स्वरूप छाया मानै हैं. याते मिथ्या है. यह आभासवाद और प्रतिबिंबवादका भेद है,और कितने ग्रंथनमें १-शुद्धसत्त्वगुणसहित मायाविशिष्टचेतन ईश्वर कहिये है. २-मलिनसत्त्वगुणसहित अन्तःकरणका उपादान अविद्याके अंशविशिष्ट चेतन जीव कहिये है. याकूं अवच्छेदवाद कहै हैं. सर्वही वेदांतकी प्रक्रिया अद्वैत आत्माके जनावनेकूं है, याते जौनसी प्रक्रियाते जिज्ञासुकूं बोध होवै सोई ताकूं समीचीन है. तथापि वाक्यवृत्ति और उपदेशसाहस्रीमें भाष्यकारने आभासवाद ही लिखा है,याते आभासवाद ही मुख्य है.

चारि महावाक्यनमें भागत्यागका प्रदर्शनः-

१-माया और मायामें आभास, और मायाका अधि-

ष्ठान जो चेतन सो सर्वशक्ति सर्वज्ञता आदिक धर्म-सहित ईश्वर है, सोई तत्पदका वाच्य है. २–व्यष्टि अविद्या तामें आभास और ताका अधिष्ठानचेतन अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्मसहित जीव है सो त्वंपदका वाच्य है. तिन्ह दोनोंकी " तत्त्वमसि " वाक्यने एकता बोधन करी, और बनै नहीं, १–याते आभाससहित माया और मायाकृत सर्वशक्तिसर्वज्ञतादिक धर्म इतने वाच्यभागकूं त्यागिके चेतनभागविषे तत्पदकी भागत्यागलक्षणा. २–तैसे आभाससहित अविद्याअंश और अविद्याकृत अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म, जो त्वंपदका वाच्यभाग ताकूं त्यागिके चेतनभागमें त्वंपदकी भागत्यागलक्षणा. इस रीतिसे–

भागत्यागलक्षणाते, १–ईश्वर और जीवके स्वरूपमें लक्ष्य जो चेतनभाग, तिनकी एकता "तत्त्वमसि" महावाक्य बोधन करै है. २–तैसे "अयं आत्मा ब्रह्म" इस महावाक्यमें आत्मापदका जीव वाच्य है और ब्रह्मपदका ईश्वर वाच्य है. ब्रह्मपदका शुद्ध वाच्य नहीं, ईश्वर ही वाच्य है, यह चतुर्थतरंगमें प्रतिपादन क[रि] आये हैं पूर्वकी न्याई दोनों पदनकी लक्षणा है. लक्ष्य अर्थ परोक्ष नहीं. इस अर्थकूं जनावनेकूं अयंपद है; अयं कहिये सबके अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म है, यह वाक्यका अर्थ है. ३– "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यमें अहंपदका जीव

वाच्य और ब्रह्मपदका ईश वाच्य है, दोनों पदनकी चेतनभागमें लक्षणा "मैं ब्रह्म हूँ" यह वाक्यका अर्थ है "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इस महावाक्यमें, प्रज्ञानपदका जीव वाच्य है, ब्रह्मपदका ईश है, पूर्वकी न्याई लक्षणा लक्ष्य जो आत्मा सो आनंदगुणवाला नहीं किंतु आनंदरूप है इस अर्थके जनावनेकूं आनंदपद है. आत्मासे अभिन्न ब्रह्म आनंदरूप है, यह वाक्यका अर्थ है. जैसे महावाक्यनमें भागत्यागलक्षणा है तैसे अन्यवाक्यनमें सत्य ज्ञान आनंदपद भी शुद्धब्रह्मकूं भागत्यागलक्षणासे ही बोधन करै है शक्तिसे नहीं. काहेते ? शुद्धब्रह्म किसी पदका वाच्य नहीं,यह सिद्धांत है. याते सारे पद विशिष्टके वाचक हैं और शुद्धके लक्षक हैं.१-मायाकी आपेक्षिक सत्यता और चेतनकी निरपेक्षिकसत्यता मिली हुई सत्यपदका वाच्य है निरपेक्षिक सत्य लक्ष्य है.२-बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञान और स्वयंप्रकाशज्ञान, दोनो मिलैं तो ज्ञानपदका वाच्य और स्वयंप्रकाशभाग लक्ष्य. ३-विषयसंबन्धजन्य सुखाकार सात्त्विक अंतःकरणकी वृत्ति और परमप्रेमका आस्पदस्वरूप सुख, दोनों मिले आनंद पदका वाच्य और वृत्तिभागकूं त्यागिके स्वरूपभाग लक्ष्य. इस रीतिसे सर्वपदनकी शुद्धमें लक्षणा संक्षेपशारीरमें प्रतिपादन करी है.

उक्त अर्थ संग्रह–कवित्त।

गंगामैं ग्राम जहतिलक्षणा या ठौर लखि,
सोन धावे लक्षणा अजहति जनाइये।
"सोई यह वस्तु" इहां लक्षणा है भागत्याग,
दूजो नाम जहति, अजहति सुनाइये॥
"तत्त्वमसि" आदि महावाक्यनमें भागत्याग,
लक्षणा न जहति अजहति बताइये।
ब्रह्म काहुपदको न वाच्य यों बखान वेद,
याते सर्वपदनमें रीति यों लखाइये॥ ४४॥
मायामाहिं सत्यता जु और भांति भाषियत,
ब्रह्ममाहिं सत्यता सु और भांति भाषिये।
दोऊ मिलि सत्यपद वाच्य मुनि भाषत हैं,
ब्रह्ममांहिं सत्यता सु लक्ष्यभाग राखिये॥
बुद्धिवृत्ति संवित द्वै मिले ज्ञानपद वाच्य,
संवितस्वरूप लक्ष्य बुद्धिवृत्ति नाखिये।
आत्म औ विषैको सुख वाच्यपद आनँदको,
विषैसुख त्यागि आतमसुख लक्ष आखिये॥४५॥

महावाक्यनमें विरोध दूरि करनेको दोनों पदनमें लक्षणा अंगीकार करी. तहां कोई कहै हैः—एक पदमें लक्षणा अंगीकार कियेसे ही विरोध दूरि होवे है, दोयपदमें लक्षणा माननेका प्रयोजन नहीं.

दोहा।

एकहि पदमें लक्षणा, मानै नहीं विरोध।
दोयपदनमें लक्षणा, निष्फल कहत सुबोध ॥ ४६ ॥

सुबोध कहिये सुज्ञ दोयपदनमें लक्षणा निष्फल कहते हैं. काहेते? एक ही पदमें लक्षणा मानेते विरोध दूरि होय जावै है. याका भाव यह है—यद्यपि सर्वज्ञतादि विशिष्टकी अल्पज्ञतादि विशिष्टके साथ एकता नहीं बनै है; तथापि एकपदका लक्ष्य जो शुद्ध ताकी विशिष्टके साथ एकता बनै है: दृष्टांत १—जैसे"शूद्रमनुष्य,ब्राह्मण है"इस रीतिसे शूद्रत्वधर्मविशिष्ट मनुष्यकी ब्राह्मणत्व-धर्मविशिष्टके साथ एकता कहना विरुद्ध है. २—"मनु-ष्य ब्राह्मण है"इस रीतिसे शूद्रत्वधर्मरहित शुद्धमनु-ष्यकूं ब्राह्मणत्वविशिष्टता कहनेमें विरोध नहीं. १— तैसे अल्पज्ञतादिकधर्म विशिष्टचेतनकी और सर्वज्ञतादिधर्म-विशिष्टकी एकता विरुद्ध भी है. २—परंतु जीववाचक पद और ईश्वरवाचकपदकी चेतनमें लक्षणाकरिके चेतनमात्रकी सर्वज्ञताविशिष्टके साथ, वा अल्पज्ञता-दिविशिष्टके साथ एकता कहनेमें विरोध नहीं, याते ोपदमें लक्षणा माननेमें कोई युक्ति नहीं ॥ ४६ ॥

१ समाधान—कवित्त।

लक्षणा जो कहै एकपदमाहिं ताकूं यह,
पूछि दोयपदनमें कौनसेमैं लक्षणा।

प्रथम वा द्वितीयमैं कहै ताहि भाषि यह,
वाक्यनको होयगो विरोध मूढलक्षणा ॥
तीनवाक्यमध्य जीववाचक प्रथमपद,
"तत्त्वमसि" यामैं आदिपद ईशलक्षणा ।
प्रथम वा द्वितीयको नेम नहिं बनै याते,
भाषत द्वैपदनमैं लक्षणा सुलक्षणा ॥ ४७ ॥

जो एकपदमें लक्षणा अंगीकार करै ताकूं यह पूछिः-दोनों पदनमेंसे कौनसे पदमें लक्षणा है ? जो ऐसे कहै १-सर्वमहावाक्यनके प्रथमपदमें लक्षणा है, द्वितीयपदमें नहीं. २-यद्वा द्वितीयपदमें लक्षणा सर्ववाक्यनमें है. प्रथम पदमें नहीं. ताकूं हे शिष्य ! यह भा :-हे मूढलक्षण ! प्रथम वा द्वितीयपदमें जो नेमते लक्षणा सर्ववाक्यनमें मानै तो वाक्यनका परस्पर विरोध होवैगा. काहेते ? १-तीनिवाक्य मध्य कहिये, "अहं ब्रह्मास्मि" "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म" "अयमात्मा ब्रह्म" इन तीन वाक्यनमें जीववाचकपद प्रथम कहिये पूर्व है और "तत्त्वमसि" या वाक्यमें आदिपद कहिये प्रथमपद ईशलक्षणा कहिये ईश्वरका बोधक है. जो पूर्वपदमें लक्षणा सारे मानैं तो तीनिवाक्यनका तो यह अर्थ होवेगा-चेतन सर्वज्ञतादिविशिष्ट अंश सारे ईश्वररूप हैं. ौर "तत्त्वमसि" वाक्यका यह अर्थ होवैगाः-चेतन अल्पज्ञतादिविशिष्ट संसारी जीवरूप है. काहेते ? तीनिवाक्यनमें पूर्व जीव-

वाचकपद है ताका चेतनभागमें लक्षणा और द्वितीय जो ईश्वरवाचक पद ताके वाच्यका ग्रहण और "तत्त्वमसि" में आदि ईशवाचकपद, ताकी चेतनभागमें लक्षणा और द्वितीय जीववाचकपद ताके वाच्यका ग्रहण इस रीतिसे लक्षणाका नेम करै तो वाक्यनका परस्पर विरोध होवेगा. तैसे सर्ववाक्यनके द्वितीयपद कहिये आगिले पदमें लक्षणा मानैं तो तीनि वाक्यनमें पूर्व जो जीवपद ताके वाच्यका ग्रहण और उत्तर ईशपदकी चेतनाभागमें लक्षणा याते अल्पज्ञतादि धर्मविशिष्ट चेतन है यह तीनि वाक्यनका अर्थ होवेगा. और "तत्त्वमसि" में आदि ईशपद ताके वाच्यका ग्रहण और द्वितीय जीव पदकी चेतनभागमें लक्षणा. याते सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्ट चेतन है,यह "तत्त्वमसि" का अर्थहोनेते, परस्परविरोधही होवेगा. इस रीतिसे प्रथम वा द्वितीय पदमें, लक्षणाका नेम बनै नहीं. याते सुलक्षणा कहिये सुंदर हैं लक्षण जिनके ते आचार्य द्वै पदनमें लक्षणा भाषते हैं ॥४७॥

और जो ऐसे कहैं, प्रथमपद वा द्वितीयपदमें लक्षणा है. यह नियम नहीं करै हैं, किन्तु सर्ववाक्यनमें जो ईश्वर वाचकपद तामें लक्षणा है यह नियम करै है सो ईश्वरवाचक पूर्व होवै वा उत्तर होवै याते वाक्यनका परस्पर विरोध नहीं.

ताका समाधान-दोहा।

ईशपदहि लक्षक कहै, सब अनर्थकी खानि।
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्यमें, है पुरुषारथहानि ॥४८॥

जो ईश्वरवाचक पदकूंही लक्षक कहै तो सर्व अनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्म मरणसे आदिलेके;जो दुःख साधन तिनकी खानि जो संसारी जीव सो श्रुतिवाक्यनमें ज्ञेय होवैं. याते पुरुषार्थ कहिये मोक्षकी हानि होवेगी याका भाव यह हैः—जो ईश्वरवाचक पदमें ही लक्षणा माने तो महावाक्यनका यह अर्थ होवेगा;—तत्पदका लक्ष्य जो अद्वय असंग माया, मलरहित चेतन सो काम कर्म अविद्याके अधीन अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, परिच्छिन्न, पुण्य, पाप, सुख, दुःख, जन्म, मरण, गमन, आगमन आदिक अनंत अनर्थका पात्र है;जो महावाक्यका ऐसा अर्थ होवै तौ जिज्ञासुकूं इसी अर्थविषे बुद्धिकी स्थिति करनी होवेगी और जामें बुद्धिकी स्थिति होवै है. प्राण वियोगसे अनंतर ताहीकूं प्राप्त होवे है. याते वेदवाक्यनके विचारसे मुमुक्षुकूं अनर्थकीही प्राप्ति होवैगी, आनंदकी प्राप्ति नहीं होवैगी, याते ईश्वरवाचकपदमें लक्षणा है. जीववाचकमें नहीं यह नियम असंगत है ॥ ४८॥

जो ऐसे कहैंः—सर्वमहावाक्यनमें जो जीवनवाचक पद हैं तिन्हमें लक्षणा है, ईशवाचकमें नहीं, याते पुरुषार्थकी हानि नहीं. काहेते ? जीववाचकपदमें लक्षणा मानैं तो

महावाक्यनका यह अर्थ होवेगाः--जो त्वंपदका लक्ष्य चेतनभाग सो सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र जन्मादिकबन्धरहित ईश्वररूप है. इस अर्थमें बुद्धिकी स्थितिसे जिज्ञासुकूं अतिउत्तम ईश्वरभावकीही प्राप्ति होवेगी. याते जीववाचकपदमें लक्षणा नियम करे हैं.

ताका समाधान--दोहा।

साक्षी त्वंपद लक्ष्य कहु, कैसे ईशस्वरूप।
याते दोपद लक्षणा, भाषत यतिवर भूप॥ ४९॥

त्वंपदका लक्ष्य जो साक्षी सो ईशस्वरूप कैसे ? यह कहु. अर्थ--यह त्वंपदके लक्ष्यकूं ईश्वररूप कहना बनै नहीं. याते यति जो संन्यासी तिनमें वर जो श्रेष्ठ, तिनके भूप स्वामी, दोनों पदमें लक्षणा भाषत हैं. याका भाव यह है--जो जीववाचकपदमें लक्षणा माने और ईशवाचकमें नहीं, ताकूं यह पूछे हैंः--१-त्वंपदकी लक्षणा व्यापक चेतनमें है. २--अथवा जितने देशमें जीवकी उपाधि है, उतने देशमें स्थित जो साक्षीचेतन तामें त्वंपदकी लक्षणा है. १--जो व्यापक चेतनमें त्वंपदकी लक्षणा कहैं, तो बनै नहीं. काहेते ? वाच्य अर्थमें जाका प्रवेश होवे; तामें भागत्यागलक्षणा होवै है और वाच्यमें प्रवेश व्यापकचेतनका नहीं. किंतु जीवपनेकी उपाधिदेशमें स्थित जो साक्षीचेतन ताका वाच्यमें प्रवेश है. याते साक्षीचेतनमेंही त्वंपदकी लक्षणा है. व्यापकचेतनमें

नहीं. ता साक्षीचेतनमें सर्वके हृदयका प्रेरण और सर्वप्रपञ्चमें व्यापकतादिक ईश्वरके धर्मनका असंभव है. और साक्षी सदा अपरोक्ष है ताके विषे परोक्षता ईश्वर धर्मका अत्यन्त असंभव है. २–मायारहितकूं मायाविशिष्ट कहना असंभव है. जैसे दंडरहितकूं दंडी कहना और संस्काररहित द्विजबालककूं संस्कारविशिष्ट कहना असंभव है. याते साक्षी चेतनका ईश्वरसे अभेद कहैं, तो महावाक्य असंभव अर्थके प्रतिपादक होवैंगे.

दोनों पदनमें लक्षणा और ओतप्रोतभाव।

दोनों पदोंमें लक्षणा मानै तो दोष नहीं. काहेते ? जो एकताके विरोधी धर्म हैं तिन सबकूं त्यागिके दोनों पदोंमें प्रकाशरूप चेतन जो वाच्यभाग, ता सर्वधर्मरहित चेतनमें दोनों पदकी लक्षणा उपाधि और उपाधिकृतधर्मनते चेतनका भेद है. स्वरूपसे नहीं. उपाधि और उपाधिकृतधर्मनका त्याग कियेते दोनों पदनके लक्ष्य चेतनकी एकता संभवै है. जैसे घटाकाशमें घटदृष्टि त्यागिके मठविशिष्ट आकाशते एकता बनै नहीं और मठदृष्टि त्यागकियेते एकता बनै है ॥ ४९ ॥

दोहा।

तत्त्वं त्वं तत् रीति यह, सबवाक्यनमें जानि।
जाते होय परोक्षता, परिच्छिन्नता हानि ॥ ५० ॥

सर्ववाक्यनमें "तत्त्वं" "त्वं तत्" इस रीतिसे

ओतप्रोतभावकी रीति जानि जा ओतप्रोतभाव कियेते वाक्यके अर्थमें परोक्ष और परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि होवै है. १-"तत् त्वं" या कहनेते तत्पदके अर्थका त्वंपदके अर्थसे अभेद कह्या, सो त्वंपदका अर्थ साक्षी नित्य अपरोक्ष है, याते परोक्षताभ्रांतिकी हानि और २-"त्वं तत्," या कहनेते त्वंपदके अर्थका तत्पदके अर्थसे अभेद कह्या, सो तत्पदका अर्थ व्यापक है, याते परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि. १-तैसे "अहं ब्रह्म" "प्रज्ञानं ब्रह्म" "आत्मा ब्रह्म" याते परिच्छिन्नता हानि. २-"ब्रह्म अहं"; "ब्रह्म प्रज्ञानं" "ब्रह्म आत्मा" याते परोक्षताहानि ॥ ९० ॥

दोहा ।

जीवब्रह्मकी एकता, कहत वेद स्मृति बैन ।
शिष्य तहां पहिचानिये, भागत्यागकी सैन ॥९१॥

हे शिष्य ! जो वेदबैन और स्मृतिबैन, जीवब्रह्मकी एकता कहैं, तहां सारे भागत्यागकी सैन पहिचानिये९१

दोहा ।

अस शिष गुरुउपदेश सुनि, भो ततकाल निहाल ।
भले विचारे याहि जो, ताके नशत जँजाल ॥ ९२ ॥

सोरठा ।

मिथ्यागुरुसुरबानि, कियो ग्रंथ उपदेश यह ।
सुनत करत तमहानि, यह ताकी भाषा करी ॥९३॥

दोहा ।

अगृधदेवकूं स्वप्नमें, यह किय गुरु उपदेश ।
नश्यो न तहुँ दुखमूल वह, मिथ्याबनको वेश॥९४॥
वेश कहिये स्वरूप, अन्य अर्थ स्पष्ट है ॥ ९४ ॥

प्रश्नः—अर्थसहित ग्रंथ पढा तौभी बन दुःखका मूल भासता है ?

अगृध उवाच—चौपाई ।

भगवनयहतुमग्रन्थपढायो। अर्थसहितसो मो हियआयो ।
बनदुखमूलतऊमुहिभासै । कहुउपायजातेयहनाशै॥९५॥
बोलेगुरु सुनिशिषकी बानी । सुनिशिषहैजातेवनहानी ॥
अस उपायकोउ और नहीं है।बनकानाशकोतुयही है९६
महावाक्यको अर्थविचारहु।"मैंअगृध"यों टेरि पुकारहु॥
सुनिपुनिवाक्य विचारे चेला।'अहं अगृध'यहदीनोंहेला॥
निद्रागई नैन परकाशे।बन गुरुग्रंथ सबै वहनाशे । भयो
सुखीबनदुःखविसरायो।हुतोअगृधनिजरूपसुपायो।मिथ्या
गुरुवेदते अज्ञानजन्य मिथ्या जगत्का परिहार होवैहै९७

दोहा ।

अगृधदेवमैं निंदते, भौ बनदुख जिहिं रीति ।
आतममें अज्ञानतैं, त्यूं जग दुःख प्रतीति ॥ ९८ ॥
ज्यों मिथ्या गुरु ग्रंथतैं, मिथ्या बन संहार ॥
त्यों मिथ्या गुरु वदतैं, मिथ्या जग परिहार ॥ ९९ ॥
लक्ष अर्थ लखि वाक्यको, है जिज्ञासु निहाल ॥
निरावरण सो आप है, दादू दीनदयाल ॥ ६० ॥

इति श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यात्ववर्णनं नाम षष्ठस्तरंगः ॥ ६ ॥

सप्तमस्तरंगः ।

अथ जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनम् ।

ज्ञानीके व्यवहारमें नियम नहीं—दोहा ।

उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहुँ, सुनि अस गुरु उपदेश ।
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो, रह्यो न संशय लेश ॥ १ ॥

यद्यपि गुरुने उपदेश तीनोंकूं साथही किया, तथापि गुरु उपदेशते साक्षात्कार उत्तम तत्त्वदृष्टिकूं हुवा ॥ १ ॥

दोहा ।

भ्रमण करत ज्यों पवनतें, सूखो पीपरपात ।
शेष कर्म प्रारब्धते, क्रिया करत दरशात ॥ २ ॥
कबहुँक चढि रथ वाजि गज, बागबगीचे देखि ।
नग्नपाद पुनि एकले, फिर आवत तिहिं लेखि ॥ ३ ॥
विविधवेष शय्या शयन, उत्तम भोजन भोग ।
कबहुँकअनशनगिरिगुहा, रजनिशिलासंयोग ॥४॥
करि प्रमाण पूजन करत, कहुँ जन लाख हजार ।
उभयलोकते भ्रष्ट लखि, कहत कर्मि धिक्कार ॥५॥
जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सु लेत ।
दोषदृष्टि तिहिं जो लखै, ताहि पापफल देत ॥ ६ ॥
ऐसे ताके देहको, विना नियम. व्यवहार ।
कबहु न भ्रम संदेह है, लह्यो तत्त्व निर्धार ॥ ७ ॥
नहिं ताकूं कर्तव्य कछु, भयो भेदभ्रम नाश ।
उपज्यो वेदप्रमाणते, अद्वय ब्रह्म प्रकाश ॥ ८ ॥

ज्ञानीके व्यवहारमें नियमका आक्षेप.

ज्ञानीकूं समाधि और शरीरनिर्वाहतैं अधिक अप्रवृत्तिके नियमका आक्षेप ।

ज्ञानीके व्यवहारमैं, कोउ कहत है नेम ।
त्रिपुटि तजै दुखहेतु लखि,लहै समाधि सप्रेम ॥९॥
है किंचित् व्यवहार जो, भिक्षाशन जलपान ।
भूलै नाहिं समाधिसुख, है त्रिपुटीतैं ग्लान ॥ १० ॥
लहै प्रयत्न समाधिको, पुनि ज्ञानी इह हेत ।
जो समाधिसुखतजि भ्रमत,नर कूकर खर प्रेत ॥११॥
गौडपादमुनिकारिका,लिख्यो समाधि प्रकार ।
ज्ञानी तजि विक्षेप यों, लहै सकलसुखसार ॥१२॥
अष्ट अंगबिन होत नहिं, सो समाधिसुखमूल ।
अष्ट अंगते अब सुनो. जे समाधि अनुकूल ॥१३॥
पांचपांचयमनियमलखि, आसन बहुत प्रकार ।
प्राणायाम अनेकविधि, प्रत्याहार विचार ॥ १४ ॥
छठी धारणा ध्यान पुनि,अरु सविकल्प समाधि ।
अष्ट अंग ये साधिके, निर्विकल्प आराधि ॥१५॥
सुनि समाधिकर्तव्यता, तत्त्वदृष्टि हँसि देत ।
उत्तर कछुभाषत नहीं, लखितिहिं बकत सप्रेत ॥१६॥

जैसे सप्रेम कहिये प्रेमसहित:भूतके आवेशवाला बकै तैसे अन्यथा कहता,सुनिके तत्त्वदृष्टि हँसै है, अन्य

दोहोंका अक्षरार्थ स्पष्ट है. भाव यह हैः—ज्ञानवान्के शरीरव्यवहारका नियम नहीं.काहेतें? ज्ञानीके व्यवहारमें अज्ञान और ताका कार्य भेदभ्रांति तथा भेदभ्रमके कार्य, रागद्वेष तो हैं नहीं; किंतु ज्ञान्वान्के भी प्रारब्धकर्म शेष रहे हैं सोई ताके व्यवहारमें निमित्त है सो प्रारब्धकर्म पुरुषभेदसे नानाप्रकारका होवै है.याते ज्ञानीके प्रारब्धकर्मजन्य व्यवहारका नियम नहीं यह सिद्धांतपक्ष है.

कोई ऐसे कहैं हैंः—ज्ञानीके व्यवहारमें और किसी कर्मका तो नियम नहीं है, परंतु ज्ञानवान्की निवृत्तिका नियम है. प्रवृत्ति होवै तो देहस्थितिके हेतु, भिक्षाअशन, कौपीन आच्छादनमात्र ग्रहणमें प्रवृत्ति होवे है अन्य प्रवृत्ति होवै नहीं. काहेते? ज्ञानकी उत्पत्तिसे प्रथम जिज्ञासाकालमें विषयनमें दोषदृष्टिसे वैराग्य होवै है, सो वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर भी दोषदृष्टिते तथा विषयनमें मिथ्या बुद्धिसे होवै है. १—अपरोक्षरूपते मिथ्या जाने पदार्थनमें सत्य बुद्धि होवै नहीं. २—दोषदृष्टिते राग होवै नहीं और प्रवृत्ति रागते होवै है. ज्ञानीके राग संभवै नहीं; याते प्रवृत्ति होवै नहीं.

शरीरनिर्वाहक भोजनादिकनमें प्रवृत्ति तो रागते विना प्रारब्धकर्मते संभवै है. कर्म तीनि प्रकारके हैं. १—संचित, २—आगामी और ३—प्रारब्ध. तिनमेंः—१—भूतशरीरनमें किये कर्म फलारंभरहित संचित कहिये हैं. २—भविष्यत

कर्म आगामी कहिये हैं. ६--भूतशरीरनमें किया वर्तमान शरीरका हेतु कर्म प्रारब्ध कहिये है. तिनमें--१--संचित कर्मका ज्ञानते नाश होवै है. २--ज्ञानवानकूं आत्मामें कर्तृत्वभ्रांति नहीं याते ताकूं आगामीकर्मका संभव नहीं. और ३--जिस प्रारब्धकर्म ज्ञानीके शरीरका आरंभ किया है, सोई प्रारब्धकर्म शरीरस्थितिके हेतु भिक्षादिकनमें प्रवृत्ति करवावै है. प्रारब्धकर्मका भोगविना नाश होवै नहीं.

और कहूँ ऐसा लिखा है.:--संचित आगामी कर्मकी न्याईं ज्ञानीके प्रारब्धकर्म भी रहैं नहीं, याते भोजनादिक प्रवृत्ति भी ज्ञानीकूं संभवै नहीं. ताका यह अभिप्राय है:--ज्ञानीकी दृष्टिते आत्मामें कर्म और ताके फलका संबंध नहीं. याते आत्मामें सर्वकर्मका निषेध अभिप्रायते प्रारब्धका निषेध किया है और ज्ञानते पूर्वकिये प्रारब्धका ज्ञानीके शरीरकूं भोग होवै नहीं, इस अभिप्रायते प्रारब्धका निषेध नहीं. काहेते? सूत्रकारने यह लिखा है:--१--ज्ञानीके संचितकर्मका ज्ञानते नाश होवै है.२--आगामीका संबंध होवै नहीं. ३--प्रारब्धका भोगते नाश होवै है. याते प्रारब्धके बलते शरीरनिर्वाहक क्रिया ज्ञानीकी होवै है, अधिक नहीं. परन्तु कर्म नाना प्रकारके हैं. जहां एक कर्म नानाशरीरका आरंभक होवैं ऐसे कर्मते:रचित प्रथमशरीरमें जाकूं ज्ञान होवै तहां

ज्ञानवान्कूं अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये. काहेते? फलका जाने आरंभ किया है, सो प्रारब्ध कहिये है, ताका भोगविना नाश होवै नहीं. अनेकशरीरका हेतु कर्म एक है, तामें प्रथम शरीर जो उपजाया तामें ज्ञान हुआ ता कर्मके फलज्ञानते अनंतर और शरीर शेष रहै है, याते ज्ञानवान्कूं भी अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये.

जो ऐसे कहैः-प्रारब्धकर्मका फल जितने शरीर होवैं उतने शरीरज्ञानकूं भी होवै हैं, प्रारब्धके भोगते अधिक होवै नहीं याते ज्ञान भी सफल होवै है, सो बनै नहीं. काहेते? यह वेदका ढँढोरा हैः-"ज्ञानवान्के प्राण अन्यलोकमें, वा इसलोकके अन्यशरीरमें गमन नहीं करते" किंतु. तिसी स्थानमें अंतःकरण इंद्रियसहित लीन होवै हैं. और प्राणगमनविना अन्यशरीरकी प्राप्ति संभवै नहीं. याते ज्ञानवान्कूं प्रारब्ध शेषते और शरीर होवै है, यह कहना तो संभवै नहीं. किंतु यह समाधानहैः-जहां अनेक शरीरका आरंभक एक कर्म होवै, तहां अंतशरीरमें ही ज्ञान होवे है. पूर्वशरीरमें ज्ञान होवै नहीं. काहेते? अनेक शरीरका आरंभ; प्रारब्ध ही ज्ञानका प्रतिबंधक है. जैसे १-विषयनमें आसक्ति, २-बुद्धिमंदता, ३भेदवादीवचनमें विश्वास, ज्ञानके प्रतिबंधक हैं, तैसे विलक्षण प्रारब्ध भी ज्ञानका प्रतिबंधक है और ज्ञानके प्रतिबंधक होते जहां ज्ञानसाधन श्रवणादिक होवैं तहां ज्ञान होवे नहीं.

प्रतिबंध दूर हुयेते प्रथमजन्मविषे किये जो श्रवणादिक हैं तिनते ही अन्तशरीरमें ज्ञान होवे है. जैसे वामदेवने पूर्वजन्मविषे श्रवणादिक किये, तब प्रारब्धका फल एकशरीर शेष होते ज्ञान नहीं हुवा. किंतु श्रवणादिक करते वर्तमान, शरीरका पात होयके अन्यशरीरकी प्राप्ति हुयेते पूर्वजन्ममें किये श्रवणादिकनते गर्भविषे ज्ञान हुआ है, याते ज्ञानसे अनंतर अन्यशरीरका संबंध होवे नहीं. और वर्तमानशरीरकी चेष्टा प्रारब्धसे होवे है. तहां जितनी चेष्टा शरीरकी निर्वाहक हैं सोई होवे. रागजन्य अधिक चेष्टा होवे नहीं. याते सर्वप्रवृत्ति रहित ज्ञानी होवे है.

इसरीतिसे निवृत्तिप्रधानज्ञानीका व्यवहार होवे है. याके विषे ऐसी शंका है:—मनका स्वभाव अतिचंचल है, निरालंब मनकी स्थिति होवे नहीं, किसी आलंबते मनकी स्थिति होवे है. याते मनके किसी आलंबकी प्राप्तिनिमित्त भी ज्ञानवान्‌की प्रवृत्ति होवे है,

ताका यह समाधान है:—

यद्यपि समाधिहीनपुरुषका मन चंचल होवे है, तथापि समाधिते मनका विजय होवे है. और ज्ञानवान् समाधिविषे स्थित होवे है. याते ज्ञानवान्‌की प्रवृत्ति होवे नहीं, सो समाधि इन अष्ट अंगनमें होवे है:—

यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्या—

हार ५, धारणा ६, ध्यान ७, सविकल्पसमाधि ८ इन अष्टअंगनते समाधि होवै है.

अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५ ये पांच यम कहे हैं.

शौच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५ ये नियम कहिये हैं. और ज्ञानसमुद्रग्रंथमें दशप्रकारके यम और दशप्रकारके नियम कहे हैं, सो पुराणकी रीतिसे कहे हैं, वेदांतसंप्रदायमें यम नियमके पांच पांच ही भेद हैं.

आसनके भेद अनंत हैं तिनमें स्वस्तिक १, गोमुख २, वीर ३, कूर्म ४, पद्म ५, कुक्कुट ६, उत्तान ७, कूर्मक८, धनुष९, मत्स्य १०, पश्चिमतान ११, मयूर१२, शव १३, सिंह १४, भद्र १५, सिद्ध १६, इत्यादिक चौरासी आसन योगग्रन्थनमें लिखे हैं तिनके लक्षण भी तहां लिखे हैं ग्रंथके स्तारभयते तथा वेदांतमें अत्यन्त उपयोगी नहीं, याते लक्षणा लिखे नहीं. तिनमेंभी सिंह भद्र, पद्म, सिद्ध चारि आसन प्रधान हैं तिन चारिमें भी सिद्धआसन अत्यंत प्रधान है. ताका यह लक्षणा है:— वामपादकी एडी गुदा मेढ्रके मध्यसीवनमें दाबिके दक्षिणपादकी एडी मेढ्रके उपरी दाबके धरे, भ्रुकुटीके अंतर दृष्टि राखे, स्थाणुकी न्याई सरल निश्चल शरीरते स्थितिकूं सिद्धासन कहैं हैं.

कोई ऐसे कहैं हैंः—वामपादकी एडी सीवनमें नहीं लगावे किन्तु मेढ्रके ऊपरि लगावे ताके ऊपरि दक्षिणएडी धरै और पूर्वकी न्याईं यह सिद्धासनही अतिप्रधान है काहेते ? कितने आसन तो रोगनाशके हेतु हैं और कोई आसन ऐसे हैं प्राणायामादिक समाधिके अंग जिनतें होवै हैं और सिद्धासन समाधिकालमें होवै है याते अतिप्रधान है. याहीकूं वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन कहैं हैंः—

आसनसिद्धिसे अनंतर प्राणायाम भी करै सो प्राणायाम बहुतप्रकारका है तथापि संक्षेपते यह लक्षण हैंः- १—नासाके वामछिद्रद्वारा इडानाम नाडीते वायुकूं पूर्ण करै ताकूं पूरक कहैं हैं. २—दक्षिणते त्यागै ताकूं रेचक कहैं हैं. ३—सुषुम्णाते रोके ताकूं कुंभक कहैं हैं. इस रीतिसे पूरक रेचक कुंभककूं प्राणायाम कहैं हैं. सो दो प्रकारका हैः— १ अगर्भ है. २—दूसरा सगर्भ है. १—प्रणवके उच्चारण प्राणायाम अगर्भ कहिये है, २—प्रणवके उच्चारणसहित प्राणायाम सगर्भ कहिये है.

१—विषयनते सकलइंद्रियके निरोधकूं प्रत्याहार कहैं हैं.२—अन्तरायसहित अंतःकरणकी स्थिति, धारणा कहिये हैं ३—अंतरायरहित अद्वितीयवस्तुविषे अंतःकरणका प्रवाह ध्यान कहिये है.

व्युत्थानसंस्कारनका तिरस्कार और निरोधसंस्का-

रनकी प्रकटता हुई. अंतःकरणका एकाग्रतारूपपरिणाम समाधि कहिये है. सो समाधि दो प्रकारकी है:-१एक सविकल्पसमाधि है. २-दूसरी निर्विकल्पसमाधि है. १-ज्ञाता,ज्ञान,ज्ञेयरूप त्रिपुटीज्ञान सहित अद्वितीयब्रह्मविषे अंतःकरणकी वृत्तिकी स्थिति सविकल्पसमाधि कहिये है. सो सविकल्पसमाधि दो प्रकारकी है:-एक तो शब्दानुविद्ध है,दूसरी शब्दाननुविद्ध है. "अहं ब्रह्मास्मि"इस शब्दकरिके अनुविद्ध कहिये सहित होवै सो शब्दानुविद्ध कहिये है. शब्दरहितकूं शब्दाननुविद्ध कहै हैं, त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकार अंतःकरणवृत्तिकी स्थिति निर्विकल्पसमाधि कहिये है. इस रीतिसे सविकल्प और निर्विकल्पसमाधिके दो भेद हैं. तिनमें सविकल्पसमाधि साधन है और निर्विकल्पसमाधि फल है १-साधन रूप जो सविकल्पसमाधि है ताके विषे यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत होवै, तथापि सो द्वैत इस रीतिसे ब्रह्मरूप करिके प्रतीत होवै है:-जैसे मृत्तिकाविकारनकूं मृत्तिकारूप जानते विवेकीकूं मृत्तिकारूप विकार घटादिक प्रतीत भी होवै हैं, परंतु मृत्तिकारूप ही प्रतीत होवै है. तैसे सविकल्पसमाधिमें त्रिपुटीद्वैत ब्रह्मरूप ही प्रतीत होवै हैं. २-निर्विकल्पसमाधिविषे भी सविकल्पसमाधिकी न्याई त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान भी होवै है. तौभी त्रिपुटीद्वैतकी प्रतीति होवै नहीं. जैसे

जलमें लवणकूं गेरे तहां लवण विद्यमान होवै है, परंतु नेत्रसे लवणकी सर्वथा प्रतीति होवै नहीं इसरीतिसे सविकल्पनिर्विकल्पका यह भेद सिद्ध हुआः—१—सविकल्पसमाधिमें ब्रह्मरूपकरिके द्वैतकी प्रतीति और २—निर्विकल्पसमाधिमें त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति.

तैसे—सुषुप्तिसे निर्विकल्पका यह भेदहै. १—सुषुप्तिमें अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव होवै है.२—निर्विकल्पसमाधिमें ब्रह्माकारवृत्ति तो अंतःकरणकी होवै है, ताका अभाव होवै नहीं-इस रीतिते १—सुषुप्तिमें तो वृत्ति सहित अंतःकरणका भान होवै है.२—निर्विकल्पसमाधिमें वृत्तिसहित अंतःकरण तो होवै है ताकी प्रतीति होवै नहीं. निर्विकल्पसमाधिविषे अंतःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति होवै है ताका हेतु सविकल्प समाधिका अभ्यास है. याते साधनरूप अष्टअंगनमें सविकल्पसमाधि गिनी है, निर्विकल्पसमाधि फलहै सो निर्विकल्पसमाधि भी दो प्रकारकी होवै है:—१—एक अद्वैत भावनारूप. २—दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवै है. १—अद्वैत ब्रह्माकार अंतःकरणकी अज्ञातवृत्तिसहित होवै सो अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि कहियेहै. २—या समाधिमें अभ्यास अधिक हुयेते ब्रह्माकार वृत्ति भी शांत होय जावै है. जाते वृत्तिरहितकूं अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि कहैं हैं,जैसे—तप्तलोहके ऊपरि जलकी बूंद

गेरी तप्तलोहमें प्रवेश करे है, तैसे अद्वैतभावनारूप-समाधिके दृढअभ्यासते अत्यंत प्रकाशमान ब्रह्मविषे वृत्तिका लय होवै है. सो अद्वैतावस्थानरूपनिर्विकल्प-समाधि फल है और अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि ताका साधन है.

अद्वैतावस्थानरूपसमाधि और सुषुप्तिका इतना भेद है:-१-सुषुप्तिमें वृत्तिका लय अज्ञानमें होवै है; २-अद्वैतावस्थानसमाधिमें वृत्तिका लय ब्रह्मप्रकाशमें होवै है. १-सुषुप्तिका आनंद अज्ञान आवृत है. २-समाधिमें निरावरणब्रह्मानंदका भान होवै है. परंतु निर्विकल्पसमाधिमें चारि विघ्न होवै हैं सो निषेध करनेकूं कहिये हैं:-लय १, विक्षेप २, कषाय ३, रसास्वाद ४.

१-आलस्यकरिके अथवा निद्राकरिके वृत्तिके अभावकूं लय कहै हैं. ता लयते सुषुप्तिसमान अवस्था होवै है; ब्रह्मानंदका भान होवै नहीं. याते निद्रा आलस्यादिक निमित्तते जब वृत्तिका अपने उपादान अंतःकरणमें लय होता दीखै तब योगी सावधान होयके निद्रादिकनकूं रोकिके वृत्तिकूं जगावै. इस रीतिसे लयरूप विघ्नका विरोधी जो निद्रा आलस्य निरोधसहितवृत्तिका प्रवाह-रूप जागरण ताकूं गौडपादाचार्य चित्तसंबोधन कहै हैं.

२-विक्षेपका यह अर्थ है:-जैसे बाज या बिल्लीते डरिके चटका गृहमें प्रवेश करे, तब भयव्याकुलकूं गृहके अन्तर तत्काल स्थान दीखै नहीं, याते फेरि बाहिर

आयके, भय अथवा मरणरूप खेदकूं प्राप्त होवै है, तैसे अनात्मकपदार्थनकूं दुःखहेतु जानिके अद्वैतानंदकूं विषय करनेवास्ते अंतर्मुख हुई जो वृत्ति तहां वृत्तिका विषय चेतन अतिसूक्ष्म है, याते किंचित्कालवृत्तिकी स्थिति विना तत्काल ही चेतनस्वरूप आनंदका लाभ नहीं होवै है, ताते वृत्ति बहिर्मुख होवै है, इस रीतिसे बहिर्मुखवृत्ति विक्षेप कहिये है,सो वृत्तिकी स्थिरताविना स्वरूपआनंदका अलाभ होवै है, याते अंतर्मुखवृत्ति हुयेते भी जितने काल वृत्ति ब्रह्माकार होवै नहीं, उतने काल बाह्यपदार्थनमें दोषभावनाते वृत्तिकूं बहिर्मुखता योगी होने देवै नहीं,किंतु वृत्तिकी अंतर्मुखता ही स्थापन करै. विक्षेपरूप विघ्नका विरोधी जो योगीका प्रयत्न, ताकूं गौडपादाचार्यने शम कह्या है.

३–रागादिक दोषकूं कषाय कहै हैं.यद्यपि रागादिक दो प्रकारके हैं:– एक बाह्य है, और दूसरा अंतर है. पुत्र, स्त्री, धन आदिक जितने विषय वर्तमान होवैं सो बाह्य कहिये हैं. भूतका वा भावीका चिंतनरूप जो मनोराज्य, सो अन्तर कहिये है.सो दोनों प्रकारके रागादिक, समाधिमें प्रवृत्त योगीविषे संभवै नहीं. काहेते ? चित्तकी पांच भूमिका हैं–तिनमें एक क्षेप नाम भूमिका है, दूजी मूढता, तीजी विक्षेप, चौथी एकाग्रता, पांचवीं निरोध भूमिका है. लोकवासना, देहवासना, शास्त्रवासना

इसते आदिलेके रजोगुणका परिणाम जो दृढअनात्मवासना, ताकूं क्षेप कहै हैं. निद्राआलस्यादिक तमोगुणपरिणामकूं मूढ़ता कहै हैं, ध्यानमें प्रवृत्त चित्तकी कदाचित बाह्यप्रवृत्तिकूं विक्षेप कहै हैं. अन्तःकरणका अतीतपरिणाम और वर्त्तमानपरिणाम समानाकार होवै, ताकूं एकाग्रता कहै हैं. यह एकाग्रताका लक्षण योगसूत्रमें पतंजलिने कहा है. ताका भाव यह हैः-समाधिकालमें योगीके अन्तःकरणमें एकाग्रता होवै है सो एकाग्रतावृत्तिका अभावरूप नहीं, किन्तु जितने अंतःकरणके परिणाम समाधिकालमें होवै हैं. सो सारे ब्रह्मकूंही विषय करै हैं, याते अन्तःकरणके अतीतपरिणाम और वर्त्तमान परिणाम केवल ब्रह्माकार होनेते समानाकार होवै हैं, ता एकाग्रताकी वृत्तिकूं निरोध कहै हैं. ये पांच भूमिका अंतःकरणकी हैं. भूमिका नाम अवस्थाका है. ये-पांचभूमिकासहित अंतःकरणके ये क्रमते नाम हैंः-क्षिप्त १, मूढ २. विक्षिप्त ३, एकाग्र ४, निरुद्ध ५. तिनमें क्षिप्त और मूढ अंतःकरणका तो समाधिविषे अधिकार नहीं. विक्षिप्त अंतःकरणकूं अधिकार है. एकाग्र और निरुद्ध अन्तःकरण समाधिका काल होवैहै. यह योगग्रन्थोंमें कहा है. रागादिक दोषसहित अन्तःकरण क्षिप्त ही है. ता क्षिप्त अंतःकरणका योगमें अधिकार नहीं. याते रागादिक दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न हैं, यह कहना संभवै नहीं

तथापि यह समाधान है:—बाह्य अथवा अंतर जो रागादिक हैं, सो तो क्षिप्त अन्तः करणमें ही होवै हैं; ताका अधिकार भी नहीं. तो भी अनेक जन्म विषे पूर्व अनुभव किये जो बाह्य अंतर रागद्वेष तिनके सूक्ष्मसंस्कार, विक्षिप्तादिक अंतःकरणमें भी संभवै हैं. याते रागद्वेषका नाम कषाय नहीं, किंतु रागद्वेषादिकनके संस्कार कषाय कहिये हैं, सो संस्कारअंतःकरण रहै जितने दूरि होवै नहीं, याते समाधिकालमें भी अंतःकरणमें रहैं हैं. परन्तु रागद्वेषादिकनके उद्भूत संस्कार समाधिके विरोधी हैं, अनुद्भूत विरोधी नहीं. प्रगटकूं उद्भूत कहैं हैं, अप्रगटकूं अनुद्भूत कहै हैं, समाधिमें प्रवृत्ति योगीकूं रागद्वेषके संस्कारनकी प्रगटता होवे तो विषयनमें दोषदर्शनते दा देवे, विक्षेप कषायका यह भेद है:—बाह्यविषयाकारवृत्तिकूं विक्षेप कहै हैं. और योगीके प्रयत्नते जहां वृ अन्तर्मुख तो होवै, परंतु रागादिकनके उद्भूतसंस्कारनते अंतर्मुख हुई वृत्ति भी रुकिजावै, ब्रह्मकूं विषय करै नहीं, ताकूं कषाय कहै हैं. विषयमें दोषदर्शनसहित योगीके प्रयत्नते कषायविघ्नकी निवृत्ति होवै है.

४—रसास्वादका यह अर्थ है:—योगीकूं ब्रह्मानंदका अनुभव होवै है और विक्षेपरूप दुःखकी निवृत्तिका अनुभव होवै है. कहूं दुःखकी निवृत्तिसे आनंद होवै है, जैसे भारवाही पुरुषका भार उतरेसे ताकूं आनंद होवै.

तहां आनंदमें और तो कोई विषय हेतु है नहीं किंतु भारजन्य दुःखकी निवृत्तिसे यह कहै हैः—"मेरेकूं आनंद हुवा है." याते दुःखकी निवृत्ति भी आनंदका हेतु है तैसे योगीकूं समाधिमें विक्षेपजन्यदुःखकी निवृत्तिसे जो आनंद होवै, ताका अनुभव रसास्वाद कहिये है जो दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदके अनुभवसे ही योगी अलंबुद्धि करि लेवै तौ सकल उपाधिरहित ब्रह्मानंदाकारवृत्तिके अभावते ताका अनुभव समाधिमें होवै नहीं. याते दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभवरूप रसास्वाद भी समाधिमें विघ्न है, वांछितकी प्राप्तिविना भी विरोधीकी निवृत्तिसे आनंदकी उत्पत्तिमें अन्य दृष्टांतः—जैसे पृथिवीमें निधि होवै, सो निधि अत्यंत विषधरसर्पते रक्षित होवै, तहां निधिप्राप्तिसे प्रथम भी निधिप्राप्तिका विरोधी जो सर्प है.ताकी निवृत्तिसे आनंद होवै है. तहां सर्पनिवृत्तिके आनंदमें जो अलंबुद्धि करे तो उद्यम त्यागनेते निधिप्राप्तिका परमानंद प्राप्त होवै नहीं. तैसे अद्वैत ब्रह्मरूप निधि है, देहादिक अनात्मपदार्थनको प्रतीतिरूप जो विक्षेप सो सर्प है. विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्तिजन्य जो अवांतर आनंदरूपी रसका अनुभवरूप आस्वादन है सो निधिरूपी अद्वैतब्रह्मकी प्राप्तिजन्य जो आनंद है ताकी प्राप्तिका प्रतिबंधक होनेते विघ्न कहिये है.

अथवा--रसास्वादका यह और अर्थ है--सविकल्प

समाधिसे उत्तर निर्विकल्पसमाधि होवै है. और सविकल्पसमाधिमें त्रिपुटी प्रतीत होवै है. याते सविकल्पसमाधिमें आनंद त्रिपुटीरूप उपाधिसहित होनेते सोपाधिक कहिये है. और निर्विकल्पसमाधिमें त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं, याते निरुपाधिक आनंद निर्विकल्पसमाधिमें होवै है, इसरीतिसे सविकल्पसमाधिसे उत्तर निर्विकल्पसमाधिके आरंभमें भी सविकल्पसमाधिके सोपाधिक आनंदकूं त्यागि सकै नहीं किंतु ताकूं ही अनुभव करै: सो रसास्वाद कहिये है. याते विक्षेपनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभव, अथवा सविकल्पसमाधिके आनदका अनुभव रसास्वाद कहिये है. सो दोनों प्रकारका रसास्वाद, निर्विकल्पसमाधिके परमानंदके अनुभवका विरोधी होनेते विघ्न है, याते ताकूं भी त्यागै, ऐसे निर्विकल्पसमाधिमें चारि विघ्न होवै हैं. सो च्यारों विघ्न समाधिके आरंभमें होवै हैं. ज्ञानवान्‌का बाह्यप्रवृत्तिके असम्भवके आक्षेपकी समाप्ति.

सावधानतासे च्यारों विघ्नोंकूं रोकके समाधिमें परमानंदकूं विद्वान् अनुभव करै हैं. ताहीकूं जीवन्मुक्ति कहै हैं. इसरीतिसे ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं होवै है, जब प्रारब्धबलते समाधिसे उत्थान होवै. तब भी समाधिमें जो परमानंदका अनुभव किया है ताकी स्मृति होवै है. याते उत्थानकालमें । ज्ञानीका चित्त निरा-

लंब नहीं और ज्ञानवान्की जो भोजनादिकनमें प्रवृत्ति होवै है, सो केवल प्रारब्धसे होवै है, परंतु भोजनादिक व्यवहारमें ज्ञानी खेद मानिके प्रवृत्त होवै है. काहेते? भोजनादिकनमें प्रवृत्ति भी समाधिसुखकी विरोधी है. जाकूं भोजनादिक शरीरनिर्वाहकी प्रवृत्ति ही खेदरूप प्रतीति होवै ताकी अधिक प्रवृत्ति संभवै नहीं. इस रीतिसे बहुत आचार्योंने यही पक्ष लिखा है और जीवन्मुक्तिका आनंद भी बाह्यप्रवृत्तिमें होवै नहीं, किंतु निवृत्तिमें होवै है. याते जीवन्मुक्तिके सुखार्थी ज्ञानवान्की बाह्यप्रवृत्ति संभवै नहीं.

गत आक्षेपका समाधान।

तथापि ज्ञानवान्की निवृत्तिका भी नियम कहना संभवै नहीं. काहेते? निवृत्तिमें अथवा प्रवृत्तिमें वेदकी आज्ञारूप विधि तौ ज्ञानीकूं है नहीं. जाते ज्ञानीके व्यवहारमें नियम होवै. याते ज्ञानी निरंकुश है, ताका व्यवहार प्रारब्धसे होवै है. १-जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्र फलका हेतु है, ताकी भिक्षाभोजनमात्रमें प्रवृत्ति होवै है. २-जाका प्रारब्ध अधिक भोगका हेतु होवै ताकी अधिकमें भी प्रवृत्ति होवै है.

जो ऐसे कहैः-जाका प्रारब्ध भिक्षा भोजनमात्रका हेतु होवै ताहीकूं ज्ञान होवै है, अधिक व्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवै ताकूं ज्ञान होवै नहीं, याते भिक्षा-

भोजनादिक व्यवहारते अधिकव्यवहार ज्ञानीका होवै नहीं. जाकी अधिक प्रवृत्ति होवै सो ज्ञानी नहीं.

सो शंका बनै नहीं. काहेते ? याज्ञवल्क्य, जनकादिक ज्ञानी कहैं हैं, सभाविजयते धनसंग्रहव्यवहार याज्ञवल्क्यका तथा राज्यपालन व्यवहार जनकका कह्या है और वासिष्ठग्रन्थमें अनेक ज्ञानीपुरुषके व्यवहार नाना प्रकारके कहे हैं. याते ज्ञानीकी प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं. यद्यपि याज्ञवल्क्यने सभाविजयते उत्तर, विद्वत्संन्यासरूप निवृत्ति ही धारी है और प्रवृत्तिमें ग्लानिके हेतु नाना दोष कहे हैं, तथापि याज्ञवल्क्यकूं विद्वत्संन्यासते पूर्व ज्ञान नहीं था. यह कहना तो संभवै नहीं. किंतु ज्ञान तो प्रथम भी था; परंतु विद्वत्संन्यासते पूर्व जीवन्मुक्तिका आनन्द प्राप्त हुआ नहीं. याते जीवन्मुक्तिके आनन्दवास्ते सर्वसंग्रहका त्याग किया है याज्ञवल्क्यकूं प्रारब्ध कुछ काल अधिक भोगका हेतु था और उत्तरकाल न्यूनभोगका हेतु था याते प्रथम तो याज्ञवल्क्यकूं ग्लानिविना अधिकभोग और आगे ग्लानिते सर्वभोगनका त्यागा हुआ है. १-जनकका प्रारब्ध मरणपर्यंत राज्यपालनादिक समृद्धिभोगका हेतु हुवा है. याते सदा त्यागका अभाव ही हुवा है. भोगनमें ग्लानि भी हुई नहीं और वामदेवादिकनका प्रारब्ध न्यूनभोगका हेतु हुआ है. तिनकूं सदा भोगनमें ग्लानिते प्रवृ-

त्तिका अभाव कह्या है और ३–वासिष्ठमें ऐसा भी प्रसंग है:–शिखरध्वजकी ज्ञानते अनंतर अधिकप्रवृत्ति हुई है:–इस रीतिसे नानाप्रकारके विलक्षणव्यवहार ज्ञानी पुरुषनके कहे हैं. तिन सर्वकूं ज्ञान समान है और ताका फल मोक्ष भी समान है और प्रारब्ध भेदसे व्यवहारका भेद है. व्यवहारकी न्यूनतासे जीवन्मुक्तिके सुखकी अधिकता और व्यवहारकी अधिकतासे जीवन्मुक्तिके सुखकी न्यूनता होवै है.

ज्ञानीकूं विदेहमोक्षत्याग वा परलोककी इच्छा होवै नहीं. कोई यह शंका करै है:–जो जीवन्मुक्तिके सुखकूं त्यागिके तुच्छ भोगनमें प्रवृत्त होवै सो विदेहमोक्षकूं भी त्यागिके वैकुंठादिक लोककी इच्छा धारिके जावैगा.

सो शंका बनै नहीं. काहेते ? १–जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग और भोगनमें प्रवृत्ति सो ज्ञानीका प्रारब्धबलते संभवै है. २–विदेहमोक्षका त्याग और परलोककूं गमन संभवै नहीं. काहेते? ज्ञानीके प्राण बाहिर गमन करैं नहीं याते परलोककूं गमन संभवै नहीं और विदेहमोक्षका त्याग भी संभवै नहीं. काहेते ? ज्ञानते अज्ञानकी निवृत्ति होयके प्रारब्ध भोगते अनंतर स्थूलसूक्ष्मशरीराकार अज्ञानका चेतनमें लय विदेहमोक्ष कहिये है. सो अवश्य होवै है. जो मूलअज्ञान बाकी रहै अथवा नष्ट अज्ञानकी

फेरि उत्पत्ति होवै, तौ विदेहमोक्षका अभाव होवै. सो मूल अज्ञानका विरोधी ज्ञान हुयेते अज्ञान बाकी रहै नहीं और प्रमाणते नाश हुये अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं. याते विदेहमोक्षका अभाव होवै नहीं. ३- विदेहमोक्षके त्यागमें तथा परलोकके गमनमें ज्ञानीकी इच्छा संभवै नहीं. काहेते ? ज्ञानीकूं इच्छा केवल प्रारब्धसे होवै है. जितनी सामग्री विना प्रारब्धका भोग संभवै नहीं उतनी सामग्रीकूं प्रारब्ध रचै है. इच्छाविना भोग संभवै नहीं. याते ज्ञानीकी इच्छा भी प्रारब्धका फल है और अन्य लोकमें अथवा इस लोकमें अन्यशरीरका संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसे भी होवै नहीं, यह पूर्व इसी तरंगमें प्रतिपादन करि आये हैं. याते ज्ञानीकूं प्रारब्धसे विदेहमोक्षके त्यागकी वा परलोकमें गमनकी इच्छा होवै नहीं.

ज्ञानीकी मंदप्रारब्धसे जीवन्मुक्तिसुखकी विरोधीप्रवृत्ति।

जीवन्मुक्तिके सुखके विरोधी वर्तमान शरीरमें अधिकभोगनकी इच्छा तो भिक्षाभोजनादिकनकी न्याईं जनकादिकनकूं संभवै है. या स्थानमें यह रहस्य है:— ज्ञानीकी बाह्यप्रवृत्ति जीवन्मुक्तिकी विरोधी नहीं, किंतु जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखकी विरोधी है, काहेते ? आत्मा नित्यमुक्त है, अविद्यासे बंध प्रतीत होवै है. जिस कालमें ज्ञान होवै है तिसी कालमें अविद्याकृतबंधभ्रम

नष्ट होवै है. ज्ञान हुयेते फेरि बन्धभ्रांति होवै नहीं.शरीरसहितकूं बंधभ्रमका अभावही जीवन्मुक्ति कहिये है. देहादिकनकी प्रवृत्तिमें तथा निवृत्तिमें ज्ञानकूं बंधभ्रांति आत्मामें होवै नहीं.याते बाह्यप्रवृत्तिसे भी जीवन्मुक्ति दूरि होवै नहीं.तो भी बाह्यप्रवृत्तिमें जीवन्मुक्तकूं विलक्षण सुख होवै नहीं, एकाग्रतारूप अंतःकरणपरिणामते सुख होवै है. सो एकाग्रतापरिणाम बाह्यप्रवृत्तिमें होवै नहीं. इसरीतिसे प्रारब्ध भेदते ज्ञानी पुरुषनके व्यवहार नानाप्रकारके हैं. परंतु जाका प्रारब्ध अधिक.प्रवृत्ति एकाग्रताकी विरोधी है.और एकाग्रताविना निरुपाधिक आनंद प्रतीत होवै नहीं. यह समाधिनिरूपणमें कही है.

ज्ञानीके व्यवहारका अनियम।

जो पूर्व कह्या-"ज्ञानवानकूं सर्व अनात्मपदार्थनमें मिथ्या बुद्धि होवै है, राग होवै नहीं; याते प्रवृत्ति संभवै नहीं-

सो शंका भी बने नहीं. काहेतें जैसे देहविषे मिथ्या बुद्धि भी ज्ञानीकूं होवै है, तौ भी देहके अनुकूल जो भिक्षादिक हैं तिनमें केवल प्रारब्धसे प्रवृत्ति होवै है; तैसे जिसका अधिकभोगका प्रारब्ध होवै, तिस ज्ञानीकी प्रवृत्तिका हेतु होवै है ताका मन्दप्रारब्ध कहिये है काहेते अधिक प्रवृत्ति भी होवै है. जैसे बाजीगरके तमासेकूं मिथ्या जानिके सर्वलोगनकी प्रवृत्ति होवैहै; तैसे सर्वपदार्थनमें ज्ञानीकूं मिथ्याबुद्धि हुयेसे भी प्रवृत्ति संभवै है.

जो ऐसे कहैं, जाकूं जिस पदार्थमें दोषदृष्टि होव ताके विषे तिस पुरुषकी प्रवृत्ति होवै नहीं. ज्ञानीकूं अनात्मपदार्थनमें दोषदृ होवै है राग होवै नहीं. याते प्रवृत्ति संभवै नहीं.

सो भी बनै नहीं.काहेते? जिस अपथ्यसेवनमें रोगीने अन्वयव्यतिरेकते दोष निश्चय किया है ता अपथ्यसेवनमें प्रारब्धते जैसे रोगीकी प्रवृत्ति होवै है तैसे प्रारब्धसे ज्ञानीकी सर्वव्यवहारमें प्रवृत्ति दोषदृष्टि हुए भी संभवै है. इस रीतिसे ज्ञानीके व्यवहारका नियम नहीं, यह पक्ष विद्यारण्य स्वामीने विस्तारसे तृप्तिदीपम प्रतिपादन किया है, याते तत्त्वदृष्टिका व्यवहार नियमरहित है, समाधिरूप नियमकी विधि सुनिके तत्त्वदृष्टिहँसै है १६॥

तत्त्वदृष्टिका देशादिअपेक्षारहित देहपात।

दोहा।

भ्रमण करत कछु काल यों, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान।
भोगो निजप्रारब्ध तब,लीन भये तिहिं प्रान ॥१७॥

१-प्रारब्धभोगते अनंतर ज्ञानीके प्राण गमन करैं नहीं. याते तत्त्वदृष्टिके प्राण लीन हुए यह कह्या. २-ज्ञानीके शरीरत्यागमें कालविशेषकी अपेक्षा नहीं. उत्तरायणमें अथवा दक्षिणायनमें देहपात होवै. सर्वथा मुक्त है. ३-तैसे देशविशेषकी अपेक्षा नहीं. काशीआदिक पुनीत देशमें अथवा अत्यंत मलिनदेशमें ज्ञानीका देहपात

होवै सर्वथा मुक्त है. ४–तैसे आसनविशेषकी अपेक्षा नहीं. पृथिवीमें सब आसनते अथवा सिद्ध आसनते देहपात होवै. ५–तैसे सावधान ब्रह्मचिंतन करतेका अथवा रोगव्याकुल हाहाशब्द पुकारतेका देहपात होवै सर्वथा मुक्त है. काहेते ? जिसकालमें ज्ञानते अज्ञान निवृत्त हुआ तिसी कालमें ज्ञानी मुक्त है. याते ज्ञानीकूं विदेहमोक्षमें देश काल आसनादिकनकी अपेक्षा नहीं. जैसे ज्ञानीकूं देहपातमें देशकालादिकनकी अपेक्षा नहीं, तैसे ज्ञानके निमित्त श्रवणमें भी देशकाल आसनादिकनकी अपेक्षा नहीं, और उपासककूं देशकालादिकनकी अपेक्षा है. यद्यपि भीष्मादिक ज्ञानी कहे हैं और भीष्मने उत्तरायणबिना प्राण त्याग किये नहीं. तथापि भीष्मादिक अधिकारी पुरुष हैं. याते उपासकनके उपदेशवास्ते तिन्होंने कालविशेषकी प्रतीक्षा करी है. और वसिष्ठ भीष्मादिक अधिकारी हैं याते ही उनकूं अनेक जन्म हुये हैं. काहेते अधिकारी पुरुषनका एक कल्पपर्यंत प्रारब्ध होवै है. कल्पके अंतविना विदेहमोक्ष होवै नहीं. और कल्पके भीतर तिनकूं इच्छाबलते नानाशरीर होवै हैं. तथापि आत्मस्वरूपविषे तिनकूं जन्ममरणभ्रांति होवै नहीं. याते जीवन्मुक्त हैं. तिन अधिकारीपुरुषनका व्यवहार संपूर्ण अन्यके उपदेशनिमित्त है और अन्य ज्ञानीके व्यवहारमें कोई नियम नहीं- इस अभिप्रायते तत्त्वदृष्टिके देहपातका देश काल आसनादिक कुछ कह्या नहीं ॥ १७ ॥

दोहा।

दूजो शिष्य अदृष्टि तिहिं, गंगातट शुभथान।
देश इकंत पवित्र अति, कियो ब्रह्मको ध्यान ॥१८॥
शास्त्ररीति तजि देहकूं, पूरब कह्यो जु राह।
जाय मिल्यो सो ब्रह्मते, पायो अधिकउछाह ॥१९॥

जैसे ज्ञानीकूं देशकालकी अपेक्षा नहीं, तासे विपरीत उपासककूं जाननी उत्तमदेशमें उत्तम उत्तरायणादिक कालमें उपासक शरीर तजै, तब उपासनाका फल होवै और ज्ञानीकूं मरणसमय सावधानतासे ज्ञेयकी स्मृतिकी अपेक्षा नहीं; उपासककूं मरणसमय ध्येयके स्वरूपकी स्मृतिकी अपेक्षा है. १–जिस ध्येयका पूर्व ध्यान किया है, ता ध्येयकी स्मृति मरणसमय होवै, तब उपासनाका फल होवै है. जैसे–ध्येयकी स्मृति चाहिये तैसे ध्येयब्रह्मकी प्राप्तिका जो मार्ग पंचम तरंगमें कहा है, ताकी भी स्मृति चाहिये. काहेते ? मार्गचिंतन भी उपासनाका अंग है और ज्ञाननिमित्त श्रवणमें देशकाल आसनकी अपेक्षा नहीं. ध्यानमें उत्तमदेश, निरंतर काल सिद्धादिकआसनकी अपेक्षा है. याते अदृष्टिकूं उत्तमदेश, गंगातीरमें स्थित और मरणसमय भी योगशास्त्ररीतिसे देहपात कह्या ॥ १८–१९ ॥

(तर्कदृष्टिका निश्चय विद्याके अष्टादश प्रस्थान)

सर्वशास्त्रनकूं ब्रह्मज्ञानकी हेतुता।

दोहा।

तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, लहि गुरुमुखउपदेश।
अष्टादशप्रस्थान जिन, अवगाहनकरि वेश ॥ २० ॥
जेतीवाणी वैखरी, ताको अलं पिछान ॥
हेतुमुक्तिको ज्ञान लखि, अद्वयनिश्चय ज्ञान ॥२१॥

तर्कदृष्टि नाम तीसरा गुरुद्वारा उपदेशकूं श्रवण करिके सुने अर्थमें अन्यशास्त्रनका विरोध दूरि करनेकूं सर्वशास्त्रनका अभिप्राय विचारिके यह निश्चय कियाः— १ सकलशास्त्रनका परमप्रयोजन मोक्ष है. २—मोक्षका साधन ज्ञान है, ३—सो ज्ञान अद्वयनिश्चयरूप है. ४—भेदनिश्चय यथार्थज्ञान नहीं. ५—सारे शास्त्र साक्षात अथवा परंपराते ब्रह्मज्ञानके हेतु हैं.

१—यद्यपि संस्कृत वैखरीवाणीके अष्टादश प्रस्थान हैं; तिनमें कोई कर्मकूं प्रतिपादन करै है. २—कोई विषयसुखके उपायोंकूं प्रतिपादन करै है; ३—कोई ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करै है. ४—तैसे ज्ञाननिमित्त जो न्याय सांख्य आदिक शास्त्र हैं सो भी भेदज्ञानकूं ही यथार्थज्ञान कहै हैं याते सर्वकूं अद्वैतब्रह्मकी बोधकता बनै नहीं.

तथापि सकलशास्त्रके कर्ता सर्वज्ञ हुये हैं और कृपालु हुये हैं. याते तिनके किये मूलसूत्रनका तौ वेदका अनुसार ही अर्थ है. परंतु तिनके व्याख्यानकर्त्ता भ्रांत हुये

हैं. मूलसूत्रकारनके अभिप्रायते विलक्षण अर्थ किया है. सो वेदसे विरुद्ध तिन सूत्रनका अर्थ नहीं, किंतु सर्व शास्त्रनका वेदानुसारी अर्थ है. यह तर्कदृष्टिने उत्तम संस्कारते निश्चय किया.

विद्याके अष्टादश प्रस्थान यह हैं:—चारि वेद, चारि उपवेद, षट् वेदके अंग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म-शास्त्र, इसरीतिसे वैखरीवाणीरूप विद्याके अठारह भेद हैं तिन्हकूं प्रस्थान कहै हैं.

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चारि वेद हैं. तिनमें १—कितने वचन ज्ञेयब्रह्मकूं बोधन करै हैं, २—कितने ध्येयकूं बोधन करै हैं. ३—बाकी कर्मकूं बोधन करै हैं. जो कर्मके बोधक वेदवचन हैं तिनका भी अंतःकरण-शुद्धिद्वारा ज्ञान ही प्रयोजन है. और प्रवृत्तिमें किसी वेद-वचनका अभिप्राय नहीं किंतु निषिद्धस्वाभाविक प्रवृत्तिसे रोकनेमें अभिप्राय है. याते अभिचारादिक कर्मका प्रतिपादक जो अथर्ववेद है, ताका भी निवृत्तिमें तात्पर्य है, जो द्वेषते शत्रुमारनेमें प्रवृत्त होवै तो गरदानसे अथवा अग्निदाहसे शत्रुकूं नहीं मारै, इस वास्ते अभिचारकर्म श्येनयागादिक कहे हैं. शत्रुमारणके निमित्त जो कर्म सो अभिचार कहिये हैं. ऐसा श्येन नाम यज्ञ है. श्येनयागका बोधक जो वेदवचन है ताका यह अर्थ नहीं:—शत्रु-मारणकामनावाला श्येनयागमें प्रवृत्त होवै. किंतु शत्रु-

मारणकी जाकूं इच्छा होवै सो श्येनयागते भिन्न जो गरदानादिक शत्रुमारणके उपाय हैं तिनमें प्रवृत्त होवै नहीं. इस रीतिसे द्वेषते प्राप्त जो गरदानादिक तिनतें निवृत्तिमें श्येनयागबोधक वचनका अभिप्राय है, प्रवृत्तिमें नहीं. काहेते ? प्रवृत्ति द्वेषते प्राप्त है, जो अन्यते प्राप्त होवै तामें वाक्यका अभिप्राय होवै नहीं. इसरीतिसे सारे अथर्ववेदका निवृत्तिमें तात्पर्य है. और तीनि वेदनमें कर्म बोधक वाक्यनका अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानमें उपयोग स्पष्ट है.

चार उपवेदोंका भी ब्रह्मज्ञानमें तात्पर्य।

चारि उपवेद हैंः—आयुर्वेद १, धनुर्वेद २, गांधर्ववेद ३, अथर्ववेद ४. तिनमें १—आयुर्वेदके कर्त्ता ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनीकुमार धन्वंतरि आदिक हैं-चरक, वाग्भटादिक चिकित्साशास्त्र आयुर्वेद है, और वात्स्यायनकृत कामशास्त्र भी आयुर्वेदके अन्तर्भूत है. काहेते ? कामशास्त्रका विषय वाजीकरणस्तंभनादिक भी चरकादिकोंने कथन किये हैं. तिस अयुर्वेदका वैराग्यमें ही अभिप्राय है. काहेते ? आयुर्वेदकी रीतिसे रोगादिकनकी निवृत्ति हुयेते भी फेरि रोगादिक उत्पन्न होवै हैं. यातै लौकिक उपाय तुच्छ हैं, इस अर्थमें आयुर्वेदका अभिप्राय है और औषधदानादिकनते पुण्य होयके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा भी ज्ञानमें उपयोग है.

तैसे२—विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमें आयुधनिरूपण किये हैं आयुध चारि प्रकारके हैंः—मुक्त १, अमुक्त २, मुक्तामुक्त ३, यंत्रमुक्त ४. चक्रादिक हाथसे फेंकिये सो मुक्त कहिये हैं. खड्गादिक अमुक्त कहिये हैं, बरछी आदिक मुक्तामुक्त कहिये हैं. शर गोली आदिक यंत्रमुक्त कहिये हैं.इसरीतिसे चारिप्रकारके आयुध हैं. तिनमें मुक्त आयुधकूं अस्त्र कहे हैं. अमुक्तकूं शस्त्र कहे हैं. इस चारिप्रकारके आयुधनके ब्रह्मा, विष्णु, पशुपति, प्रजापति, अग्नि, वरुण आदिक देवता; मंत्र कहे हैं,क्षत्रियकुमार अधिकारी कहे हैं और तिनके अनुसारी ब्राह्मणादिक भी अधिकारी कहे हैं. तिनके चारि भेद कहे हैंः—पदाति १, रथारूढ २, अश्वारूढ ३, गजारूढ ४. युद्धमें शकुन मंगल कहे हैं. इतना अर्थ धनुर्वेदके प्रथम पादमें कहा है. और आचार्यका लक्षण तथा आचार्यते शस्त्रोंके ग्रहणकी रीति धनुर्वेदके द्वितीयपादमें कही है, और गुरुसंप्रदायसे प्राप्त हुए शस्त्रोंका अभ्यास, तथा मंत्रसिद्धि देवतासिद्धिप्रकार तृतीयपादमें कहा है. सिद्ध हुए मंत्रनका प्रयोग चतुर्थपादमें कहा है इतना अर्थ धनुर्वेदमें है सो ब्रह्मा प्रजापतिआदिकनते विश्वामित्रको प्राप्त हुवा है. ताने प्रगट किया है. और विश्वामित्रते धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा,दुष्टचौरादिकनते प्रजापालन क्षत्रियका धर्मबोधक धनुर्वेद है, याते ताका भी अंतःकरणशुद्धि करिके

ज्ञानद्वारा मोक्षमें ही अभिप्राय है. तैसे ३—गांधर्ववेद भरतने प्रगट किया है तामें स्वर,ताल,मूर्छनासहित गीत, नृत्य, वाद्यका निरूपण विस्तारसे किया है. देवताकी आराधना निर्विकल्पसमाधिकी सिद्धि, गांधर्ववेदका प्रयोजन कह्या है.याते ताका भी अंतःकरणकी एकाग्रता करिके ज्ञानद्वारा मोक्ष ही प्रयोजन है. तैसे अर्थवेद भी नानाप्रकारका हैः—नीतिशास्त्र,अश्वशास्त्र,शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्रसे आदि लेके धनप्राप्तिके उपाय बोधक शास्त्र अर्थवेद कहिये है. धनप्राप्तिके सकल उपायनमें निपुण पुरुषकूं भी भाग्यविना धनकी प्राप्ति होवै नहीं; याते अर्थवेदका भी वैराग्यमें ही तात्पर्य है. तैसे चारि वेदनके षट् अंग हैंः—शिक्षा १, कल्प २, व्याकरण ३, निरुक्त ४, ज्योतिष ५,पिंगल ६, ये छः वेदके उपयोगी होनेते वेदके अंग कहिये हैं. तिनमें १—शिक्षाका कर्त्ता पाणिनि है. वेदके शब्दनमें अक्षरोंके स्थानका ज्ञान और उदात्त अनुदात्त स्वरितका ज्ञान शिक्षाते होवै है. वेदनके व्याख्यानरूप जो अनेक प्रातिशाख्यादि नाम ग्रंथ हैं, सो भी शिक्षाके अन्तर्भूत हैं.

२—वेदबोधितकर्म अनुष्ठानकी रीति कल्पसूत्रनते जानीजावै है. यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण ऋत्विक् कहिये हैं तिनके भिन्न भिन्न करनेयोग्य जो कर्म तिनके प्रकारके बोधक कल्पसूत्र हैं. तिन कल्पसूत्रनके कर्त्ता कात्या-

यन आश्वलायनादिक मुनि हैं. याते कल्पसूत्र भी वेदके उपयोगी होनेते वेदके अंग हैं,

३-व्याकरणते वेदके शब्दनकी शुद्धताका ज्ञान होवै है,सो व्याकरण सूत्ररूप अष्टाध्यायी पाणिनि नाम मुनिने की है. कात्यायन और पतंजलिने तिन सूत्रनके व्याख्यानरूप वार्त्तिक और भाष्य किये हैं और जो व्याकरण हैं, तिनमें वेदके शब्दनका विचार नहीं याते पुराणादिकनमें उपयोगी तो हैं, परंतु वेदके उपयोगी नहीं, और पाणिनिकृत हैं. व्याकरण वेदके शब्दनकी भी सिद्धि करै है; याते वेदका अंग है,

४–यास्क नाम मुनिने त्रयोदश अध्यायरूप निरुक्त किया है. तहां वेदके मंत्रनमें अप्रसिद्धपदनके अर्थबोधके निमित्त नाम निरूपण किये हैं, याते वैदिक अप्रसिद्धपदनके अर्थज्ञानमें उपयोगी होनेते निरुक्त भी वे अंग है, संज्ञाका बोधक जो पंचाध्यायरूप निघंटु नाम ग्रन्थ यास्कने किया है,सो भी निरुक्तके अंतर्भूत है औ अमरसिंह हेमाद्रिकनने किये जो संज्ञाके बोधक को हैं, सो सारे निरुक्तके अंतर्भूत हैं.

५–आदित्य गर्गादिकृत ज्योतिष भी वेदका अंग है, काहेते ? वैदिककर्मके आरम्भमें कालका ज्ञान चाहिये सो कालज्ञान ज्योतिषते होवै है, याते वेदका अंग है,

६—पिंगल मुनिने सूत्र अष्टमअध्यायते छन्द निरूपण कियेहैं, तिनते वैदिकगायत्री आदिके छन्दनका ज्ञान होवै है याते पिंगलकृत सूत्र भी वेदके अंग हैं. तैसे यह षट् जो वेदके अंग हैं, तिनमें वेदके उपयोगी जो अर्थ नहीं, ताका प्रसंगते निरूपण किया है. प्रधानतासे नहीं. याते वेदका जो प्रयोजन है सोई षट्अंगनका प्रयोजन है, पृथक् नहीं.

पुराण अष्टादश हैं. व्यास नाममुनिने किये हैं. तिनके ये नाम हैं—ब्राह्म १, पाद्म २, वैष्णव ३, शैव ४, भागवत ५, नारदीय ६, मार्कंडेय ७, आग्नेय ८, भविष्य ९, ब्रह्मवैवर्त १०, लैंग ११, वाराह १२, स्कंद १३, वामन १४, कौर्म १५, मात्स्य १६, गारुड १७, ब्रह्मांड १८ ये अष्टादशपुराण व्यासने किये हैं. तैसे कालिकापुराणादिक और बहुत हैं. सो उपपुराण हैं. कोई उपपुराणभी अष्टादश कहै हैं सो नियम नहीं, उपपुराण बहुत हैं, भागवत दो हैं:—एक तो वैष्णवभागवत है और दूसरा भगवती भागवत है, दोनोंकी समान संख्या अष्टादशसहस्र हैं और दोनोंके द्वादश स्कंध हैं परंतु तिनमें एक पुराण है, दूसरा उपपुराण है दोनों व्यासकृत हैं याते दोनों प्रामाणिक हैं, जैसे व्यासने पुराण किये हैं तैसे उपपुराण भी कोई व्यासने किये हैं; कोई उपपुराण पराशर आदिक अन्य सर्वज्ञमुनियोंने किये हैं: याते उपपु-

राण भी प्रमाण हैं, जो उपनिषदनका अर्थ है, सोई उपपुराणसहित पुराणोंका अर्थ है, यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. तैसे–

न्याय और वैशेषिक सूत्रनका फल।

पंचअध्यायरूप न्यायसूत्र गौतमने किये हैं: तिनमें युक्ति प्रधान है, युक्तिचिंतनते पुरुषकी तीव्र बुद्धि होवै है, तब मनन करनेविषे समर्थ होवै है, याते युक्तिप्रधान न्यायसूत्रनका भी मननद्वारा वेदांतजन्य ज्ञान ही फल है और कणाद नाम मुनिने दश अध्यायरूप वैशेषिकसूत्र किये हैं तिनका भी न्यायमें अंतर्भाव है. तैसे–

धर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसाभेदतैं दो मीमांसा और संकर्षणकाण्डका फल।

मीमांसाके दो भेद हैं:–१ एक धर्ममीमांसा२ दूसरी ब्रह्ममीमांसा १–धर्ममीमांसाकूं पूर्वमीमांसा कहै हैं. २–ब्रह्ममीमांसाकूं उत्तरमीमांसा कहै हैं, १–धर्ममीमांसाके द्वादशअध्याय हैं, जैमिनि नाम ताका कर्त्ता है. कर्म अनुष्ठानकी रीति तामें प्रतिपादन करी है. यातें विधिसे कर्ममें प्रवृत्ति धर्ममीमांसाका फल है. कर्ममें प्रवृत्तिसे अन्तःकरणशुद्धि, तासे ज्ञान और ज्ञानते मोक्ष इस रीतिसे धर्ममीमांसाका मोक्ष फल है और धर्ममीमांसाके द्वादशअध्यायनमें आपसमें अर्थका भेद है सो कठिन है, यातें लिखा नहीं. और संकर्षणकांड पंचअध्यायरूप

जैमिनिने किया है, ताकेविषे उपासना कही है, ताका भी धर्ममीमांसामें अंतर्भाव है. तैसे–

२–ब्रह्ममीमांसाके च्यारि अध्याय हैं, ताके कर्त्ता व्यास हैं, एक एक अध्यायके चारि चारि पाद हैं तहां १–प्रथम अध्यायमें यह अर्थ है:–सारे उपनिषद्वाक्य ब्रह्मकूं प्रतिपादन करै हैं अन्यकूं नहीं. और २–उपनिषद्वाक्यनका मंदबुद्धिपुरुषनकूं आपसमें विरोध प्रतीत होवै है, ताका परिहार द्वितीयअध्यायमें कह्या है और ३–ज्ञान तथा उपासनाके साधनका विचार तृतीय अध्यायमें कह्या है.४–ज्ञान उपासनाका फल चतुर्थअध्यायमें कह्या है. यह ब्रह्ममीमांसारूप शारीरकशास्त्र ही सर्वशास्त्रनमें प्रधान है.मुमुक्षुकूं येही उपादेय है ताके व्याख्यानरूपग्रंथ यद्यपि नाना हैं. तथापि श्रीशंकरकृतभाष्यरूपव्याख्यान ही मुमुक्षुकूं श्रोतव्य है, ताका ज्ञानद्वारा मोक्षफल स्पष्ट ही है. तैसे–

मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वशिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त,शातातप, पराशर, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, आपस्तंब, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद इत्यादिक सर्वज्ञ हुये हैं. तिन्होंने वेदके अनुसार स्मृति नाम ग्रन्थ किये सो धर्मशास्त्र कहिये हैं. तिनमें वर्णआश्रमके कायिक वाचिक मानसिक धर्म कहे हैं. तिनका भी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान

होयके मोक्ष ही प्रयोजन है, तैसे व्यासने महाभारत और वाल्मीकिने रामायण किया है, तिनका भी धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है और देवताआराधनके निमित्त जो मंत्रशास्त्र है, ताका भी धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. देवताआराधनका अंतःकरणशुद्धि प्रयोजन है. तैसे सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, वैष्णवतन्त्र, शैवतन्त्रादिक भी धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं, काहेते ? इनमें भी मानसधर्मका निरूपण है, तहां-

सांख्यशास्त्रका फल ।

सांख्यशास्त्र षट्अध्यायरूप कपिलने किया है ताके प्रथम अध्यायमें विषयनिरूपण किये हैं, द्वितीयअध्यायमें महत्तत्त्व अहंकारादिक प्रधानके कार्य्य कहे हैं. तृतीय अध्यायमें विषयनते वैराग्य कह्या है. चौथे अध्यायमें विरक्तोंकी आख्यायिका कही है. पंचम अध्यायमें परपक्षका खंडन कह्या है. छठे अध्यायमें सारे अर्थका संक्षेपते संग्रह किया है. प्रकृतिपुरुषके विवेकते पुरुषका असंगज्ञान सांख्यशास्त्रका प्रयोजन है. ताका भी त्वंपदके लक्ष्य अर्थ शोधनद्वारा महावाक्यजन्यज्ञानमें उपयोगी होनेते मोक्ष ही फल है. तैसे-

योगशास्त्रका फल और शारीरक उक्तिसे अविरोध ।

योगशास्त्र चारिपादरूप है. पतंजलि ताका कर्त्ता है, सो पतंजलि शेषका अवतार है. एक ऋषि संध्याउपासन करते थे उनकी अंजलिमें प्रगट होयके पृथिवीमें

पड्या है, याते पतंजलि नाम कहिये है, ताने १–शरीरका रोगरूपी मल दूरि करनेवास्ते चिकित्साग्रन्थ किया है, और २–अशुद्धशब्दका उच्चारणरूपी जो वाणीका मल है, ताके नाशकूं पाणिनिव्याकरणका भाष्य किया है. तैसे ३–विक्षेपरूप अंतःकरणका मल है, ताके नाशकूं योगसूत्र किये हैं. तहां १–प्रथम पादमें चित्तवृत्तिका निरोधरूप समाधि. और ताके साधन, अभ्यास वैराग्यादिक कहे हैं. तैसे २–विक्षिप्तचित्तकूं समाधिके साधनः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ समाधिके अंग द्वितीय पादमें कहे हैं, तृतीयपादमें योगकी विभूति कही है, चतुर्थपादमें योगका फल मोक्ष कह्या है. इसरीतिसे योगशास्त्र भी ज्ञानसाधन, निदिध्यासनकूं संपादनद्वारा मोक्षका हेतु है. और शारीरकसूत्रमें जो सांख्ययोगका खण्डन किया है, सो तिनके व्याख्यान जो उपनिषद्नसे विरुद्ध किये हैं तिनका खण्डन किया है; सूत्रनका नहीं. तैसे-न्याय वैशेषिकका खण्डन भी विरुद्धव्याख्यानका है, तैसे नारदने पंचरात्र नाम तंत्र किया है, तामें वासुदेवमें अन्तःकरण स्थापना कह्या है, ताका भी अंतःकरणकी स्थिरतासे ज्ञानद्वारा मोक्षही फल है. सारे वैष्णवग्रंथ पंचरात्रके अंतर्भूत हैं. सो पंचरात्र धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं. तैसे पाशुपततंत्रमें पशुपतिका आराधन कह्या

है ताका कर्ता पशुपति है, ताका भी अन्तःकरणकी निश्चलताद्वारा मोक्षसाधन ज्ञान फल है.

शैवग्रंथादिकनका फल और वाममार्ग।

जो शैवग्रंथ हैं, सो सारे पाशुपततंत्रके अंतर्भूत हैं. तैसे गणेश, सूर्य, देवीकी उपासनाबोधक ग्रंथनका चित्तकी निश्चलताद्वारा ज्ञान फल है. और सर्वका धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. परंतु–देवीकी उपासनाके बोधक ग्रंथनमें दो संप्रदाय हैं–एक दक्षिण संप्रदाय, दूसरा उत्तरसंप्रदाय है. उत्तरसंप्रदायकूं वाममार्ग कहैं हैं. तिनमें १–दक्षिणसंप्रदायकी रीतिसे जिन ग्रंथनमें देवीकी उपासना है सो तो धर्मशास्त्रके अन्तर्भूत है. और २-वाममार्ग जिन ग्रंथनमें है, सो धर्मशास्त्रसे विरुद्ध हैं, याते अप्रमाण हैं. यद्यपि वामतंत्र शिवने किया है, तथापि सकलशास्त्र और वेदसे विरुद्ध है; याते प्रमाण नहीं. जैसे विष्णुके बुद्धअवतारने नास्तिकग्रंथ किये हैं; सो वेदविरुद्ध हैं, याते प्रमाण नहीं. तैसे शिवकृत वामतंत्र भी अत्यन्त विरुद्ध है. मदिरादिक अत्यन्त अशुद्धपदार्थनका तामें ग्रहण लिखा है. और उत्तमपदार्थनके जो नाम हैं सोई मलिनपदार्थनके नाम लोकवचनके निमित्त कहे हैं. मदिराका नाम तीर्थ, मांसका नाम शुद्ध, मदिरापात्रका नाम पद्म, प्याजका नाम व्यास, लशुनका नाम शुकदेव, मदिराकारी कला-

लका नाम दीक्षित कहै हैं, तैसे वेश्यासेवी कर्मचारी चांडालीसेवी आदिककूं प्रयागसेवी काशीसेवी कहै हैं, और भैरवीचक्रमें स्थित जो चांडालादिक हैं तिनको ब्राह्मण कहै हैं. और अत्यंत व्यभिचारिणीकूं योगिनी, और व्यभिचारीकूं योगी कहै हैं ऐसे अनेकप्रकारसे निषिद्ध तिनका व्यवहार है. पूजनके समय अनेक दोषवती स्त्रीकूं उत्तमशक्ति कहै हैं. जाति चांडाली अतिव्यभिचारिणी रजस्वलास्त्रीकूं देवीबुद्धिसे पूजन करै हैं ताका उच्छिष्ट मदिरापान करै हैं, और अधिकमदिरापानसे जो वमन करि देवे, ताकूं पृथ्वीमें नहीं गिरने देवैं हैं, किंतु आचार्यसहित दूसरे सावधान भक्षण करै हैं. वमनकूं भैरवी कहै हैं और स्त्रीकी योनिमें जिह्वा लगायके मंत्रनका जप करै हैं, मदिरा १, मांस २, मैथुन ३, मुद्रा ४, मंत्र ५. इन पांच मकारकूं भोग मोक्षनिमित्त सेवन करै हैं, प्रथमा द्वितीयादिक तिन मकारनके अप्रसिद्ध नामनते व्यवहार करै हैं. इसते आदिलेके वामतंत्रका सकल व्यवहार इस लोकते और परलोकते भ्रष्ट करै है. इसी कारणते कर्णच्छेदी योगी और अवधूत गुसाईं, तैसे अनेक संन्यासी और ब्राह्मणादिक वाममार्गकूं सेवन करै हैं तो भी लोकवेदनिंदित जानिके गुप्त राखै हैं. अधिक क्या कहैं वामतंत्रकी रीति सुनिके म्लेच्छके भी रोमांच होय जावें ऐसा निंदित

वाममंत्र है- सर्वंगी जो अभक्षण करै हैं सो सारे निंदितमार्ग वामतंत्र कहे हैं. अति नीचव्यवहार लिखनेयोग्य नहीं. याते विशेष प्रकार लिखा नहीं. सर्वथा वामतंत्र त्यागने योग्य है,

तैसे—नास्तिकमत भी त्यागने योग्य है,नास्तिकनके षट् भेद हैं:—माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रांतिक३, वैभाषिक ४, चार्वाक५,दिगंबर ६, ये छह वेदकूं प्रमाण नहीं मानैं हैं. तिनका आपसमें विलक्षणसिद्धांत है. १—माध्यमिक शून्यवादी हैं. २—योगाचारके मतमें सारे पदार्थ विज्ञानसे भिन्न नहीं विज्ञान ही तत्त्व है; सो विज्ञान क्षणिक है. ३—सौत्रांतिक मतमें विज्ञानका आकार बाह्यपदार्थ विषयविना होवै नहीं, याते विज्ञानते बाह्यपदार्थनका अनुमान होवे है; इस भांतिसे सौत्रांतिकमतमें अनुमानप्रमाणके विषय बाह्यपदार्थ हैं. प्रत्यक्ष नहीं और स्थिर नहीं किंतु सारे पदार्थ क्षणिक हैं और ४—वैभाषिकमतमें बाह्यपदार्थ क्षणिक तो हैं परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय हैं, इतना भेद है, ये चारि मत सुगतके हैं,५—चार्वाकमतमें पदार्थ क्षणिक नहीं, परंतु तिसके मतमें देह आत्मा है और ६—दिगंबरमतमें देह आत्मा नहीं, देहसे आत्मा भिन्न है परन्तु जितना देहका परिमाण होवै उतना आत्माका परिमाण है. इस रीतिसे इनका आपसमें मतका भेद है और भी इनकी आपसमें

मतकी विलक्षणता बहुत है, परंतु सारे वेदके विरोधी हैं, याते ना तक हैं,इसी करणते तिनके मतका उपपादन और खण्डन विशेष करिके लिखा नहीं.

इसरीतिसे—साहित्य आदिके तात्पर्यपूर्वक
तर्कदृष्टिका सारग्राही निश्चय।

वाममार्ग और नास्तिकमतके ग्रंथ यद्यपि संस्कृत वाणीरूप हैं, तथापि वेदबाह्य हैं, याते वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान अष्टादश ही हैं और मम्मटआदिकने जो साहित्यग्रंथ किये हैं तिनका भी कामशास्त्रमें अंतभाव है. तैसे सकल काव्यनका भी किसीका कामशास्त्रमें किसीका धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. इसरीतिसे अष्टादश विद्याके प्रस्थान सारे ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षके हेतु हैं. कोई साक्षात् ज्ञानका हेतु है, कोई परंपराते ज्ञानका हेतु है, यह तर्कदृष्टिने सकलशास्त्रनका अभिप्राय निश्चय किया. यद्यपि उत्तरमीमांसाविना सारे शास्त्र जिज्ञासुकूं हेय हैं, यह शरीरकमें सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है. याते अन्यशास्त्र भी मोक्षके उपयोगी हैं यह कहना संभवे नहीं, तथापि सारग्राही दृष्टिसे तर्कदृष्टिने यह सार निश्चय किया ॥ २० ॥ २१ ॥

तर्कदृष्टिका एकविद्वानसे मिलाप
दोहा।

सुनिप्रसिद्ध विद्वान पुनि, मिल्यो आप तिहि जाय।
निश्चय अपनो ताहि तिहिं, दीनो सकल सुनाय ॥२२॥

गुरुद्वारा सुने अर्थमें बुद्धिकी स्थिरताके निमित्त सकलशास्त्रनका अभिप्राय विचारा, तो भी फेरि संदेह हुवाः-जो शास्त्रनका अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है अथवा अन्य अभिप्राय है? काहेते ? तर्कदृष्टि कनिष्ठ अधिकारी कह्या है; याते बारंबार कुतर्कते संदेह होवै है. ताकी निवृत्तिवास्ते अन्य विद्वान्‌के निश्चयते अपने निश्चयकी एकता करनेकूं गया ॥ २२ ॥

दोहा ।

तर्कदृष्टिके बैन सुनि,सो बोल्यो बुधसंत ।
जो मोसूं तैं यह कह्यो,सोई मुख्य सिद्धांत ॥२३॥
संशय सकल नशाय यों, लख्यो ब्रह्म अपरोक्ष ।
जग जान्यो जिन सब असत,तैसे बंध रु मोक्ष ॥२४॥

ज्ञानीकूं इच्छाका संभव और इच्छाके अभावका अभिप्राय ।

दोहा—शेष रह्यो प्रारब्ध यों, इच्छा उपजी येह ।
चलितत्कालहि देखिये, जननिजनकयुत गेह ॥२५॥

ज्ञानीका सकल व्यवहार अज्ञानकी न्याईं प्रारब्धसे होवै है, यह पूर्व कहा है, याते इच्छा संभवै है. और कहूं शास्त्रमें ऐसा लिखा हैः—ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं, ताका यह अभिप्राय नहीं,ज्ञानीका अंतःकरण पदार्थकी इच्छा-रूपपरिणामकूं प्राप्त होवै नहीं.काहेते?अंतःकरणके इच्छा-दिक सहजधर्म हैं. और अंतःकरण यद्यपि भूतनके

सत्त्वगुणका कार्य कह्या है, तथापि रजोगुणतमोगुणसहित सत्त्वगुणका कार्य है, केवल सत्त्वगुणका नहीं. यातैं सत्त्वगुणका कार्य होवै, तो चलस्वभाव अंतःकरणका ही हुवा चाहिये. तैसे काम क्रोधादिक राजसीवृत्ति, और मूढतादिक तामसीवृत्ति, किसी अंतःकरणकी नहीं हुई चाहिये, याते केवल सत्त्वगुणका अंतःकरण कार्य नहीं. किंतु अप्रधान रजोगुण तमोगुण सहित, प्रधान सत्त्वगुणवाले भूतनते अंतःकरण उपजै हैं. याते अन्तःकरणमें तीनों गुण रहै हैं. सो तीनों गुण भी पुरुषनके जितने अन्तःकरण हैं तिनमें सम नहीं. किंतु न्यून अधिक हैं. याते गुणोंकी न्यूनता अधिकतासे सर्वके विलक्षण स्वभाव हैं इस रीतिसे तीनों गुणोंका कार्य अन्तःकरण है.

जितने अंतःकरण रहैं, उतने रजोगुणका परिणामरूप इच्छाका अभाव बनै नहीं. याते ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं, ताका यह अभिप्राय हैः—अज्ञानी और ज्ञानी दोनोंको इच्छा तो समान होवै है, परन्तु १—अज्ञानी तो इच्छादिकूं आत्माके धर्म जानै है. और२—ज्ञानीकूं जिस कालमें इच्छादिक होवै हैं, तिसकालमें भी आत्माके धर्म इच्छादिकनकूं जानै नहीं. किंतु काम, संकल्प संदेह, राग, द्वेष, श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक अंतःकरणके परिणाम हैं याते अंतःकरणके धर्म जानै हैं. इसरीतिसे इच्छा-

दिक होवै भी हैं, आत्माके धर्म इच्छादिक, ज्ञानीकूं प्रतीत होवै नहीं. याते ज्ञानीमें इच्छाका अभाव कह्या है. तैसे मन वाणी तनुसे जो व्यवहार ज्ञानी करै सो सारा ज्ञानीकूं आत्मामें प्रतीत होवै नहीं. किंतु सारी क्रिया मन वाणी तनुमें है और "आत्मा असंग है" यह ज्ञानीका निश्चय है. याते सर्वव्यवहार कर्त्ता भी ज्ञानी अकर्त्ता है इसी कारणते श्रुतिमें यह कह्या हैः—"ज्ञानते उत्तर किये जो वर्तमानशरीरमें शुभअशुभ कर्म, तिनके फल पुण्य पापका संबंध होवै नहीं" प्रारब्धबलते अज्ञानीकी न्याईं सर्वव्यवहार और ताकी इच्छा संभवै है ॥ २९ ॥

शुभसंतति राजाका प्रसंग ।

शुभसंतति नाम राजाकूं त्यागिके तीनों पुत्र निकसे, तहां पुत्रनकी कथा कही अब पिताका प्रसंग कहै हैंः—

पुत्र गये लखि गेहते, पितु चित उपज्यो खेद ।
सूनो राज न तिनि तज्यो, नहिं यथार्थनिर्वेद ॥२६॥

पुत्र गृहते निकसे, तब राजाकूं तीव्र वैराग्यके अभावते तिनके वियोगका दुःख हुवा, तैसे मंदवैराग्य हुवा है, याते विषयभोगका सुख होवै नहीं. और बाहरी निकसनकी इच्छा करी. सो पुत्रनके निकसनेते सूनाराज्य छोड़ि सकै नहीं, यातें भी दुःख हुवा, जो तीव्र वैराग्य होता तो सूनाराज्य भी त्याग देता सो वैराग्य तीव्र हुवा नहीं,

किंतु मंद हुआ है. याते त्यागि सकै नहीं और भोगनमें आसक्ति नहीं, याते उभयथा खेद ही है. यथार्थनिर्वेद कहिये तीव्रवैराग्य नहीं. मंदवैराग्यका फल उपास्यकी जिज्ञासा कहै हैं:-

चौपाई।

शुभसंततिपितुसोबडभागा।भयोप्रथमतिहिंमंद विरागा॥
जिज्ञासाउपजीयहताकूं। देव ध्येयको ध्याऊं जाकूं ॥२७॥
पंडित निर्णय करन बुलाये। यथायोग्य आसन बैठाये॥
प्रश्न कियो यह सबके आगे। अस को देव न सोवै जागे॥
पुरुषारथहित जनजिहिंजाचै। भक्तिमानिके मनमैं राचै॥
सुनि यह पृथिवीपतिकी बानी।इकतिनमें बोल्योसुज्ञानी॥

विष्णुउपासकका उत्तर-चौपाई।

सुनु राजा तुहि कहूँ सुदेवा।शिवविरंचि लागेजिहिसेवा॥
शंखचक्रधारी हितकारी।पद्म गदाधर परउपकारी॥३०॥
मंगलमूर्त्ती विष्णुकृपालू।निज सेवक लखिकरतनिहालू॥
शक्ति गणेश सूर शिव जेहैं। सब आज्ञा ताकीमैं तेहैं॥
भारत सकलग्रंथ यह भाखै। पद्मपुराण तापिनी आखै॥

तापिनी कहिये नृसिंहतापिनी,रामतापिनी, गोपाल-तापिनी उपनिषद् ॥

चौपाई।

विष्णुरूपते उपजतसबही।परै भीर जाचैं तिहि तबही॥३२
विविधवेषको धरि अवतारा। सब देवनकूं देत सहारा ॥

याते ताकी कीजे पूजा । विष्णुसमान सेव्य नहिं दूजा ३३
विष्णुभक्तशिवउत्तम कहिये । तोभीसेव्यस्वरूपन कहिये ॥
रूपअमंगलशिवको शवसम।ध्यानकरैं नहिताकोयों हम॥
शव कहिये मुर्दा, ताके सम अमंगल ॥३४॥

चौपाई ।

राखडमरुगजचर्म कपाला । धरैं आप कहिं करैं निहाला
ताको पूत गणेशहु तैसो । रूप विलक्षण नरपशु जैसो॥
राठहटते ध्यावत जो देवी।तासमरूप धरत तिहिं सेवी ॥
तियनिंदितअशुचीनपवित्रा।अवगुणगिनेनजातविचित्रा।
कपटकूटकोआकरकहिये । पराधीननिजतन्त्रनलहिये ॥
ऐसो रूप जु चाहिये जाकूं । सो सेवहिं नरखरसम ताकूं॥
भ्रमतफिरैनिशिदिनयहभानू।रहतननिश्चलक्षणइकथानू ॥
भ्रमतो फिरै उपासक ताको । तिहिसमानसेवकजोजाको॥
आनदेवयातेसब त्यागै । सेवनीय इकहरि नित जागै॥
पूजन ध्यानकरत विधिजो हैं । नारद पञ्चरात्रमैं सो हैं॥

विष्णुकूं त्यागिके प्रसिद्ध जो च्यारि उपासना हैं, तिन एक एकका निषेध कियेते भी स्मार्त्तउपासनाका भी निषेध किया, काहेते? पांचो देवनकूं समबुद्धिकरिके उपासे ताकूं स्मार्त्तउपासना कहै हैं. शिवआदिक च्यारि देवनकूं विष्णुकी समता निषेधनेते स्मार्त्तउपासनाका निषेध भी अर्थसे किया है ॥३५-३९॥

चौपाई।

शिवसेवकमुनिसुनितहिंबैना। क्रोधसहितबोल्योचलनैना
मुनराजनवाणीइक मोरी। जामें वचनप्रमाण करोरी॥
शिव समान आनको कहिये।मांनेदेतजाहि जो चहिये॥
सबविभूति हरिकूंदेमांगी। धरतविभूतिआपनितत्यागी॥
चर्मकपालहेतु इहिंधारे।सम नहिं उत्तम अधमविचारे॥
नग्न रहत उपदेशत येही।नहिं विराग सम सुख है केही॥

वैष्णवने चर्म कपालादिक निंदितवस्तुका धारण आक्षेप किया, ताका यह समाधान हैः—महादेवकूं सर्व-पदार्थनमें समबुद्धि है. द्वितीयपादका अन्वय यह है—सम विचारै, उत्तम अधम नहीं विचारै॥ १०—१२॥

चौपाई।

सदावर्त ऐसो दे भारी। काशीपुरी मरे नर नारी॥
सो सायुज्यमुक्तिकूं जावे। गर्भवास संकट नहिं पावे॥
शिवसमाननरनारीतेसब। लहतसुदिव्यभोग सगरे तब॥
करत आप अद्वय उपदेशा। तजतलिंग यों ब्रह्मप्रवेशा॥
ऊंच नीच रञ्चहु नहिं देखे। मुक्ती सबकूं दे इक लेखे॥
शिवसमानराजनकोदाता। भक्तअभक्त सबनको त्राता॥
विष्णुसुभावसुन्यो हमऐसो। जगमें जन प्राकृत है तैसो॥
त्राता भक्त अभक्त न त्राता।यह प्रसिद्ध सब जगमें नाता॥
हरिसेवकहरसेव्यबखान्यो । रामचन्द्ररामेश्वरमान्यो॥
स्कंदपुराणव्यासबहुभाख्यो।हरिसेवकहरसेव्यहिराख्यो॥

कह्योजुभारत पद्मपुराना । सबदेवनतैं हरि अधिकाना ॥
भारततातपर्यनहिंदेख्यो। जो अप्पयदीक्षितबुधलेख्यो ॥

वैष्णवने यह कह्याः–"भारतादिक ग्रन्थनमें, विष्णु सर्व देवनका पूज्य कह्या है, सो बनै नहीं. काहेते ? भारतग्रंथनका तात्पर्य देखते शिवकूं ईश्वरता प्रतीत होवै है. यह अप्पयदीक्षितनाम विद्वान्ने सकलपुराण इतिहासका तात्पर्य लिख्या है. तहां भारतमें यह प्रसंग हैः–अश्वत्थामाने नारायण अस्त्र और आग्नेय अस्त्रका प्रयोग किया, तब बहुत सेनाका तो संहार भी हुवा, परंतु पंचपांडवोंमें कोई मऱ्या नहीं.तब रथकूं त्यागिके धनुर्वेद और आचार्यकूं धिक्कार करता वनकूं चल्या तहां व्यासभगवान् ताकूं मिले और कह्याः–हे"ब्राह्मण! तू आचार्य और वेदकूं धिक्कार मति कहु- यह अर्जुन कृष्ण दोनों नरनारायणरूप हैं. इन्होंने शिवका पूजन बहुत किया है.याते इनकी भक्तिके अधीन हुवा त्रिशूली महादेव इनके रथके आगे रहै है. याते इन दोनोंके ऊपरि प्रयोग किये अनेकशस्त्रअस्त्रनकी सामर्थ्यकूं महादेव नाश करि देवै है" इस भारतप्रसंगते नारायणरूपकृष्णकी विभूति महादेवकी कृपाते उपजी है.यह सिद्ध होवै है याते विष्णुचरित्रके प्रतिपादक जो ग्रंथहैं, सो शिवकी अधिकताकूं प्रतिपादन करै हैं. काहेते ? तिन ग्रंथनमें विष्णु

सेव्य कह्या है विष्णु भारतप्रसंगतें शिवका भक्त है-याते जिस शिवकी भक्तिते विष्णु सेव्य होवैं है; शिवही परमसेव्य है इसरीतिसे अप्पयदीक्षितने सकलवैष्णव ग्रंथनका प्रतिपाद्य शिव कह्या है॥ ४३-४८॥

चौपाई।

शिवसबकोप्रतिपाद्यबखान्यो। भक्तनमैंउत्तमहरिगान्यो।
ईशदेवपदसबमैंकहिये। महतसहितइकशिवमैंलहिये॥
महादेव,महेश शिवकूं कहै हैं.औरनकूं देवईशकहैहैं॥४९॥

चौपाई।

शिवतैं भिन्न अशिवजोकहिये। तिहिंतजिशिवकल्याणहिलहिये
जलशायीजिहिंनामबखान्यो।सोजागैयहमिथ्यागान्यो ५०

कल्याणकूं शिव कहै हैं. तातें भिन्न अशिव है. ताका यह अर्थ सिद्ध हुवाः-शिवतें भिन्न और देवता अशिव कहिये अकल्याणरूप हैं, तिन अकल्याणरूप देवताकूं त्यागिके कल्याणरूप शिवकूं उपासे॥ ५०॥

चौपाई।

विपलखजबसबकूंउपज्योडर। निर्भयकियेसकलगरंधग्गिर।
जाको पूत गणेश कहावै। विघ्नजाल तत्काल नशावै५१
कारजमैं कारण गुण होवै। यों शिव विघ्न मूलने खोवै
जन्ममरणदुख विघ्नकहावै। तिहिंमूलशिवध्यान नशावै
सेवनयोग्यसदाशिवएका। जागै सहित समाधिविवेका॥
तंत्रपाशुपतरीतिःजुगावै। त्यों पूजनकरिध्यानलगावै५२

नारदपंचरात्र मत झूठो। यह परिमल परसंग अनूठो॥
याते शिवसेवा चित लावै। पुरुषारथ जो चहै सुपावै५४

नारदपंचरात्रका मत सूत्रभाष्यमें खण्डन किया है. ताके अनुसारी रामानुजआदिक नवीनवैष्णवनका मत कल्पतरुकी टीका परिमलमें खण्डन किया है५१–५४॥

चौपाई।

शिवको पूत गणेश बतायो। कारणगुण कारजमैंगायो॥
मुनिगणेशकोपूजकबोल्यो। असकियकोपसिंहासन डोल्यो
राजनसुनदोनों ये झूठे। बचन सत्य मम कहत अनूठे॥
शिवको पूत गणेश बतावै। पराधीनता तामें गावै॥५६॥
कहूंप्रसंगसुनहुइक ऐसो। लिख्योव्यासभगवतमुनि जैसो॥
चढेत्रिपुरमारनकूं सारे। हरिहरसहितदेवअधिकारे॥५७॥
नहीं गणेशको पूजन कीनो। त्रिपुर न रंचहुतिनतेछीनो॥
पुनिपछितायमनायगणेशा। त्रिपुरविनाश्योरह्योनलेशा॥
भये समर्थकिये जिहिपूजा। सेवनयोग सु इक नहिंदूजा
रामपूत दशरथको जैसे। विघ्नहरणशिवकोसुततैसे॥५९॥
व्यास गणेशपुराण बनायो। सबको हेतु गणेश बतायो।
हरिहर विधि रविशक्ति समेता। तुंडीतें उपजत सब तेता।६०
करतध्यान जिहिंछनजनमनमें। नाशंत विघ्नप्रधानंगनन में॥
विघ्नहरणयों जागत निशिदिन। भक्तिसहित स्तुति हि अनुछिन

देवीभक्तका उत्तर।

देवगणेशशक्तिकोसुनिके। भगतभागवतउचरयोगुनिके॥

सुनराजनत्राणी ममसांची । तीनों सकलकहतयेकांची॥
भगतभागवत कहिये भगवतीको भगत ॥६२॥

चौपाई ।

सूने देव शक्तिबिनसारे । मृतक देहसम लखि हत्यारे ॥
शक्तिहीन असमर्थ कहावे । सो कैसे कारज उपजावे ६३॥
जिनबहुशक्ति उपासनधारी । तातेभयेसकलअधिकारी॥
हरि हरसूरगणेशप्रधाना । तिनमैं शक्ति देखियतनाना ६४
शक्तिलोकमें भापत जाकूं । रूपभगवतीकोलखि ताकूं॥

भगवतीके दो रूप हैं:—१—सामान्य और २—विशेष. १—सब पदार्थनमें अपना कार्य करनेकी जो सामर्थ्यरूप शक्ति, सो भगवतीका सामान्यरूप है और २—अष्ट-भुजादिकसहित मूर्ति विशेषरूप है, सामान्यरूपशक्तिके संख्यारहित अनंत अंश हैं, जामें शक्तिके न्यून अंश होवें सो अल्पशक्ति होवे है, असमर्थ कहिये है.: जामें शक्तिके अधिक अंश होवें, सो समर्थ कहिये है. विष्णु, शिवआ-दिकनमें शक्तिके अंश अधिक हैं, याते अधिक समर्थ कहिये हैं, इसरीतिसे भगवतीका सामान्यरूप जो शक्ति, ताके अंशनकी अधिकतासे विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यकी महिमा प्रसिद्ध है और शक्तिरहित होवै तो जैसे प्राण विना शरीर अमंगलरूप होवै है, तैसे सारे देव हत्यारे कहिये अमंगलरूप होय जावें, याते जिस शक्तिकी अधि-कतासे देवनकी महिमा प्रसिद्ध है, सो महिमा शक्तिकी

है; तिन देवनकी नहीं, विष्णुशिव आदिकनने भगवतीके सामान्यरूप शक्तिकी अधिक उपासना करी है, याते तिनमें शक्तिके अंश अधिक हैं यह पूर्वग्रन्थनमें भगवतीभक्तका अभिप्राय है ॥ ६३–६५ ॥

जैसे भगवतीके निराकाररूप शक्तिके अनंत अंशहैं तैसे साकाररूपके भी अनंत अंश हैं तिन साकार अंशनमें कालीरूप प्रधान है और माहेश्वरी, वैष्णवी, सौरी, गणेशी आदिक भी प्रधान अंश हैं. विष्णुकूं भगवतीकी उपासनाते, वैष्णवी नाम भगवतीके अंशका लाभ, तैसे अन्यदेवनकूं भगवतीके उपासनाते निज २ माहेश्वरी आदिक अंशनका लाभ हुवा है. तिनमें भी भगवतीके विष्णु शिव दोनों प्रधान भक्त हैं. काहेते ? ध्याताकूं ध्येयरूपकी प्राप्ति उपासनाकी परम अवधि है. विष्णु शिवकूं उपासनाते ध्येयरूपकी प्राप्ति हुई है, याते प्रधान उपासक हैं. यह अढाई चौपाईसे प्रतिपादन करै हैं:–

चौपाई।

लखकरोरिमात्रिकागणपुनि। तंत्रग्रंथलखि अंशसकलगुनि
कालीताको अंश प्रधाना। माहेश्वरीआदि लखिनाना ॥
हरिहरब्रह्मसकलतिहिंध्यावैं। निज २ अंशकूपातिहिंपावैं
ध्येयरूपध्याताहैजबहीं। सिद्धउपासन लखिये तबहीं ॥
असउपासनाहरिअरुहरकी। नारीमूर्तिधरीतजिनरकी ॥

दोहा ।

अमृत-मथत प्रसंगमैं, हरि मोहिनी स्वरूप ।
अर्ध अंग शिवको लसै, देवीरूप अनूप । ६८ ॥

मथन करिके अमृत प्रगट किया, तब सुर असुरके विवाद मेटनेमें विष्णु असमर्थ हुए, तब अपने उपास्य रूप भगवतीका ऐसा एकाग्रचित्तसे ध्यान किया, जाते आप विष्णु उपास्यरूपकूं प्राप्त हुआ. ता रूपके माहात्म्यसे असुर भी ताके अनुकूल हुये, तैसे शिवने भी समाधिके ऐसा भगवतीका ध्यान किया, जाते अर्धविग्रह शिवका उपास्यरूप हुआ. कदाचित् विक्षेपते समाधिका अभाव होवै है याते सारा विग्रह शिवका उपास्यरूप नहीं: इसरीतिसे सारे देव भगवतीके उपासक हैं ६८

सो उपासना दो रीतिसे कही है:-दक्षिणाम्नायते, और उत्तर आम्नायते पूर्व दक्षिण आम्नाय कह्या. आगे उत्तर आम्नाय कहे हैं:-

चौपाई ।

भक्तभगवतीकेहर हरि हैं । इनसम कौन उपासन करिहैं ॥
तदपिमहामाया जो ध्यावै । तुर्त सकल पुरुषारथ पावै ॥
नहिंसाधनजगमैंअसऔरा । उपजै भोगमोक्षइकठौरा ॥
भक्तभगवतीकोजोजगमैं । भोगै भोग न आवत भगमैं ॥
शिवकृततंत्ररीतियहगाई । भक्तिभगवती अतिसुखदाई ॥
पञ्चमकारनतजियेकबहूँ । जिनहिंसनातन सेवतसबहूँ ॥

कृष्णदेवबलदेवसुज्ञानी । प्रथमा पिबतसदाज्यूंपानी ॥
और प्रधान पुरातन जेते । सेवक सकल मकारहितेते ॥
तिनसेवनकीजोविधिसारी।शिवनिजमुखभाषीउपकारी ॥
शिवकोवचनधरेजोमनमैं। लहैसुभोग मोक्ष इक तनुमैं ॥
ग्रंथभागवतव्यासबनायो ।उप पुराणकाली समझायो ॥
भक्तिभगवतीकीइकगाई । पूजाविधि सगरी समुझाई ॥
ध्याता सकल भगवतीकेहैं। हरिहर सूरगणेशजिते हैं ॥
सकलपियेप्रथमामतिवारे । पूजतशक्ति मध्यमन सारे ॥
जगजननी जागै इक देवी। परमानंद लहै तिहिं सेवी ॥
सूर्यभक्तभगवतिको यशसुनि । क्रोधसहितबोल्यो इकमुनि पुनि ॥
सुन राजन एकवाणी मोरी। भाषूं झूठ न शपथ करोरी॥
अतिपापिष्ठनीचमतयाको । श्रवणसनेहसु च्योतैं जाको ७७
अवगुण जितेबखानतजगमैं तेगिनियतगुणगणयाभगमैं॥
मद्यमलीनहितीरथराखत।शुद्धनामआपिपको भाखत ७८
कहत और यों सब विपरीता।शंभु तंत्र सेवी मतिरीता ॥
दक्षिण संप्रदाय जो दूजी । यद्यपि श्रेष्ठ अनेकनपूजी ॥
तौभी विन भानू सब अन्धे। इन सबकेमन जिनमैं बंधे ॥
करतभानुसिगरोउजियारो। ताविनहोततुरतअँधियारो ॥
और प्रकाशक जगमैं जे हैं । अंश सबै सूरजके तेहैं ॥
भानुसमानको नहितकारी। भ्रमतआपपरहितमतिधारी ॥
कालअधीनहोतसबकारज।ताहित्रिविधभाषतआचारज॥
वर्त्तमान भावी अरुभूता। सूरज क्रिया करत यह सूता॥

या विधिसकलभानुते उपजैं। भस्म होतसबजबवहकुपिजैं
भानुरूप द्वैं भांतिपिछानहु। निराकारसाकारहि जानहु८३
निराकारपरकाश जु कहिये। नामरूपमैं व्यापक लहिये
अधिष्ठानसबकोसो एका। जगविवर्त है जिहिंअविवेका८४
'अहंभानु' असवृत्तिउदयजब। तामैं जगतविनाशततमसब

॥ सूर्यके दो रूप हैंः—निराकारप्रकाश और साकारप्रकाश. तिन दोनोंमैं निराकारप्रकाश सारे नामरूपमैं व्यापक है. जाकूं वेदांती भांतिशब्दकरिके व्यवहार करै हैं. सो निराकारप्रकाशरूप जो सूर्यका सामान्यरूप है. सो सारे जगतका अधिष्ठान है. ताके अज्ञानते जगत्‌रूपी विवर्त उपजै है. सोई निराकारप्रकाश अंतःकरणकी वृत्तिमैं प्रतिबिंबसहित ज्ञान कहिये है. "अहं भानु" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति प्रकाशके प्रतिबिंबसहित होवै, तब अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा जगतकी निवृत्ति होवै है८१—८५

चौपाई।

सुनिसाकाररूप यह ताको। होय चांदना दिनमैं जाको॥
ताके अंश और वहुतेरे। चंद तारका दीप घनेरे॥८६॥
याते द्वैविध भानु बतायो। ज्ञेय ध्येयको भेद जनायो॥
वेदसकलयाहीकूं भाखत। रूपप्रकाशसत्यतिहिंआखत८७

निराकार साकार भेदते भानुके दो रूप हैं. तिनमैं निराकाररूप ज्ञेय है, साकाररूप ध्येय है. याहीकूं वेदांतनमैं निर्गुणसगुणभेदते दो प्रकारका ब्रह्म कहै हैं८६—८७॥

चौपाई।

जामैंलेशनतमकोकबही। लखितिहिंजगजनजागतसबही
कबहुं न सोवै सोयों जागै। ध्यान करत ताको तम भागै ॥
औरहि जागत भाषत सगरे। राजनजानि झूठतेझगरे ८९

उक्तमतके अनुवादपूर्वक स्मार्त्तमत।

ऐसे पांच उपासक बोले। निजगुण अवगुण परके खोले॥
पंडितऔर अनेकजुआये।भिन्नभिन्ननिजमतसमुझाये९०

जैसे पांचउपासक परस्पर विरुद्ध वचन बोले तैसे अनेकपंडित निज निज बुद्धिके अनुसार विरुद्धही बोले, जैसे इन पांचोंका परस्पर विरुद्धमत है.तैसे स्मार्त्त जो पंडित,पांचोंदेवनमें भेदबुद्धि करै नहीं, ताका मत भी इन सबते विरुद्ध है. काहेते ? वैष्णवका यह मत है:– विष्णुसमान और देव नहीं, सारे विष्णुके भक्त हैं, और विष्णुकेजो राम कृष्ण नारायण आदिक नाम हैं, तिनके समान जो अन्यदेवनके नामकूं जाने सो नामापराधी है. ताकूं रामादिक नामउच्चारणका यथार्थफल होवे नहीं. तैसे शैवमतमें शिवसमान अन्य देव नहीं, और शिवके नामउच्चारणका फल विष्णुनाम उच्चारणते होवे नहीं. इसरीतिसे सर्वके मतमें अपने अपने उपास्यदेवके समान अन्यदेव नहीं. और स्मार्त्तमतमें सारे देव सम हैं याते वाके मतबी पांचों बातें विरुद्ध हैं॥ ९०॥

षट्शास्त्रोंकी परस्पर विरुद्धता।

१ सांख्य, २ पातंजल, ३ न्याय, ४ वैशेषिक, ५-पूर्वमीमांसा. ६ उत्तरमीमांसा, इन षट्शास्त्रनका मत भी परस्पर विरुद्ध है. काहेते ? १—सांख्यशास्त्रमें ईश्वरका अंगीकार नहीं योगमें. किंतु निरपेक्ष प्रकृतिपुरुषके विवेकज्ञानते मोक्ष माना है;और२—योग(पातंजलशास्त्र)मेंईश्वर का अंगीकार, समाधिते मोक्ष माना है; यह विरोध है.३-४-न्यायमतमें चार प्रमाण,और वैशेषिकमतमें दो प्रमाण यह विरोध है. तैसे न्यायवैशेषिकका और भी आपसमें बहुत विरोध है, जिज्ञासुकूं अपेक्षित नहीं, याते लिखा नहीं.५-तैसे पूर्वमीमांसामें ईश्वरका अंगीकार नहीं. मोक्षरूप नित्यसुखका अंगीकार नहीं. किंतु कर्मजन्य विषयसुखही पुरुषार्थ है. और ६—उत्तरमीमांसामें ईश्वर व मोक्षका अंगीकार; विषयसुख पुरुषार्थ नहीं. और उत्तर मीमांसाका मत या ग्रंथमें स्पष्ट ही हैं, सर्वशास्त्रनका मत याते विरुद्ध है. औरनमें;भेदवाद है, यामें भेदका खण्डन और अभेदका प्रतिपादन है. इस रीतिसे सकल शास्त्रनके सिद्धांत परस्पर विरुद्ध हैं.

तर्कदृष्टिका पितासे मिलाप—चौपाई।

वचन विरुद्ध सुने जबराजा।यहसंशयउपज्योतिहिंताजा॥
इनमेंकौनसत्यबुधभाखत।युक्तिप्रमाणसकलसमआखत॥
संशयशोकदुखितयोंजियमैं।कोउपास्ययहलख्योनहियमैं

चिंता हृदय हुई यह जाकूं। निजसंदेहसुनाऊं काकूं ॥९३॥
शास्त्रनिपुणपंडितजगजेते। सुने विरुद्ध बकत यह तेते॥
यौंचिततबहुकालभयोजब। तर्कदृष्टितिहिंआयमिल्योतब

दोहा।

मिले परस्पर ते उभै, पुत्र पिता जिहिं रीति।
करि प्रणाम आशिष दुहुं, आसन लहे सप्रीति ॥९४॥

तर्कदृष्टिका पिताप्रति उपदेश–दोहा।

निज पितु चितासहित लखि, सुत बोल्यो यह बात।
का चिंता चित रावरे, मुख प्रसन्न नहिं तात ॥९५॥

चौपाई।

शुभसंततिसुतकीसुनिबानी। तिहिंभाषीनिज सकलकहानी
चितचिंताको हेतुसुनायो। कोउपास्ययहतत्त्वनपायो९६
तर्कदृष्टि सुनि पितुके बैना। बोल्यो शुभसंततिसुख दैना॥
कारणरूप उपास्यपिछानहु।ताकेनाम अनंतहिजानहु९७
कारजरूप तुच्छ लखि तजिये।यहसिद्धांतवेदकोभजिये॥
रचे व्यास इतिहास पुराना।तिनमैंयहीमतोनहिंनाना९८
मनमें मर्म न लखत जु पंडित।करतपरस्परमतते खंडित॥
नीलकंठ पंडित बुध नीको।कियो ग्रंथ भारतकोटीको९९
तिनयहप्रथमहिलिख्योप्रसंगा।श्रुतिसिद्धांतकह्योजोचंगा॥

पुराणउक्त स्तुति और निन्दाके
करनेमें व्यासका अभिप्राय।

यद्यपि सकल पुराणका कर्त्ता एक व्यास है; ताने

स्कंदपुराणमें शिवकूं स्वतंत्रतादिक ईश्वरधर्म कहे, और अन्यदेवनकूं शिवकृपाते सारी विभूतिकी प्राप्ति कही. याते जीवधर्म कहे. तैसे विष्णुपुराण, पद्मपुराणमें विष्णुकूं ईश्वरता कही, तैसे किसीकूं पुराणमें किसीकूं उपपुराणमें, विष्णुशिवते भिन्न जो गणेशादिक हैं, तिनकूं ईश्वरता कही. इसरीतिसे व्यासवाक्यनमें विरोध प्रतीत होवै है.

ताका यह समाधान करै हैं:—सारे ही ईश्वरहैं.जा प्रकरणमें अन्यदेवकी निंदा है, ताकी निंदाकरिके तिसकी उपासनात्यागमें व्यासका अभिप्राय नहीं, किंतु वैष्णवपुराणमें शिवादिकनकी निंदा विष्णुकी स्तुति करिके विष्णुकी उपासनामें प्रवृत्तिकी हेतु है. तैसे शिवपुराणमे विष्णु आदिकनकी निंदा भी. तिनकी उपासनाके त्याग अर्थ नहीं, किंतु तिनकी निंदा शिवकी उपासनामें प्रवृत्तिके अर्थ है,जो एक प्रकरणमें अन्यकी निंदा त्याग वास्ते होवै, तो सर्वकी उपासनाका त्याग होवैगा याते अन्यकी निंदा एककी स्तुतिके अर्थ है,त्याग अर्थ नहीं.

दृष्टांतः—वेदमें अग्निहोत्रके दो काल कहे हैं एक तो सूर्यउदयसे प्रथम, और दूसरा सूर्य उदयते अनंतरकाल कह्या है. तहां उदयकालके प्रसंगमें अनुदयकालकी निंदा करी है; और अनुदयकालके प्रसंगमें उदयकालकी निंदा करी है. तहां निंदाका तात्पर्य त्यागमें होवै तो, दोनों

कालमें होमका त्यागन होवैगा और नित्यकर्मका त्याग संभवै नहीं; याते उदयकालकी स्तुतिवास्ते अनुदय कालकी निंदा है. और अनुदयकालकी स्तुतिवास्ते उदयकालकी निंदा है. तैसे एक देवकी उपासनाके प्रसंगमें अन्यकी निंदाका एककी स्तुतिमें तात्पर्य है, अन्यकी निंदामें तात्पर्य नहीं.

पांच देवनके उपासकनकूं सम ब्रह्मलोककी प्राप्ति ।

जैसे शाखाभेदते कोई उदयकालमें होम करै है कोई अनुदयकालमें करै हैं, फल दोनोंकूं समान होवै है, तैसे इच्छा भेदते पांचों देवनमें जाकी उपासना करै तिन सबते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है. तहां भोग भोगिके विदेहमोक्ष होवै है. यद्यपि विष्णु आदिकनकी उपासनाते वैकुंठलोकादिकनकी प्राप्ति पुराणमें कही है ब्रह्मलोककी नहीं, तथापि उत्तम उपासक विदेहमुक्तिके अधिकारी देवयानमार्गते सारे ब्रह्मलोककूं ही जावै है. परंतु एक ही ब्रह्मलोक वैष्णवउपासककूं वैकुंठरूप प्रतीत होवै है और लोकवासी सारे तिसकूं चतुर्भुज पार्षदरूप प्रतीत होवै हैं और आप भी चतुर्भुजमूर्ति होवै है. तैसे शैवउपासककूं ब्रह्मलोकही, शिवलोक प्रतीत होवै है. तिसलोकवासी सारे त्रिनेत्रमूर्ति अपनेसहित प्रतीत होवै हैं. इस रीतिसे सर्वउपासककूं ब्रह्मलोक ही अपने उपास्यका लोक प्रतीत होवै है. काहेते ? यह

नियम है-देवयानमार्गविना अन्यमार्गते जो जावैं हैं, तिनका संसारमें आगमन होवै है और देवयानमार्ग एक ब्रह्मलोकका है; याते विदेहमोक्षके योग्य उपासक सारे ब्रह्मलोककूं जावैं हैं, तिस ब्रह्मलोकमें ऐसी अद्भुतमहिमा है:-उपासककी इच्छाके अनुसार सारी सामग्री सहित वह ब्रह्मलोकही तिनकूं प्रतीत होवै है, इसरीतिसे पांचों देवनके उपासकनकूं समफल होवै है. याकेविषे एक परमात्मामें नाना नाम रूप संभवै हैं.

यह शंका होवै है:-पांचों देवनके नाम रूप भिन्न भिन्न कहे हैं और ईश्वर एक है, एक ईश्वरके नानारूप संभवै नहीं. ताका यह समाधान है:-परमार्थसे नामरूप कोई परमात्मामें है नहीं. मंदबुद्धिकूं उपासनावास्ते नाम, रूपरहित परमात्माके मायाकृत कल्पित नामरूप कहे हैं. याते एकपरमात्मामें मायाकृत कल्पितनामरूप नाना संभवै हैं. इसरीतिसे सर्वपुराणवाक्यनका विरोध दूरि होवै है. और-सारे पुराणनका कारण और कार्य ब्रह्मके उपासनाकी क्रमतें उपादेयता और हेयतामें तात्पर्य है.

पुराणवाक्यनमें विरोधशंकाका मुख्यसमाधान तो यह है--विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य इनते आदिलेके जितने एक एकके नाम हैं; सो सारे कारणब्रह्मके नाम हैं और कार्यब्रह्मके भी सो सारे नाम हैं. जैसे मायाविशिष्ट कारणकूं ब्रह्म कहैं हैं और हिरण्यगर्भ कार्य है,

ताकूं भी ब्रह्म कहैं हैं. इस रीतिसे कारणब्रह्मकूं विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य पद बोधन करै हैं. और कार्य ब्रह्मकूं भी पांचों पद बोधन करै हैं. ऐसे पांचों पदनके जो नारायण, नीलकंठ, विघ्नेश, शक्ति, भानु इत्यादिक अनंत पर्याय हैं, सो सारे कारणब्रह्म और कार्यब्रह्म दोनोंकूं बोधन करैं हैं, कहूँ कारणब्रह्मकूं कहूं, कार्यब्रह्मकूं प्रसंगते बोधन करै हैं. जैसे सैंधवपद–अश्व, लवण दोनोंकूं करै है, भोजन प्रसंगमें सैंधवपद लवणकूं बोधन करै है.और गमन प्रसंगमें सैंधवपद अश्वकूं बोधन करै है. वैष्णवपुराणमें विष्णु नारायणादिक पद, कारण ब्रह्मके बोधक हैं;शिव, गणेश,सूर्यादिकपद कार्यब्रह्मके बोधक हैं, याते १–वैष्णवग्रन्थनमें विष्णुकी स्तुति और शिवादिकनकी निन्दासे व्यासका यह अभिप्राय है:–कारणब्रह्म उपास्य है और कार्यब्रह्म उपास्य नहीं. २–तैसे स्कंदपुराणादिक शैवग्रंथनमें शिवमहेशादिकपद कारणब्रह्मके बोधक हैं. और विष्णु गणेश देवी सूर्यादिक पद कार्यब्रह्मके बोधक हैं, याते तिनमें भी कारणब्रह्मकी स्तुति और कार्यब्रह्मकी निन्दा है. ३–तैसे गणेशपुराणमें गणेशपद कारणब्रह्मका वाचक और विष्णुशिवादिकपद कार्यब्रह्मके वाचक हैं; याते कारणकी स्तुति, कार्यकी निंदा है. ४–तैसे कालीपुराणमें काली, देवी आदिकपद कारणब्रह्मके बोधक और विष्णु. शिव, गणेश सूर्यादिकपद कार्य ब्रह्मके बोधक,

याते कालीपदबोध्य कारणकी स्तुति और विष्णुशिवादिकपदबोध्य कार्यब्रह्मकी निन्दा है. ९–तैसे सौरपुराणमें सूर्यभानुपदबोध्य कारण ब्रह्म है, ताकी स्तुति और अन्यपदबोध्य कार्यकी निन्दा है.इसरीतिसे सकलपुराणमें कार्यकारणकी संज्ञारूपसंकेतका तो भेद है, उपादेय हेय जो अर्थ ताका भेद नहीं. सकलपुराणमें १–कारण ब्रह्मकी उपासना उपादेय है और २–कार्यकी उपासना हेय है. याते सारे पुराण एककारण ब्रह्मकूं उपास्यता बोधन करैं हैं. तिनका आपसमें विरोध नहीं.

मूर्तिप्रतिपादनका अभिप्राय।

यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, सतुण्डअष्टभुजादिकमूर्ति मायाके परिणाम हैं और चेतनके विवर्त हैं, याते कार्य हैं और तिनकी भी उपासना कही है.तथापि तिन चतुर्भुजादिक मूर्तियोंका जो मायाविशिष्ट कारण है, तासे विचार कियेते भेद नहीं. याते तिन आकारोंको बाधिके कारणरूपते तिनकी उपासनामें तात्पर्य है. काहेते ? आकार कार्य है, याते तुच्छ है और कारण सत्य है और जाकी मंदप्रज्ञा आकारमें ही स्थित होवै,सो शास्त्र उक्त आकारकी ही उपासना करै. तासे भी प्रज्ञा निश्चल होयके कारणब्रह्मकी उपासनामें स्थिति होवै है.

कारणब्रह्मकी उपासना इस रीतिसे कही है:–ब्रह्म जगत्का कारण है, सत्यकाम है, सत्य संकल्प है,सर्वज्ञ है, स्वतंत्र है, सर्वका प्रेरक है; कृपालु है, ऐसे ईश्वरके

धर्मनकूं चिंतन करै मूर्तिचिंतनमें शास्त्रका तात्पर्य नहीं. और अनेक मूर्ति जो शास्त्रमें लिखी हैं, सो उपासनाके निमित्त नहीं, किंतु सारी मूर्ति कारणब्रह्मकी उपलक्षण हैं. जो वस्तु जाके एकदेशमें होवै और कदाचित् होवै और व्यावर्तक होवै, सो उपलक्षण कहिये है.जैसे-"काक-वाला देवदत्तका गृह है. " या वाक्यमें देवदत्तके गृहका काक उपलक्षण है. काहेते? गृहके एकदेशमें काक होवै है और कदाचित् होवै है. सर्वदा नहीं; और अन्य गृहते देवदत्तके गृहका व्यावर्तक है. तैसे जगत्का कारण ब्रह्म है. ताके एकदेशमें मूर्ति होवै है. और कदाचित् होवै है, और चतुर्भुजादिक मूर्ति कारणब्रह्म विषेही होवै है अन्यमें नहीं, याते व्यावर्तक होनेते उपलक्षण है, उपलक्षणका यह प्रयोजन होवैः-विशेष्यवस्तुके स्वरूपका ज्ञान होवै. जैसे काकते देवदत्तके गृहका ज्ञान होवै अन्य प्रयोजन काकते नहीं तैसे चतुर्भुजादिक आकारनते निराकार कारणब्रह्मका ज्ञान ही उपासनाके निमित्त मूर्तिप्रतिपादनका प्रयोजन है, अन्य नहीं. और

आकारनमें आग्रहवालेशैवादिककूं खेदकी प्राप्ति।

मंदप्रज्ञावाले शास्त्र अभिप्रायकूं समझे विना, तिन आकारनमें आग्रह करैं हैं और श्याल—सारमेयन्यायते परस्पर कलह करैं हैं. स्त्रीके भाईकूं श्याल कहैं हैं. कुक्कुरकूं सारमेय कहैं हैं, दृष्टांतकूं न्याय कहैं हैं, किसीके सालेका नाम उत्फालक था और सालेके शत्रुका नाम

धावक था. तिस पुरुषके गृहके कुक्कुरके नाम धावक, और दूसरे गृहके कुक्कुरका नाम उत्फालक था. तहां तिस पुरुषकी स्त्री गृहविषे प्रथम आई, तब दोनों कुक्कुर आपसमें हमेस लडैं, तहां स्त्रीका पति ससुर आदिक उत्फालककूं गाली देवें, और आपने धावककी बडाई करैं तब ता स्त्रीकूं यह भ्रांति हुईः—मेरे भाईकूं गाली देवै है, ताके शत्रुकी बडाई करैं हैं. तासे दूषित होयके भर्तासे क्लेश करतीहुई. जैसे तिनके अभिप्राय जाने विना, समानसंज्ञाते भ्रमकरिके स्त्रीने क्लेश किया तैसे वैष्णवग्रंथनमें शिवादिक नामते कार्यब्रह्मकी निंदा करी है, इस अभिप्रायकूं नहीं जानिके शैवादिक दुःखित होवैं हैं और विष्णुनामते कार्यकी निंदाकूं नहीं जानिके वैष्णव दुःखित होवे हैं.

सकल पुराणका यह अभिप्राय हैः १—कारणब्रह्म उपास्य है; २—कार्यब्रह्म त्याज्य है. १—माया—विशिष्टचेतन कारणब्रह्म कहिये है. २—मायाकृतकार्य विशिष्टचेतन कार्यब्रह्म कहिये है. यही अर्थ भारतकी टीकाके आरंभमें लिखा है. और सारे वेदांतका यही सिद्धांत है.

उत्तरमीमांसाकी प्रमाणता औरनकी अप्रमाणता ।

चौपाई ।

शुभसंत तिसुनिसुतकेबैंना। उपज्यो जियमैं किंचितचैना॥
पुनितिनप्रश्नकियोनिजपूतहि। शास्त्रपरस्परकहतअसूतही॥

पुराणमें विरोधशंकाके नाशते; चैन कहिये सुख हुआ और षट्शास्त्रनकी परस्पर विरोध शंका मिटी नहीं-

याते किंचित चैन हुआ; सर्वथा नहीं. असूत कहिये विरुद्ध कहैं हैं ॥ १०२ ॥

चौपाई ।

तिनमें सत्य कौनसो कहिये। जाको अर्थ बुद्धिमैंलहिये॥ तर्कदृष्टिसुनिनिजपितुबानी। बोल्यो वचनसुपरमप्रमानी ॥ उत्तरमीमांसा उपदेशा। वेदविरुद्ध न जामें लेशा १०३ शास्त्रपंच ते वेदविरुद्धं। याते जानहु तिनही अशुद्धं ॥ किंचित् अंश वेदअनुसारी। लखिबहुग्रहतमंदअधिकारी

यद्यपि षट्शास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ कहै हैं., १-सांख्यका कर्त्ता कपिल, २-पातंजलका कर्त्ता पतंजलि शेषका अवतार, ३-न्यायका कर्त्ता गौतम, ४-वैशेषिकशास्त्रका कर्त्ता कणाद, ५-पूर्वमीमांसाका कर्त्ता जैमिनि, ६-उत्तरमीमांसाका कर्त्ता व्यास. इन सबनका माहात्म्य प्रसिद्ध है. याते इनके वचनरूप शास्त्रभी सारे समानप्रमाण चाहिये. तथापि सर्व वाक्यनमें प्रमाण वेदवाक्य हैं. काहेते ? १-वेदका कर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर है. ताकेविषे भ्रम संदेह विप्रलिप्सादोष संभव नहीं. २-इनशास्त्रनके कर्त्ता जीव हैं तिनविषे भ्रम आदिक दोषनका संभवै है.

१-यद्यपि शास्त्रकार भी सर्वज्ञ कहे हैं. तथापि तिनकूं सर्वज्ञता योगमाहात्म्यते हुई है. याते युंजानयोगी हुये हैं और ईश्वरकूं सर्वज्ञता स्वभावसिद्ध है. यातैं युक्तयोगी है. १--जाकूं चिंतन किये पदार्थनका ज्ञान होय सो युंजानयोगी कहिये है. २-जाकूं सर्वदा एकरस सारे पदार्थ

अपरोक्ष प्रतीत होवें सो युक्तयोगी कहिये है. ऐसा ईश्वर है. १–युक्तयोगीकृत वेदवचन प्रबल, और २–युंजानयोगीकृत शास्त्रवचन दुर्बल हैं.

याते–वेद अनुसारी शास्त्रप्रमाण, और वेद विरुद्ध अप्रमाण पांचशास्त्र जैसे वेदविरुद्ध हैं. तैसे शारीरक आदिक ग्रंथनमें स्पष्ट है. और उत्तरमीमांसा किसी अंशमें वेदविरुद्ध नहीं. याते प्रमाण है. और शास्त्र भी किसी अंशमें वेदके अनुसारी देखिके मन्दबुद्धि तिनमें विश्वास करैं हैं. परंतु बहुत अंशमें वेदविरुद्ध हैं याते त्याज्य है. किसी अंशमें वेद अनुसारी होनेते उपादेय होवें तो जैनशास्त्र भी अहिंसाअंशमें वेद अनुसारी है. उपादेय हुवा चाहिये और त्याज्य है उपादेय नहीं. यद्यपि सुगत ईश्वरका अवतार है. जाकूं बुद्ध कहैं हैं, ताके वचन भी वेदसमान प्रमाण चाहिये तथापि बुद्ध विप्रलिप्सानिमित्तते हुवा है, याते ताके वचन सर्वथा अप्रमाण हैं. (वंचनकी इच्छाकूं विप्रलिप्सा कहैं हैं, जाकूं बहकावनेकी इच्छा कहैं हैं) याते सर्व अंशमें वेद अनुसारी उत्तरमीमांसा ही सर्वथा मुमुक्षुकूं उपादेय है. यद्यपि उत्तरमीमांसा व्यासकृत सूत्ररूप है, ताका व्याख्यान भी अनेक पुरुषोंने नानारीतिसे किया है. तथापि पूज्यचरणशंकरकृत व्याख्यान ही वेदानुसारी है. और नहीं, यह पञ्चमतरंगमें प्रतिपादन करी है. याते और पञ्चशास्त्र अप्रमाण हैं.

न्यायशास्त्रकी त्याज्यतामें दृष्टांत और हेतु.

जो इस तरंगमें पूर्व सारे शास्त्र मोक्षउपयोगी कहे सो तर्क दृष्टिके सारग्राही विवेकते कहे. जैसे किसीका शत्रु तरवारी मारे, तासे रुधिर निकसिके दैवगतिसे रोगनिवृत्ति होय जावै, तब सारग्राही पुरुष तरवारी मारनेका उपकार मानि लेवै. तैसे अन्यशास्त्रनसे भी किसीरीतिसे अंतःकरणकी शुद्धि वा निश्चलता हुयेतें पुरुष निवृत्त होयके वेदअनुसार निश्चय करै तो मोक्ष होवै है, सर्वथा तिनहीमें आग्रह करै तो अंधगोलांगूलन्यायते अनर्थकूं प्राप्त होवै है, याते सकलशास्त्र त्यागिके अद्वैतव्याख्यान रीतिसे उत्तरमीमांसा उपादेय है.

अंधगोलांगूलन्याय यह हैः---किसी धनीके भूषणयुक्त पुत्रकूं चोर ले गये, वनमें भूषण ले ताके नेत्र फोडिके छोडगये तब तो रुदन करते बालककूं कोई निर्दय वंचक बलउन्मत्तबलीवर्दकी लांगूल पकडाय देवै और यह कहैः---तू इसका लांगूल मत छोडियो,तेरे ग्राममें यह पहुंचाय देवेगा सो दुःखी बालक ताके वचनमें विश्वास करिके दुःख अनुभव करिके नष्ट होवै है.तैसे विषयरूप चोर विवेकरूपनेत्रको फोडिके संसारवनमें गेरे हैं.तहां भेदवादी निर्दयवंचक अन्यशास्त्रनके सिद्धांतमें आग्रह करवावैं हैं और यह कहैं हैः---हमारा उपदेशही तेरेकूं परमसुख प्राप्तिका हेतु होवैगा,ताकूं छोडिये मति,तिनके वाक्यनमें विश्वास करिके पुरुषार्थसुख रहित होवै है,

और जन्ममरणरूप महादुःखकूं अनुभव करै है. याते अन्यशास्त्र त्याज्य हैं.

दोहा ।

तर्कदृष्टिके वचन सुनि, शुभसंतति तिहिं तात ।
संशय शोक नश्यो सकल, लह्यो हिये कुशलात ॥
कारणब्रह्म उपासना, करी बहुत चित लाय ।
तर्कदृष्टि निजलखि गुरु, राजसमाज चढ़ाय ॥ १०६ ॥

यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र था, तथापि उपदेश उत्तम कन्या याते गुरुपदवीकूं प्राप्त हुवा, यह ब्रह्मविद्याका माहात्म्य है.

दोहा ।

कछू व्यतीत्यो काल तब, तजि राजा निजप्रान ।
ब्रह्मलोकमें सो गयो, मुनि जहँ जात सध्यान ॥१०७॥

राजाके मरनका देश काल कहा नहीं ताका यह अभिप्राय है, उपासकके मरणमें देशकालकी अपेक्षा नहीं. दिनमें मरे अथवा रात्रिमें, दक्षिणयानमें, अथवा उत्तरायणमें, पवित्र भूमिमें अथवा अपवित्रमें, सर्वथा उपासनाके बलते देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है और अदृष्टके प्रसंगमें जो पूर्व देशकालकी अपेक्षा कही सो योगसहित उपासकको कही है केवल ईश्वर शरण उपासककूं देशकालकी अपेक्षा नहीं, यह अर्थ सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है ॥१०७॥

दोहा ।

राजकाज सब तब कियो, तर्कदृष्टि हुशियार ।

लग्यो न रंचक रंग तिहि, लह्यो ब्रह्मनिरधार॥१०८॥
अंत भयो प्रारब्धको, पायो निश्चल गेह।
आतम परमातम मिल्यो, देह खेहमें छेह ॥१०९॥

देहका खेह कहिये, राखमें छेह कहिये अंत. आत्मा कहिये, कूटस्थसाक्षी, ताका परमात्मासे अभेद ८-१०९

यद्यपि कूटस्थका परमात्मासे सदा अभेद है,तथापि उपाधिकृत भेद है. उपाधिके लयते उपाधिकृतभेदका अभाव होवै है. परमात्मासे अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय हैः—विदेहमुक्तिमें ईश्वरसे अभेद होवै है, शुद्धचेतनब्रह्मते नहीं. यह वार्त्ता शारीरकभाष्यके चतुर्थ अध्यायमें प्रतिपादन करी है. तहां यह प्रसंग हैः-१—विदेहमुक्तिमें सत्यसंकल्पादिकरूपकी प्राप्ति जैमिनिके मतमें कही है. २—औडुलोमिके मतमें सत्संकलपादिकनका अभाव कहा है और ३—सिद्धांत मतमें सत्यसंकलपादिकनके भाव अभाव दोनों कहे हैं, ताका यह अभिप्राय हैः—ईश्वरसे अभेद होवै है, ईश्वरके सत्यसंकल्पादिक मुक्तिमें, अन्य जीवोंकरि व्यवहार करिये है सो ईश्वर परमार्थदृष्टिते शुद्ध है, ताके विषे कोई गुण है नहीं, किंतु निर्गुण है याते सत्यसंकल्पादिकनका अभाव है. यद्यपि संसारदशाविषे भी जीव परमार्थसे निर्गुण है, शुद्ध है, तथापि जीवकूं संसारदशामें, अविद्यासे कर्त्तापना भोक्तापना प्रतीत होवै है. ईश्वरकूं कभी भी आत्मामें अथवा अन्यमें संसार प्रतीत होवै नहीं, याते सदा

असंग निर्गुण शुद्ध है याते ईश्वरतें जो अभेद है, सोई शुद्धसे अभेद है और ईश्वरते अभेदकूं शुद्धब्रह्मसे अभेद नहीं मानैं तो ईश्वरकूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति कभी भी होवै नहीं. काहेते ? जीवकी न्याईं ईश्वरकूं उपदेशजन्य ज्ञान और विदेह मोक्ष तो कभी होवै नहीं; सदा प्राप्त जो ताका रूप सो शुद्ध नहीं. याते जीवतेभी न्यून ईश्वर सदाबद्ध है, यह सिद्ध होवैगा. याते यह मानना योग्य हैः—१—ईश्वरकूं आवरण नहीं. याते उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं. आवरणके अभावते भ्रान्ति नहीं. याते नित्यसर्वज्ञ है. नित्यमुक्त है. २—माया और ताका कार्य आत्मामें प्रतीत होवै नहीं; याते सदा असंग है. याहीते शुद्ध है. इसरीतिसे ईश्वरते अभेदही शुद्ध चेतनसे अभेद है, और दृष्टान्तसे भी ईश्वरते ही अभेद सिद्ध होवै है. जैसे मठमें घटका अभाव होवै तो मठाकाशमें घटाकाशका लय होवै है. महाकाशमें नहीं; तैसे विद्वानका शरीर ईश्वरकृत ब्रह्मांडमें नष्ट होवै है, और ब्रह्मांड सारा ईश्वर शरीर मायाके अंतर्भूत है, विद्वान्‌का आत्मा विदेहमोक्षमें ब्रह्मांडके बाहरि गमन करे नहीं, याते ईश्वरते अभेद होवै है, परंतु जैसे मठाकाशमें घटाकाशका अभेद हुवा. सो मठाकाश महाकाश रूपही है, तैसे ईश्वरते अभेद होवै है. सोई ईश्वर शुद्धब्रह्म रूपहीं है, याते शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै.

इस भाषाग्रंथके रचनेका प्रयोजन-दोहा।

यह विचारसागर कियो, जामैं रत्न अनेक।

गोप्य वेदसिद्धान्ततैं, प्रगट लहत सविवेक ॥
सांख्यन्यायमैं श्रम कियो, पढि व्याकरण अशेष।
पढे ग्रन्थ अद्वैतके, रह्यो न एकहु शेष ॥
कठिन जु और निबंध हैं, जिनमैं मतके भेद ।
श्रमते अवगाहन किये, निश्चलदास सवेद ॥
तिन यह भाषाग्रन्थ किये, रंच न उपजी लाज ।
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म शिरताज ॥
बिन व्याकरण न पढि सकै, ग्रन्थसंसकृत मन्द ।
पढै याहि अनयाससही,लहै सु परमानन्द ॥
दिल्लीसे पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम ।
तामैं यह पूरो भयो, किहडौली तिहिं नाम ॥
ज्ञानी मुक्ति विदेहमैं, जासों होय अभेद ।
दादू आदूरूपसो, जाहि बखानत वेद ॥
नामरूप व्यभिचारमैं, अनुगत एक अनूप ।
दादूपदको लक्ष्य है, अस्ति भाति प्रियरूप ॥

इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनं नाम सप्तमस्तरंगः ॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण–बम्बई.